भूदान-गंगा

[चतुर्थ खण्ड]

(१ अक्तूबर '५५ से ४ जून '५६ तक)

•

विनोबा

अखिल भारत सर्व-सेवा-संघ-प्रकाशन
राजघाट, काशी

निवेदन

पू० विनोबाजी के गत साढ़े पाँच वर्षों के प्रवचनों में से महत्त्वपूर्ण प्रवचन तथा कुछ प्रवचनों के महत्त्वपूर्ण अंश चुनकर यह संकलन तैयार किया गया है। संकलन के काम में पू० विनोबाजी का मार्ग-दर्शन प्राप्त हुआ है। पोचमपल्ली, १८-४-'५१ से भूदान-गंगा की धारा प्रवाहित हुई। देश के विभिन्न भागों में होती हुई यह गंगा सतत वह रही है।

भूदान-गंगा के तीन खण्ड पहले प्रकाशित हो चुके हैं। पहले खण्ड में पोचमपल्ली से दिल्ली, उत्तर प्रदेश तथा बिहार का कुछ काल यानी सन् '५२ के अंत तक का काल लिया गया है। दूसरे खण्ड में बिहार के शेष दो वर्षों का यानी सन् '५३ व '५४ का काल लिया गया है। तीसरे खण्ड में बंगाल और उत्कल की पद-यात्रा का काल यानी जनवरी '५५ से सितम्बर '५५ तक का काल लिया गया है। इस चौथे खण्ड में उत्कल के बाद की आन्ध्र और तमिलनाड में कांचीपुरम्-सम्मेलन तक की यात्रा यानी अक्तूबर '५५ से ४ जून '५६ तक का काल लिया गया है। पाँचवें खण्ड में कांचीपुरम्-सम्मेलन के बाद की तमिलनाड-यात्रा का ता० १५-११-'५६ तक का काल लिया गया है। पाँचवाँ खण्ड भी चौथे के साथ-साथ ही प्रकाशित हो रहा है।

संकलन के लिए अधिक-से-अधिक सामग्री प्राप्त करने की चेष्टा की गयी है। फिर भी कुछ अंश अप्राप्य रहा।

भूदान-आरोहण का इतिहास, सर्वोदय-विचार के सभी पहलुओं का दर्शन तथा शंका-समाधान आदि दृष्टिकोण ध्यान में रखकर यह

संकलन किया गया है। इसमें कहीं-कहीं पुनरुक्ति भी दीखेगी। किन्तु रस-हानि न हो, इस दृष्टि से उसे रखना पड़ा है।

संकलन का आकार सीमा से न बढ़े, इसकी ओर भी ध्यान देना पड़ा है। यद्यपि यह संकलन एक दृष्टि से पूर्ण माना जायगा, तथापि उसे परिपूर्ण बनाने के लिए जिज्ञासु पाठकों को कुछ अन्य भूदान-साहित्य का भी अध्ययन करना पड़ेगा। सर्व-सेवा-संघ की ओर से प्रकाशित १. कार्यकर्ता-पाथेय, २. साहित्यिकों से, ३. संपत्ति-दान-यज्ञ, ४. शिक्षण-विचार, ५. ग्रामदान पुस्तकों और सस्ता-साहित्य-मंडल की ओर से प्रकाशित १. सर्वोदय का घोषणा-पत्र, २. सर्वोदय के सेवकों से जैसी पुस्तिकाओं को भूदान-गंगा का परिशिष्ट माना जा सकता है।

संकलन के कार्य में यद्यपि पू० विनोबाजी का सतत मार्ग-दर्शन प्राप्त हुआ है, फिर भी विचार-समुद्र से मौक्तिक चुनने का काम जिसे करना पड़ा, वह इस कार्य के लिए सर्वथा अयोग्य थी। त्रुटियों के लिए क्षमा-याचना।

—निर्मला देशपांडे

अनुक्रम

आन्ध्र

[१-१०-'५५ से २७-१२-'५५ तक]

भूदान-गंगा

(चतुर्थ खण्ड)

मानव-जीवन की बुनियाद विश्व-प्रेम : १ :

पानी की तरंगें बहती हैं, तो भी वे भीतर-ही-भीतर रहती हैं। इसी तरह हम भी प्रेम के प्रवाह में ही बहते हैं। हमारे दाहिने हाथ भी प्रेम है और बाँये हाथ भी प्रेम। एक ओर आन्ध्र है, तो दूसरी ओर उड़ीसा! कुछ लोग अपने को 'राइटिस्ट' (नरमदलीय) कहते हैं, तो कुछ अपने को 'लेफ्टिस्ट' (उग्रवादी)। हम मध्य में हैं और ये दोनों हमारे हाथ हैं। हमारा कर्तव्य है कि हम दोनों को मिला दें और दोनों के संयोग से काम लें। उड़ीसा के जो लोग हमें पहुँचाने के लिए आये हैं, उन्होंने हमारे साथ प्रेम का काम किया है और आन्ध्र प्रान्त से हमारे स्वागत के लिए जो आये हैं, वे भी प्रेम के काम की प्रतिज्ञा करने जा रहे हैं।

प्रेम का शास्त्र

प्रेम तो दुनिया में है ही। उसका अनुभव हरएक मनुष्य को होता है। माता अपने बच्चे को दूध के साथ प्रेम की शिक्षा पिलाती है। पर उसके बावजूद दुनिया में प्रक्षोभ, अशान्ति और झगड़े हैं। किन्तु इसका कारण यह नहीं कि दुनिया में प्रेम का अभाव है। बल्कि प्रेम प्रवाहित नहीं है—बहता हुआ नहीं है, वह रुक गया है। जैसे किसी डबरे (गड्ढे) में पानी थम जाता है, तो उसमें कीड़े हो जाते हैं और जब झरना बहता है, तो उसमें स्वच्छ-निर्मल पानी रहता है, वैसे ही कुटुम्बी जनों का प्रेम कुटुम्ब में सीमित रहता है, तो वह गुणरूप होने के बजाय दोषरूप हो जाता है। जाति का प्रेम भी जाति तक ही सीमित रहता है,

प्रेम को आत्महत्या मत करने दीजिये

यह ग्रामदान हमें मिला है, तो यहाँ की जमीन भी सहूलियत के लिए, परिवार के हिसाब से हम बाँटते हैं। जैसे, किसी गाँव में अगर पाँच सौ एकड़ है, तो उस गाँव में परिवार के हिसाब से किसीको पाँच एकड़ या किसीको दस एकड़ जमीन मिलेगी। लेकिन वे यह न समझेंगे कि यह पाँच या दस एकड़ जमीन मेरी है। वे तो यही कहेंगे कि हमारे गाँव की कुल पाँच सौ एकड़ जमीन हमारी है। उस पाँच-दस एकड़ की मालकियत उसे नहीं दी गयी। इसी तरह प्रान्त की पुनर्रचना यदि भाषा के अनुसार होती है, तो वह सहूलियत के लिए ही होती है। ऐसे ही धर्म के भी भेद होते हैं। किन्तु वे भिन्न-भिन्न प्रकार की उपासनाओं की सहूलियत के ही लिए होते हैं। लेकिन यदि धर्म-प्रेम, भाषा-प्रेम, जाति-प्रेम आदि का अर्थ यह हो कि हम एक-दूसरे से अलग हो गये, तो हमने अपना गला ही काट लिया और प्रेम ने आत्महत्या कर ली, ऐसा समझना चाहिए। और जहाँ प्रेम आत्महत्या कर लेता है, वहीं द्वेष का जन्म होता है। इसलिए हम लोगों को बहुत सावधान रहना है। प्रेम संकुचित न बने, यह कोशिश करनी है।

विविधता में एकता का संगीत

हम तो सब प्रकार के वर्ग-भेद मिटाना चाहते है, सब प्रकार की मालकियत मिटाना चाहते हैं। हम भाई-भाई और सेवक के नाते दुनिया में रहना चाहते हैं। इसलिए किसी प्रकार के दूसरे-तीसरे भेद हम अपने रास्ते में न आने देंगे। हमसे कहा गया कि 'ये भाई, जो तेलुगु में अनुवाद कर रहे हैं, नास्तिक हैं।' अब कौन नास्तिक है और कौन आस्तिक, यह भगवान् ही जानें। बहुत-से लोग भगवान् का नाम लेते हैं, पर काम गलत करते हैं। कुछ लोग भगवान् का नाम न लेकर भी अच्छा ही काम करते है और वे हमारे साथी बन जाते हैं। भगवान् का नाम तो बहुत व्यापक है। उसके नाम पर अगर हम झगड़े करते हैं, तो हमने उसे पहचाना ही नहीं! 'अस्ति' भी उसका नाम है और 'नास्ति' भी। 'सत्' भी उसका नाम है और 'असत्' भी उसका नाम। इसलिए कुछ होते हैं, उसके 'आस्तिक भक्त' और कुछ होते हैं, 'नास्तिक भक्त'। दोनों भक्त हो सकते हैं,

दूसरी जाति के लिए नहीं बहता, तो वह भी गुणरूप होने के बजाय दोषरूप हो जाता है। यह एक अद्भुत प्रक्रिया है कि प्रेम से ही द्वेष पैदा होता है। कुछ लोग 'स्वजन' कहते हैं और कुछ 'परजन'। जहाँ यह भेद हुआ, वहीं द्वेष भी पैदा हो जाता है। वहाँ 'स्वजनों के प्रेम' का अर्थ 'परजनों का द्वेष' होता है, इसलिए द्वेष मिटाने के लिए प्रेम 'बढ़ाने' की बात हम नहीं करते। दुनिया में प्रेम तो मौजूद है ही, पर उसे व्यापक करने का सवाल है।

भारत एक हुआ, तब उसे आजादी हासिल हुई। हम सब लोगों के मन में 'हम सब भारतीय हैं' ऐसी व्यापक प्रीति उत्पन्न हुई और उसके फलस्वरूप भारत स्वतन्त्र हुआ। पर अब यह भारतीयता अगर सीमित रह जायगी, तो वह भी दोष में परिणत हो जायगी। इसलिए अब 'भारतीयता' की परिणति 'मानवता' में होनी चाहिए। भूदान उसीका एक अंग है। भूदान में जो प्रक्रिया है, वह सिर्फ प्रेम की प्रक्रिया है। जहाँ अभी ग्राम-दान मिला, वहाँ के लोगों ने क्या किया? यही कि जो प्रेम वे कुटुम्ब में अनुभव करते थे, उसे व्यापक बना दिया—फैला दिया। प्रेम व्यापक होता है, तो उसमें दोष नहीं रह सकता, गुण ही वृद्धिंगत होता है।

प्रान्तों की पुनर्रचना दिलों के विभाजनार्थ नहीं

अभी हम एक सीमा-रेखा पर हैं। कहते हैं, उधर आन्ध्र है, तो इधर उड़ीसा। अब प्रान्त-पुनर्रचना-समिति ने भी कुछ प्रान्तों का विभाजन सुझाया है। पर यह कोई दिलों के टुकड़े करने के लिए नहीं सुझाया, साधारण व्यवस्था के लिए किया है। हम सबको यह महसूस होना चाहिए कि हम दुनिया के नागरिक हैं और दुनिया के नागरिक होते हुए और सब कुछ हैं। साधारण जनता की भाषा में अगर स्थानीय राज-कारोबार चलता है, तो जनता को सुविधा होती है। अगर स्थानीय भाषा में व्यवहार न चला, तो वह स्वराज्य हो ही नहीं सकता। इस वास्ते सहूलियत के लिए प्रान्तों की पुनर्रचना करने जा रहे हैं। किन्तु यदि उसका परिणाम यह हो कि एक बार स्वराज्य-प्राप्ति के आन्दोलन में 'भारतीय' बन जाने के बाद अब हम उसके बदले छोटे या प्रान्तीय बनते हैं, तो इसके मानी है, हमने बहुत कुछ खोया ही है।

प्रेम को आत्महत्या मत करने दीजिये

यह ग्रामदान हमें मिला है, तो यहाँ की जमीन भी सहूलियत के लिए, परिवार के हिसाब से हम बाँटते हैं। जैसे, किसी गाँव में अगर पाँच सौ एकड़ हो, तो उस गाँव मे परिवार के हिसाब से किसीको पाँच एकड़ या किसीको दस एकड़ जमीन मिलेगी। लेकिन वे यह न समझेंगे कि यह पाँच या दस एकड़ जमीन मेरी है। वे तो यही कहेंगे कि हमारे गाँव की कुल पाँच सौ एकड़ जमीन हमारी है। उस पाँच-दस एकड़ की मालकियत उसे नहीं दी गयी। इसी तरह प्रान्त की पुनर्रचना यदि भाषा के अनुसार होती है, तो वह सहूलियत के लिए ही होती है। ऐसे ही धर्म के भी भेद होते हैं। किन्तु वे भिन्न-भिन्न प्रकार की उपासनाओं की सहूलियत के ही लिए होते हैं। लेकिन यदि धर्म-प्रेम, भाषा-प्रेम, जाति-प्रेम आदि का अर्थ यह हो कि हम एक-दूसरे से अलग हो गये, तो हमने अपना गला ही काट लिया और प्रेम ने आत्महत्या कर ली, ऐसा समझना चाहिए। और जहाँ प्रेम आत्महत्या कर लेता है, वहीं द्वेष का जन्म होता है। इसलिए हम लोगों को बहुत सावधान रहना है। प्रेम संकुचित न बने, यह कोशिश करनी है।

विविधता में एकता का संगीत

हम तो सब प्रकार के वर्ग-भेद मिटाना चाहते हैं, सब प्रकार की मालकियत मिटाना चाहते हैं। हम भाई-भाई और सेवक के नाते दुनिया में रहना चाहते हैं। इसलिए किसी प्रकार के दूसरे-तीसरे भेद हम अपने रास्ते मे न आने देंगे। हमसे कहा गया कि 'ये भाई, जो तेलुगु मे अनुवाद कर रहे हैं, नास्तिक हैं।' अब कौन नास्तिक है और कौन आस्तिक, यह भगवान् ही जानें। बहुत-से लोग भगवान् का नाम लेते हैं, पर काम गलत करते हैं। कुछ लोग भगवान् का नाम न लेकर भी अच्छा ही काम करते हैं और वे हमारे साथी बन जाते हैं। भगवान् का नाम तो बहुत व्यापक है। उसके नाम पर अगर हम झगड़े करते है, तो हमने उसे पहचाना ही नहीं! 'अस्ति' भी उसका नाम है और 'नास्ति' भी। 'सत्' भी उसका नाम है और 'असत्' भी उसका नाम। इसलिए कुछ होते हैं, उसके 'आस्तिक भक्त' और कुछ होते हैं, 'नास्तिक भक्त'। दोनों भक्त हो सकते हैं,

बशर्ते दोनों मानव-धर्म को पहचानते हों। दोनों अभक्त हो सकते हैं, अगर दोनों मानव-धर्म को छोड़ते हैं। तो, ये जो तत्त्वज्ञान के भेद हैं, वे भी हमारे मार्ग में बाधक न होने चाहिए। आस्तिक भक्तों में भी कोई राम-भक्त होता है, कोई कृष्ण-भक्त, तो कोई शिव-भक्त या शैव। वैष्णवों में भी कोई अद्वैती होते हैं, कोई द्वैती, तो कोई विशिष्ट अद्वैती। मनुष्यों में कोई काले, पीले, नीले तथा गोरे होते हैं। लेकिन यह तो दुनिया की विविधता है और विविधता से ही संगीत बनता है। अगर हममें अक्ल न हो, तो विविधता से कलह होता है और विसंवाद पैदा होता है। इसलिए हममें ऐसी बुद्धि हो कि मुख्य वस्तु क्या है, यह हम पहचानें और गौण वस्तु को महत्त्व न दें। मुख्य वस्तु है, विश्वव्यापक प्रेम!

उत्कल-आन्ध्र सीमा
१-१०-'५५

मुझे हर शख्स की शक्ति चाहिए : २ :

मैंने नजर डाली, तो चारों ओर छोटे-बड़े पहाड़ दीख पड़े। मन में विचार आया, आखिर ये सारे पहाड़ क्या करते हैं? ये अपने पास कोई भी चीज नहीं रखते। अधिक-से-अधिक बारिश पहाड़ों पर ही होती है, लेकिन वह सारा-का-सारा पानी पहाड़ ढुलका देते हैं—नदियाँ बहती हैं। जिन पर परमेश्वर की कृपा होती है, उनका धर्म इन्हीं पहाड़ों जैसा होता है। अतः जिनके पास अधिक बुद्धि हो और जिन्हें अधिक शक्ति मिली हो, उनका कर्तव्य है *कि अपनी बुद्धि और* शक्ति दूसरों को दें। इस तरह जो करते हैं, उन्हींकी ऊँचाई शोभा देती है। अगर ये पहाड़ सारा पानी अपने भीतर रख लेते, तो हम लोगों को इनसे द्वेष होने लगता और फिर हम इन्हें खोद-खोदकर पानी निकालते। लेकिन ये पहाड़ अपनी ऊँचाई का लाभ हमें देते हैं, इसीलिए इनके दर्शन से हमारे मन में आनंद होता है। आज यह हमारे सामने बड़ा रमणीय दृश्य है! हमें इतना ही सूझता है कि आंध्र के लोग ऐसा दृश्य सतत देखते हैं, तो इनमें भी ऐसी ही ऊँचाई होनी चाहिए।

पहाड़ों से शिक्षा

हमने कोरापुट (उत्कल) में देखा, वहाँवालों में ग्राम देने में जरा भी झिझक नहीं दिखाई दी। वहाँ छह सौ ग्रामदान मिले, इससे अधिक इसलिए नहीं मिले कि हम वहाँ ज्यादा घूमे नहीं। हम सोचने लगे कि इतना औदार्य उन्हें किसने सिखाया ? उत्तर मिला, ये पहाड़ों की सन्निधि में रहते हैं, जहाँ से नदियाँ बहती हैं; इसीलिए उनके हृदय भी ऐसे प्रवाही, उन्नत और उदार बनते हैं। ऋषि से पूछा गया कि ब्राह्मण कहाँ पैदा होते हैं—यह 'ब्राह्मण' शब्द जैसे अर्वाचीन भाषा में जाति-वाचक है, वैसा नहीं; क्योंकि जातिवादी ब्राह्मण कहाँ पैदा होते हैं, यह ऋषि को मालूम नहीं। इसकी कल्पना में तो वह उदार ब्राह्मण है, जिसके मन में सबके लिए उदारता ही है—वह अद्वितीय, महाज्ञानी और औदार्य की मूर्ति कहाँ पैदा होती है ? इसका उत्तर ऋषि ने दिया : "उपह्वरे गिरीणां, संगमे च नदीनाम्, धिया विप्रो अजायत।" याने पहाड़ों की सन्निधि में और जहाँ नदियों का संगम है, वहाँ ब्राह्मण पैदा होते हैं। पूछा जा सकता है कि पहाड़ों की सन्निधि में तो हम जंगली जानवर देखते हैं, फिर ऋषि कैसे कहता है कि ब्राह्मण तो पहाड़ों की सन्निधि में होते हैं ? लेकिन बात यह है कि वे ध्यान से पैदा होते हैं। वह ध्यान जंगल के जानवरों में नहीं होता। हम पहाड़ों का ध्यान करते हैं, तो पहाड़ों की शक्ति हमें मिलती है, वह हमारा गुरु बनता है। तो इनसे हमें जो शिक्षण मिला, उसे यहाँ बताया—पर्वत जितना देते हैं, उतना पाते हैं। इसलिए यदि मनुष्य के हृदय में उदारता होगी, तो उनका जीवन भी संपन्न होगा।

उदारता ही 'अपरिग्रह'

'उदारता' को ही 'अपरिग्रह' कहते हैं, पर लोग अपरिग्रह का दूसरा ही अर्थ समझते हैं। वे मानते हैं कि अपरिग्रह से दारिद्र्य आता है, किन्तु ऐसी बात नहीं। वास्तव में अपरिग्रह का अर्थ है, परिग्रह हाथ में आया-न आया, फौरन उसे दूसरे के पास भेज देना। लक्ष्मी जहाँ प्रवाहित रहती है, वहाँ अपरिग्रह भी रहता है। आप खूब पैदा कीजिये, हमें कोई हर्ज नहीं। खुद उपनिषद् के ऋषि, जो अपरिग्रह के आचार्य हैं, कहते हैं : "अन्नं बहु कुर्वीत

तद् व्रतम् ।" याने अन्न बहुत पैदा करना चाहिए, ऐसा व्रत ले लो। किंतु वह अन्न सतत दूसरों के पास पहुँच जाना चाहिए। धन को 'द्रव्य' का रूप होना चाहिए। 'द्रव्य' याने दौड़नेवाला, द्रुत होनेवाला या प्रवाहित होनेवाला। अगर वह एक जगह रहे, तो 'धन' कहलायेगा और वह बहता रहेगा, तो 'द्रव्य'। द्रव्य तो खूब होना चाहिए। पानी सतत बहता रहता है, तो स्वच्छ-निर्मल रहता है। मतलब भूदान का सारा संदेश हमें ये पहाड़ दे रहे हैं।

भारत-भूमि अन्वर्थक बने

हम चाहते हैं कि भारत-भूमि सचमुच भारत-भूमि बने। 'भारत भूमि' का अर्थ ही यह है कि जो सबका भरण-पोषण करे। आज तक हिन्दुस्तान की भूमि ने बाहर से आनेवाली पचासों कौमों का भरण-पोषण किया है। हम चाहते हैं कि भरत-भूमि का हरएक शख्स यह व्रत ले कि हम खूब उत्पादन करेंगे। हमें भगवान् ने दो हाथ क्यों दिये हैं ? इसीलिए कि एक हाथ से जहाँ लिया, वहीं दूसरे हाथ से देना चाहिए। अगर लेना-ही-लेना होता, तो एक ही हाथ काफी होता। हम उम्मीद करते हैं कि हिन्दुस्तान में इतना अन्न पैदा हो कि दूसरे भूखे देशों को हम मुफ्त में खिलायें। आज तो हमें ही मुश्किल से खाना मिलता है। अगर हम अपरिग्रह का व्रत लेंगे, तो हमारा वैभव और लक्ष्मी बढ़ेगी। हम चाहते हैं कि आप सारे लक्ष्मीवान् बनें।

बाबा सभीके हृदय की बोलता है

यह छोटा सा गाँव है, लेकिन बहुत सारे लोग इकट्ठे हुए हैं, यह क्या बात है ? क्योंकि आप लोगों के हृदय में विश्वास पैदा हुआ है कि यह बाबा जो आया है, यह हमें लक्ष्मीवान् बनायेगा। हम जानते हैं कि इस सभा में पचासों भूमि हीन आये हैं और वे इसी आशा से आये हैं कि हमारी बात बाबा के मुँह से बोली जा रही है। बाबा तो चुनाव में खड़ा नहीं हुआ। उन लोगों ने उसे चुना भी नहीं। लेकिन वह जो बात रखता है, वह हमारी बात है, ऐसा ये लोग महसूस करते हैं। मुझे खुशी है कि सिर्फ भूमिहीन नहीं, बल्कि भूमिवान् और श्रीमान् भी समझते हैं कि बाबा हमारी बात बोलता है। याने दान आदि की जो बात हम कहते हैं,

उससे न सिर्फ गरीबों को, बल्कि हिन्दुस्तान के श्रीमानों को भी समाधान होता है कि बाबा हमारे हृदय की बात बोल रहा है।

हिन्दुस्तान के बाहर के लोगों को लगता है कि यह बाबा माँगता फिरता है, तो लोग कैसे देते हैं? हिन्दुस्तान के लोग इसीलिए देते हैं कि उन्हें खुशी होती है। लोग पूछेंगे कि इतना आप भारत का गौरव गाते हैं, तो कितने लोगों ने आपको दिया? हम कहते हैं कि जितने लोगों के पास हम पहुँचे, उतने लोगों ने दिया। हम सब लोगों के पास पहुँचे ही कहाँ हैं? हमारा विश्वास है कि यह संदेश अगर हिन्दुस्तान के कोने-कोने में पहुँच जाय, तो जैसे चार महीने में कुल हिन्दुस्तान मे बारिश होती है, वैसे ही चार महीने मे कुल हिन्दुस्तान में पाँच करोड़ एकड़ जमीन हासिल होगी। बात सिर्फ यहाँ रुकी हुई है कि लोगों के पास पहुँचना बाकी है।

मुझे हर शख्स की शक्ति चाहिए !

जिस विश्वास से तेलंगाना में भूदान का आरम्भ हुआ, उसमें शंका का स्थान था। मेरे मन में इतना विश्वास नहीं होता था। लेकिन जो आदेश मिला, वह स्पष्ट था। मैं नहीं कह सकता कि वह विचार मेरा था। इसीलिए मैंने कहा कि मुझे आदेश मिला था। मेरे मन में तो झिझक थी, हिचक थी। लेकिन दिन-ब-दिन सिद्ध हुआ कि जिसने आदेश दिया, उसने सभी बातें हमारे सामने रखीं और मैंने तो श्रद्धा रखकर ही काम किया। लेकिन मैं विश्वासपूर्वक कहता हूँ कि भारत का हृदय पूर्ण-कुंभ है। वह पूर्ण भरा है। मुझे उम्मीद है कि जितनी उदारता की आशा मैंने आपसे रखी है, उतनी आप अवश्य दिखायेंगे। मैं सिर्फ भूदान के लिए नहीं आया, मुझे हर शख्स की शक्ति चाहिए। जिसके पास जो हो, वह चाहिए। यह गलतफहमी न रहे कि हम सिर्फ भूमि माँगते हैं। आपको अपनी संपत्ति और अपने श्रम का भी हिस्सा देना है और देते ही रहना है।

चातीली (श्रीकाकुलम्)
१-१०-'५५

भूदान : गांधीजी के प्रेम-विचार का प्रचार : ३ :

आज का दिन एक महापुरुष का जन्म-दिन है। हम सब महात्मा गांधी का नाम बड़े प्रेम से लेते हैं। महात्माजी हर रोज स्थितप्रज्ञ के श्लोक, ज्ञानी के लक्षण बोलते थे। हम लोगों को लगता है कि महात्मा गांधी स्थितप्रज्ञ थे, पर वे कहते कि 'मैं ज्ञानी नहीं, ज्ञानियों का दास हूँ। मैं ज्ञानियों की राह पर पीछे-पीछे चलने की कोशिश कर रहा हूँ।'

महात्मा : विश्व-व्यापक प्रेमी

हम उन्हें 'महात्मा' कहते थे, लेकिन वे खुद को एक बच्चे से भी छोटा समझते और बच्चे-बच्चे की कद्र करते थे। वे प्रेम से कितने भरे थे, इसका वर्णन हम नहीं कर सकते। भला माता के प्रेम का वर्णन बालक कैसे कर सकता है? हर-एक बच्चा कहता है कि मेरी माता मुझ पर ज्यादा प्रेम करती है। किसी माता के पाँच लड़के हों, तो पाँचों समझते हैं कि माँ का सबसे ज्यादा प्रेम मुझ पर ही है। इसी तरह हम जहाँ जाते हैं, वहीं महात्माजी के बारे में यही सुनते हैं। आन्ध्र प्रदेशवाले कहते हैं कि आन्ध्र महात्माजी का बहुत प्रिय प्रदेश था। उधर उड़ीसावाले कहते हैं कि महात्माजी का हम पर सबसे ज्यादा प्रेम-प्यार था। बिहारवाले भी यही कहते हैं। इस तरह हर प्रान्तवाले यही कहते सुनाई देते हैं। इस प्रकार जिसका प्रेम व्यापक हुआ हो, वही 'महात्मा' कहलाता है। यों तो आत्मा न तो महान् होती है और न छोटी। वह विश्व-व्यापक होती है, उससे तुलना नहीं हो सकती। फिर भी हम तुलना करते और किसीको महात्मा कहते हैं।

इसलिए महात्मा का अर्थ इतना ही है कि उसके हृदय में सारी दुनिया के लिए प्रेम भरा रहता है। भगवान् ने सबके हृदय में प्रेम दिया है। हर घर की माता प्रेम की मूर्ति है। बचपन में माता ने हमें दूध के साथ प्रेम पिलाया था। प्रेम से सुख होता है। माँ बच्चे के लिए तकलीफ उठाती है। बच्चा बीमार हो, तो रातभर जागती है और उसके लिए सब कुछ चिन्तन करती है; लेकिन

उस तकलीफ में उसे आनन्द ही होता है। यह प्रेम का अनुभव हरएक माता को हरएक घर में होता है। हमें इसी प्रेम को फैलाना है, व्यापक बनाना है। अगर हमारा प्रेम फैल जाय, तो आनन्द भी बढ़ेगा। पाँचों बच्चों की माता को प्रेम का कितना अनुभव होता और कितना आनन्द मिलता है! अगर माँ को यह लगे कि दुनिया में जितने बच्चे हैं, सब मेरे हैं, तो उसका आनन्द कितना बढ़ेगा? महात्मा गांधी इसी तरह के थे!

मानव-प्रेमी ही ईश्वर-भक्त

हमने अपनी आँखों गांधीजी का दर्शन किया और उनकी राह पर चलने की कोशिश की। उन्हें गये आज सात-आठ साल हो गये, फिर भी आज उनका जन्म-दिवस मना रहे हैं। महापुरुष कभी मरते नहीं, वे हम लोगों के हृदय में सदा-सर्वदा विद्यमान रहते हैं। जब वे शरीर में रहते हैं, तब छोटे होते हैं और जब शरीर छोड़ देते हैं, तो बहुत बड़े बन जाते हैं। महात्माजी जब शरीर मे थे, तब छोटे महात्मा थे, लेकिन शरीर छोड़ने के बाद वे महान् महात्मा हो गये हैं। वे हम सबको हिलाते हैं, प्रेरणा देते हैं। हम उनका स्मरण इसीलिए करते हैं कि उनकी राह पर चलें। उन्होंने हमें सिखाया था कि सब पर प्रेम करो, ऊँच-नीच भाव भूल जाओ, छूत-अछूत का भेद गलत है। यह भेद ईश्वर ने पैदा नहीं किया। जाति-भेद, धर्म-भेद आदि सारे भेद मनुष्य ने बनाये हैं। परमेश्वर ने तो हम सबको मानव बनाया है, अतः हम मानव के नाते एक-दूसरे पर प्रेम करें। इस तरह एक-दूसरे पर प्रेम करनेवाले ही ईश्वर को मानते हैं। फिर चाहे वे ईश्वर का नाम न लें, तो भी ईश्वर के भक्त हैं। जो अपने भाइयों पर प्रेम नहीं करते, वे ईश्वर के भक्त नहीं, चाहे वे राम-राम, कृष्ण-कृष्ण बोलते हों। हमने यही समझा है कि महात्मा गांधी ने हमें यह विचार दिया है।

यह कोई नया उपदेश नहीं, पुराना ही है। सब धर्म-ग्रन्थों ने यही उपदेश दिया है। ईसामसीह ने यही सिखाया है। बुद्ध भगवान् यही कहते गये और हमारे ऋषियों ने भी यही सिखाया। भक्त-मंडली ने यही घोष जगाया। लेकिन हमने .

गांधीजी के जीवन में यह चीज देखी। वे अपने सब भाइयों के साथ एकरूप हो गये थे। उनके प्रेम में कोई सीमा या भेद नहीं था। यह चरित्र हमने अपनी आँखों से देखा है।

हर कोई अपना प्रेमदान दे

गांधीजी ने हमें जो व्यापक प्रेम का विचार दिया, उस पर हमें चलना चाहिए। इसलिए उनके जाने के बाद हमने तय किया कि हम यही विचार सबको समझायेंगे। इसीके प्रचार के लिए हम पैदल घूम रहे हैं। मनुष्य को जब एक विचार मिलता है, तब उसके प्रचार का आवेश आ जाता है। हमें एक विचार मिला है, इसलिए हमारे पाँव रुक नहीं सकते। इसीलिए हम साढ़े चार साल से घूम रहे हैं, तो भी हमें कोई थकान नहीं आयी: बल्कि हमारा उत्साह दिन-ब-दिन बढ़ रहा है। ऊपर से बारिश बरसती है, तो हमें सुख होता है। खूब ठंड पड़ती है, तो हमें आनन्द होता है। कड़ी धूप में घूमते हैं, तो हमें खुशी होती है; क्योंकि हमें एक विचार लोगों के पास पहुँचाना है। वह प्रेम का विचार है। आज कुछ गाँववाले हमारे पास जमीन देने के लिए आये थे। बारिश बरस रही थी, तो भी वे आये और प्रेम से अपनी जमीन का हिस्सा देकर चले गये। इसी तरह हम चाहते हैं कि हर कोई अपना प्रेमदान दे।

लोभासुर को खतम करें

जिसके पास जमीन हो, वह जमीन दे; जिसके पास संपत्ति हो, वह संपत्ति दे; जिसके पास बुद्धि है, वह बुद्धि दे और जिसके पास शक्ति हो, वह शक्ति दे। ध्यान रखिये कि देनेवाले 'देव' बनते हैं और अपने पास रख लेते हैं, वे राक्षस। हमें इस लोभरूपी राक्षस के वश होना नहीं है। यह लोभासुर बड़ा भयानक है। रावण के दस सिर थे। लेकिन लोभासुर के सहस्र सिर होते हैं। याने मनुष्य को हजारों प्रकार का लोभ होता है। हमें उस लोभासुर को खतम ही करना चाहिए।

उदार आंध्र-निवासियों से आशा !

मुझे खुशी हो रही है कि लोग खुद होकर हमारे पास दान देने के लिए आते हैं। हमारा विश्वास है कि इस उदार आंध्र-देश में कोई ऐसा न रहेगा,

जो नहीं देगा। हमें आज की सभा देख और विश्वास हो गया है। खासकर यहाँ जिन भाइयों ने, बहनों ने और बच्चों ने मौन रखा, वे सब कुछ दे सकते हैं। मौन रखनेवाले स्थिर-बुद्धि होते हैं, जो स्थितप्रज्ञ की राह पर चल सकते हैं। वे अपनी आत्मा को व्यापक बना सकते और अपने पड़ोसी के लिए अपनी चीजें खुशी से दे सकते हैं। हमें यह संदेश घर-घर और गाँव-गाँव पहुँचानेवाले सच्चे जन-सेवक चाहिए। जहाँ लोगों के कान में विचार जायगा, वहाँ उनके हाथ को सहज ही प्रेरणा होगी।

भामिनी (श्रीकाकुलम्)
२-१०-'५५

संयम की शिक्षा से ही शान्ति, बन्दूक से नहीं : ४ :

हमने देखा, हमारी सभा में सब लोग बहुत शांति रखते हैं; लेकिन कुछ होते हैं व्यवस्थापक, जो सब बिगाड़ते हैं। ये दूसरों को बैठाने की धुन में खुद नहीं बैठते, दूसरों को शांत रखने की कोशिश में खुद शांति खोते हैं।

व्यवस्थापक ही अव्यवस्था के सर्जक

दुनियाभर मे जितनी गड़बड़ और अशांति है, उसका मुख्य कारण ये व्यवस्थापक लोग हैं। कुछ व्यवस्थापक होते हैं राज्यकर्ता, कुछ अधिकारीगण, कुछ पुलिस और लश्कर, तो कुछ वकील और न्यायाधीश। इस तरह तरह-तरह के व्यवस्थापक होते हैं। कुछ धार्मिक व्यवस्थापक भी हुआ करते हैं, जो 'पुरोहित' कहलाते हैं। इन्हीं सब व्यवस्थापकों के कारण आज दुनिया अव्यवस्थित बनी है। ये लोग कृपा कर अपना-अपना कर्तव्य करते रहें, तो दुनिया का भला होगा। बहुतों को लगता है कि अगर पुलिस न हो, तो न मालूम क्या-क्या गड़बड़ होगी ? पर यह प्रयोग करके देखने की बात है। खैर, अपने देश मे पुलिस है भी कितनी ! देशभर में पाँच लाख गाँव हैं, पर क्या हर गाँव के लिए पुलिस है ? लेकिन लोग पुलिस का आधार समझते और मानते हैं कि उसके कारण व्यवस्था रहती है। फिर ये पुलिस भी होते कौन हैं ? अगर दुनिया के ज्ञानियों

को चुन-चुनकर पुलिस बनाया जाता, तो हम कुछ समझ भी सकते। लेकिन लश्कर में तो वह भर्ती किया जाता है, जिसकी छाती छत्तीस इञ्च हो। कोई सद्गुण या सज्जनता देखकर पुलिस नहीं बनाया जाता। ऐसे लोगों के आधार पर शान्ति नहीं रह सकती।

शान्ति के लिए संयम का शिक्षण आवश्यक

स्वराज्य के अन्दर कई बार गोलीबार हुआ और उसका बचाव भी होता रहता है। इस पर पूछा जा सकता है कि क्या शान्ति-स्थापना का साधन बन्दूक है? अगर बन्दूक ही शांति-स्थापना का साधन हो, तो फिर दुनिया में पुलिस-ही-पुलिस चाहिए। फिर शिक्षा-विभाग की जरूरत ही नहीं, गुरु की जरूरत ही नहीं; क्योंकि ज्ञानदाता पुलिस जो बैठे हैं! बात यह है कि यह हम लोगों का बहुत बड़ा भ्रम है। सिर्फ हिन्दुस्तान में नहीं, दुनियाभर में यह भ्रम फैला है। इसीलिए हमने सत्ता का बोझ सिर पर उठाया। कहीं भी स्वतन्त्रता नहीं है। 'स्वतन्त्रता' का अर्थ तो यह होगा कि जहाँ हर मनुष्य अपने पर कब्जा या काबू रखे, जहाँ हर मनुष्य संयमशील हो। इसके लिए शिक्षा का खूब प्रचार करना चाहिए। ज्ञानियों को घूमते रहना चाहिए। गाँव-गाँव जाकर लोगों के पास ज्ञान पहुँचाना चाहिए। आज तो ज्ञानियों की बनती है। युनिवर्सिटी और ज्ञानियों के पास कोई जाय, तो फीस के बिना ज्ञान नहीं मिलता। इस तरह जहाँ रुकावट हो, वहाँ दुनिया ज्ञानी कैसे बनेगी? होना तो यह चाहिए कि पुलिस के बदले ज्ञानी लोग गाँव-गाँव घूमें। ज्ञानियों का कर्तव्य है कि लोगों के पास वे स्वयं पहुँचें। तभी समाज-रचना अच्छी बनेगी और लोग ज्ञानी होंगे।

दूसरों पर नहीं, स्वयं पर अंकुश रखो

आज सारी दुनिया में लश्कर का बोलबाला है। शस्त्रास्त्र-संभार बढ़ रहा है। ऐटम और हाइड्रोजन तक बात आयी है। इसीके जरिये दुनिया में शान्ति होगी, यह भ्रम फैला है। किन्तु इस भ्रम से सारी दुनिया को मुक्त होना ही पड़ेगा। हमें हरएक को यह समझाना होगा कि अपने पर अंकुश रखो और दूसरों पर अंकुश रखने की बात छोड़ दो। अगर हम अपने पर अंकुश रखते हैं, तो

उसका परिणाम सारी दुनिया पर हो सकता है। यह तालीम तो बच्चों को दी जा सकती है। हर घर में यह तालीम देनी चाहिए। जैसे हर मनुष्य को खाना और हवा चाहिए, वैसे ही ज्ञान भी चाहिए। जो चीज सब लोगों के लिए है और सब लोगों को चाहिए, वह खरीदी नहीं जा सकती। उसके लिए पैसे की जरूरत न होनी चाहिए। जैसे हवा मुफ्त मिलती है, वैसे ज्ञान भी मुफ्त मिलना चाहिए। हवा के लिए हमें श्रीकाकुलम् या विशाखपत्तनम् नहीं जाना पड़ता, फिर ज्ञान हासिल करने के लिए भी हमे कहीं जाने की जरूरत न पड़नी चाहिए। गाँव मे ही ज्ञान मिले, ऐसी योजना होनी चाहिए।

आज राज्यकर्ता गाँव-गाँव में ज्ञान पहुँचाने की योजना करने के बजाय सेना पहुँचाने की योजना करते हैं। वे कानून, अदालत और दण्ड का बल रखते और उसके आधार पर दुनिया में शान्ति रखना चाहते हैं। परिणामस्वरूप दुनिया में अशान्ति ही होती है। हम समझते हैं कि इन दिनों शान्ति का जितना जप होता है, उतना कभी नहीं होता होगा। हम धर्म-कार्य के शुरू में और अंत में 'शान्तिः शान्तिः' कहते थे; लेकिन आज तो शान्ति का उच्चारण अशान्ति के लिए, युद्ध के काम में, अधर्म के काम में होता है। देश-देश के नेता शान्ति की बात करते हैं, लेकिन उनका विश्वास दबाव में ही है। वे समझते हैं कि लोगों पर दबाव रखेंगे, तो शान्ति होगी। हम जानते हैं, हमने जितनी शान्ति अपनी सभा में रखी, पुलिस रखने और लोगों को डंडों का डर दिलाने पर उससे ज्यादा शान्ति यहाँ रहती। सब लोग शान्त बैठते। लेकिन वह मानसिक शान्ति नहीं, बाहरी शान्ति होती, वह जिन्दा शान्ति नहीं, श्मशान-शान्ति होती।

हमने हमेशा देखा है कि यह व्यवस्थापक-वर्ग अव्यवस्था करता है। पुलिस के कारण अशान्ति बढ़ती है। न्यायाधीश अन्याय बढ़ाते हैं। वकीलों ने असत्य का ज्यादा-से-ज्यादा प्रचार किया है। वकील लोग हमें माफ करें, वकील-वर्ग सत्य-शोधन के लिए खड़ा किया है। लेकिन उन लोगों ने ही दुनिया में असत्य बढ़ाने का काम किया है। व्यापारी लोग व्यवस्था करने की जमात है। सबको सामान ठीक ढंग से मिले, इसकी व्यवस्था और चिन्ता वे करते हैं। लेकिन लोगों की इस तरह सेवा करने के बजाय वे लूटने का काम करते हैं। हरएक में कुछ-

न-कुछ छीनना चाहते हैं। व्यापारी तो किसानों के सेवक हैं, लेकिन किसान दरिद्र हैं और उनके सेवक श्रीमान्। एक किसान एक चीज पैदा करता है, तो दूसरा किसान दूसरी चीज। इधर की चीज उधर पहुँचाना और उधर की चीज इधर पहुँचाना, यह व्यापारी का काम है। अगर हमारे देश के किसान गरीब हैं, तो व्यापारी श्रीमान् नहीं हो सकते। लेकिन व्यवस्था और सेवा के नाम पर ऐसी अव्यवस्था पैदा की जाती और लोगों को लूटा जाता है। इस पर रोक लगाये बिना शान्ति हो नहीं सकती।

नरसन्नापेट
८-१०-'५५

शासन-मुक्ति की ओर जाने का कार्यक्रम : ५ :

हमारे देश को दीर्घ प्रयत्न के बाद स्वाधीनता प्राप्त हुई है। आजादी की लड़ाई दूसरे देशों में भी लड़ी गयी। इसमें बहुत त्याग करना पड़ता है, यह भी सब लोग जानते हैं। अतः इसमें हमारे देश की कोई विशेषता नहीं। फिर भी इस देश की आजादी की लड़ाई एक विशेष ढंग से लड़ी गयी। दुनिया के इतिहास में यह बात गौरव के साथ लिखी जायगी। यही देश था, जहाँ आजादी के लिए शांतिमय साधनों का आग्रह रखा गया। हम यह दावा नहीं कर सकते कि हमने परिपूर्ण शांति का अनुसरण किया, फिर भी हमारे नेताओं का यही आग्रह रहा कि शांति के तरीके से ही लड़ाई हो। और कुल देश ने टूटा-फूटा ही क्यों न हो, शांति का प्रयत्न किया। उसीके परिणामस्वरूप इस देश को आजादी प्राप्त हुई। हम यह भी दावा नहीं करते कि हम लोगों के प्रयत्न से ही आजादी मिली। यह अहंकार रखने की गुंजाइश भी नहीं और उसे हम लाभदायी भी नहीं समझते। हम जानते हैं कि हिंदुस्तान की आजादी की प्राप्ति में दुनिया की ताकतों का भी योग है। दुनिया में एक ऐसी परिस्थिति थी, जिसके कारण अंग्रेजों को इस देश को अपने हाथ में ज्यादा दिन रखना कठिन था। फिर भी यह मानना होगा कि उसके साथ साथ यहाँ भी कुछ प्रयत्न किया गया और उसका बहुत ही

सुंदर असर इस देश के इतिहास पर हुआ। यहाँ यह भी देखने को मिला कि जिस देश के साथ हमारा झगड़ा था, उसके साथ स्नेह-संबंध बना रहा। इसमें जितना भारत का गौरव है, उतना ही इंग्लैंड का भी, यह हम जानते हैं। ऐसे एक विशेष तरीके से यहाँ की लड़ाई लड़ी गयी, इसलिए हमारे देश से बाहर की दुनिया कुछ अपेक्षा रखती है और इस देश की आवाज आज दुनिया में बुलंद है। हमारे पास कोई विशेष सेना-शक्ति नहीं, कुछ संपत्ति भी ज्यादा नहीं। फिर भी जो कुछ असर इस देश का दुनिया पर होता है, इसका कारण हमारे साधन हैं, जिससे इस देश की आजादी की लड़ाई लड़ी गयी। इसलिए हम पर एक विशेष जिम्मेवारी आती है, हमें उस जिम्मेवारी की गंभीरता महसूस करनी चाहिए।

आत्मज्ञान और विज्ञान

हमें समझना चाहिए कि हमारा देश बच्चा नहीं, दस हजार साल का अनुभवी पुराना देश है। मैं कभी आत्मा का वर्णन पढ़ता हूँ, तो उसमें मुझे इस देश का वर्णन दीख पड़ता है। "नित्यः शाश्वतः अयं पुराणः"—यह नित्य और शाश्वत है, यह पुराण है। यह है आत्मा का वर्णन और यही लागू होता है भारतवर्ष को। भारत के इतिहास में ही कुछ ऐसी विशेषता है, जिसके कारण दुनिया की नजर इस देश की ओर है। निस्सन्देह दो हजार साल में जो मौका हिंदुस्तान को नहीं मिला, वह आज मिला है। आत्मज्ञान की परंपरा इस देश में प्राचीन काल से थी।

अब विज्ञान की शक्ति भी दुनिया में प्रकट हुई है। इधर भारत की इस प्राचीन आत्मज्ञान-शक्ति और विश्व की अर्वाचीन विज्ञान-शक्ति का योग हो रहा है। ज्ञान और विज्ञान का जहाँ योग होता है, वहाँ सब तरह का क्षेम आ जाता है। लेकिन यह क्षेम तब होता है, जब उन ज्ञान-विज्ञान का हमारे जीवन में प्रवेश होता है।

भारत का व्यापक चिंतन

हिंदुस्तान में आवाज उठी है—'मानवता एक है।' हम वेद में पढ़ते हैं कि मानव का ग्रहण करो, बुद्धिमान् जन! मानवता का स्वीकार करो। 'प्रति

गृहीत मानवः सुमेधसः'—हे मेधावी जन ! मानवता ग्रहण करो। इस तरह मानवता की महिमा इस देश ने गायी है। मानवता से कोई छोटी चीज इस देश की संस्कृति को मंजूर नहीं। यहाँ के ज्ञानियों ने कोशिश की है कि मानवता से भी ज्यादा व्यापक हम बन सकें, तो बनें। इसीलिए हमने यहाँ के समाज में गायों को भी स्थान दे दिया। मैं बहुत बार समझाता हूँ कि हिंदुस्तान में अपना समाजवाद चलता है। इन दिनों पश्चिम में समाजवाद पैदा हुआ है, जिसे 'सोशलिज्म' (Socialism) कहते हैं। वह कहता है कि सभी मनुष्यों को समान अधिकार है। किन्तु हिंदुस्तान का समाजवाद कहता है कि मानव-समाज में हम गो-वंश को शामिल करते हैं और जो रक्षा हम मानव को देंगे, वही गायों को भी देंगे। यह छोटी प्रतिज्ञा नहीं, बहुत विशाल समाजवाद है। इसके लिए हम लायक बने हैं, सो नहीं। उस लिहाज से हम तो बिलकुल ही नालायक हैं। जहाँ हमें गायों और बैलों को भी रक्षण देना है और मानव के समान उन्हें भी मानना है, वहाँ हमें और भी बहुत व्यापक बनना है। गायों का रक्षा-शास्त्र भी हमें पढ़ना होगा।

अवश्य ही आज यूरोप में गायों की हालत हमारे देश से कहीं अधिक अच्छी है, फिर भी मानना होगा कि हमारे समाज-शास्त्र में जो खूबी है, वह पश्चिम के समाज-शास्त्र में नहीं है। वहाँ जो सबसे श्रेष्ठ शब्द है, वह है 'ह्यूमेनिटी' (Humanity) याने 'मानवता'। किन्तु हमारे यहाँ जो सबसे श्रेष्ठ शब्द है, वह है 'भूतदया'। हम जहाँ "सर्वभूतहिते रताः" कहते हैं, वहीं वे कहते हैं : 'ग्रेटेस्ट गुड ऑफ दि ग्रेटेस्ट नंबर' (Greatest good of the greatest number) याने मानव-समाज के अधिक-से-अधिक हिस्से का भला। वे 'सर्वमानवोदय' भी नहीं चाहते। कहते हैं, 'अधिकतम मानवोदय' होना चाहिए, जब कि हम मानवता से भी व्यापक चीज मानते हैं। सारांश, अवश्य ही आज हमारा आचरण बहुत गिरा हुआ है। संभव है कि पश्चिमी देशवासियों की तुलना में हम नीचे साबित हों, फिर भी जहाँ तक व्यापक चिंतन का ताल्लुक है, यहाँ का चिंतन बहुत व्यापक हुआ है याने हम मानवता से कम कभी नहीं सोचते।

आज की दयनीय दशा

किन्तु आज इस देश में एक विचित्र दशा दीख पड़ती है। यहाँ के लोग

अपने को विशिष्ट प्रांतवाले समझते हैं। कोई अपने को 'आंध्र' समझता है, कोई 'कन्नड', तो कोई 'बंगीय'! जिस देश के लोग अपने को "सोऽहम्" कहते थे, यानी मैं वह हूँ, जो अत्यंत व्यापक तत्त्व है—ऐसा मानते थे, उस देश के लोग अपने को जाति मे ही सीमित मानते हैं। जो अपने को मानवता से भी अधिक व्यापक समझते थे, वे आज 'भारतीय' से भी अपने को कम समझने लगे! आज यह तमाशा दीख रहा है कि S. R. C. (राज्यपुनर्संगठन-आयोग) ने कुछ बातें प्रकट कीं, तो एक प्रदेश खुश है और दूसरा नाखुश है। एक बात में एक को आनन्द है, तो उसीमें दूसरे को दुःख। अगर ऐसी योजना है, तो वह सर्वोदय-योजना नहीं है। सभी बंगाली राजी हैं कि 'मानभूम' का हिस्सा बंगाल को मिले। यानी कुल बंगाल की एक राय है। उसमें काग्रेसी, कम्युनिस्ट, हिन्दूसभावादी, जनसंघी, समाजवादी, सभी डूब गये। अगर उन लोगों को कहीं नाराजी है, तो यह इसी बात की है कि हमने जितना माँगा, उससे कम मिला। उधर कुल बिहार इसलिए दुःखी है कि 'मानभूम' का हिस्सा बंगाल मे जा रहा है। सचमुच इस समय देश की यह दशा अत्यत दयनीय है।

आखिर मानभूम भारत में ही रहेगा। यह केवल एक व्यावहारिक सवाल है, सहूलियतभर देखनी है। पर इसमें संकुचित हृदय दीख पड़ता है। इसलिए हमें समझना चाहिए कि हम खतरे में हैं। यह ठीक है कि यह एक व्यावहारिक विषय है। उसमे मतभेद हो जाते हैं, तो परस्पर चर्चा कर फैसला कर लिया जाय। लेकिन एक दुःखी हो, तो दूसरा फौरन सुखी, यह क्या बात है? इसका तो जंगल में दर्शन होता है। शेर सुखी होता है, जब उसके हाथ में हिरन आता है। जिस समय वह बड़े प्रेम और चाव से उसे खाने बैठता है, उसी समय हिरन अत्यत दुःखी होता है। अगर शेर के हाथों से कहीं हिरन छूटकर छिप जाय, तो शेर दुःखी होता है और हिरन को बड़ी खुशी होती है। यानी हिरन की खुशी में शेर का दुःख और शेर की खुशी में हिरन का दुःख! यह मानवता नहीं, पशुता है। इसलिए हमें गहराई से अपने देश के बारे में सोचना और अन्तर्मुख होना चाहिए। अगर मतभेद हैं, तो परस्पर चर्चा चलनी चाहिए, एक-दूसरे को समझाना चाहिए। अगर विश्वास न रहा, तो प्रेम दिखाकर अलग भी रह

सकते हैं। परन्तु ऐसे सवालों में मनक्षोभ की जरूरत नहीं है। अगर हम इतने संकुचित बन गये, तो भारतीय के नाते हमारी ताकत न बढ़ेगी।

हम कबूल करते हैं कि जहाँ भाषा के अनुसार प्रान्त-रचना होती है, वहाँ जनता को सहूलियत मिलती है। जब तक किसान को भाषा में राज्य का कारोबार नहीं होता, तब तक स्वराज्य का अनुभव हो नहीं सकता। इसलिए भाषानुसार प्रान्त-रचना का हम बड़ा महत्त्व मानते हैं। लेकिन इसमें ज्यादा अभिमान की बात होने का मुख्य कारण हमारे देश द्वारा पश्चिमी देश की रचना का अनुकरण करना ही है, जो खतरनाक है।

बहुसंख्यक-अल्पसंख्यक के झगड़े

हम लोगों ने यहाँ जो राज्य बनाया, उसका संविधान दूसरे देश के संविधान देख-देखकर बनाया। किन्तु उसमें सुधार करने की जरूरत है या नहीं, यह सोचने की बात है। उत्तर प्रदेश बहुत बड़ा देश है, इसलिए उसका वजन पार्लमेंट पर पड़ेगा, यह खतरा छोटे प्रान्तवालों को मालूम होता है। इसका कारण यही है कि हमने 'मेजॉरिटी लॉ' (बहुसंख्या का सिद्धान्त) मान लिया। किन्तु हिन्दुस्तान की सभ्यता तो "पंच बोले परमेश्वर" थी। याने महत्त्व के विषयों में पाँचों की एक राय बनती है, तभी वह मानी जाती है। पर पाश्चात्यों ने एक नया प्रकार शुरू कर दिया, जिसके कारण दुनिया में अल्पसंख्यक-बहुसंख्यक (Minority-Majority) के झगड़े खड़े हुए। चार विरुद्ध एक, प्रस्ताव पास, तीन विरुद्ध दो, प्रस्ताव पास! याने उन लोगों ने 'तीन बोले परमेश्वर, चार बोले परमेश्वर' शुरू कर दिया। 'मेजॉरिटी' का यह कानून हमने गलत ढंग से लागू किया, इसीलिए ये झगड़े उठ खड़े हुए।

सत्ता का विभाजन हो

स्वराज्य के बाद इस देश में 'वेलफेयर स्टेट' (Welfare State) का प्रारम्भ किया गया। इस 'वेलफेयर स्टेट' का अर्थ है, अधिक-से-अधिक सत्ता कुछ लोगों के हाथों में रहेगी और वे लोगों का सारा जीवन नियन्त्रित करेंगे। कुल देश के ५ लाख देहातों की योजना दिल्ली में बनेगी। जीवन के जितने अंग-प्रत्यंग हैं,

आज की चुनाव-पद्धति के दोष

दूसरी बात सोचने की है कि हम लोगों ने पश्चिम से चुनाव का जो तरीका लिया है, वह ! हम देखते हैं कि इस देश में जाति-भेद जितना फैला है, उतना पहले नहीं था। भूमिहार-ब्राह्मण और राजपूत-भेद बिहार में जाकर देखिये। कम्मा और रेड्डी भेद आन्ध्र में देखिये। ब्राह्मण और ब्राह्मणेतरवाद मद्रास में देखिये। इस तरह हर प्रान्त में अनेक प्रकार के भेद बढ़ गये। सोचने की बात है कि जिस जाति-भेद पर राजा राममोहन राय से लेकर महात्मा गांधी तक सबने प्रहार किया और जो टूट भी रहा था, वह आज इतना क्यों बढ़ रहा है ? कारण यही है कि यहाँ चुनाव ने जाति-भेद को बढ़ावा दिया। जब चुनाव से इतना भयानक परिणाम होता है, तो उसके तरीके में बदल करने की सख्त जरूरत है।

चुनाव से जाति-भेद की वृद्धि पहला दुष्परिणाम है। दूसरा यह है कि आज जो तरीका चलता है, उसमें जिसके पास ज्यादा पैसा है, वही इसमें भाग ले सकता है। जिसके हाथ में ज्यादा संपत्ति है, वही चुनाव में खड़ा होता है। इस हालत में गरीब और मूक जनता की आवाज कैसे उठेगी ?

और भी एक बात है। चुनाव होते हैं, परन्तु जो लोग खड़े होते हैं, उनके चेहरे भी हम नहीं जानते। लाखों मतदाताओं की ओर से जिन्हें चुनना है, उनके गुण तो खैर, उनका चेहरा भी हम नहीं जानते। इस तरह चुनाव से खर्चा बढ़ रहा है। जाति-भेद बढ़ रहा है और अच्छे मनुष्य ही चुनकर आयेंगे, इसका भी भरोसा नहीं रहता।

अप्रत्यक्ष चुनाव

इसलिए आज की प्रत्यक्ष चुनाव-पद्धति बदलकर हमें अप्रत्यक्ष चुनाव-पद्धति चलानी चाहिए, हम यह अपनी राय आप लोगों के सामने रखते हैं। गाँव-गाँव में जो योजनाएँ हों, उनमें पक्ष-भेद नहीं लाना चाहिए। गाँव में २१ साल के ऊपर के जो लोग होंगे, उनकी एक साधारण सभा बनेगी और गाँव का कारोबार चलाने के लिए वे अपने में से सर्वानुमति से एक समिति चुनेंगे। इस तरह सर्वानुमति का तत्त्व और पक्षरहित ग्राम-रचना हर ग्राम में होनी चाहिए। उसी ग्राम-

सभा की मार्फत ऊपर के चुनाव होंगे। इस तरह अप्रत्यक्ष चुनाव होने चाहिए। अगर हम सत्ता को विकेंद्रित कर अधिक-से-अधिक सत्ता ग्रामों में रखते हैं और वहाँ के फैसले सर्वानुमति से होते हैं, तो सबको सहूलियत होगी। तीसरी बात यह होगी कि ऊपर के चुनाव अप्रत्यक्ष पद्धति से हों। यह सारा हम स्वीकार करेंगे, तो भारत के अनुकूल सत्ता होगी। आज जो बहुत-से झगड़े चढ़े हैं, वे नहीं बढ़ेंगे। हिंदुस्तान के कुल नागरिकों के लिए यह सोचने की बात है।

आरोग्य का काम जनता उठा ले

दूसरी बात हमें ध्यान में यह लेनी है, अगर हम चाहते हैं कि हमारा समाज अहिंसा पर खड़ा हो, तो हमें दूसरे ढंग से सोचना चाहिए। उसके लिए हमें समाज की रचना अपने विचार से करनी चाहिए, केवल पश्चिम के अनुकरण से काम न चलेगा। आज दुनिया के सभी देशों के लोग शांति के लिए प्यासे हैं। सभी ऐटम और हाइड्रोजन की शक्ति से भयभीत हैं। वे समझ गये हैं कि इनसे दुनिया का निश्चित नाश होगा, कुछ काम नहीं होगा। किन्तु अगर हम शांति चाहते हैं, तो उसके अनुकूल रचना भी करनी होगी। करना यह होगा कि सरकार का एक-एक कार्य जनता को अपने हाथ में लेना होगा। काम कम होते-होते सरकार ही क्षीण हो जाय, ऐसी योजना करनी होगी।

यहीं एक मिसाल देखिये। यहाँ 'प्रेम-समाज' के लोग बीमारों और दुःखियों की सेवा करते हैं। इस तरह हिंदुस्तान के कुल बीमारों की सेवा करने का काम जनता उठा ले, तो सरकार का स्वास्थ्य-विभाग खतम हो जायगा। और यह होगा, तो बहुत बात बनेगी। जैसे 'रामकृष्ण-मिशन' के मठों ने सर्वत्र बीमारों की सेवा का काम उठा लिया है, जगह-जगह वैसी ही संस्थाएँ बनें और लोग वही काम उठा लें। फिर जनता का जिस चिकित्सा-पद्धति पर विश्वास हो, वही चलेगी। बी० सी० जी० का जो वाद चल पड़ा है, वह उठेगा ही नहीं। आज हालत यह है कि सरकार चाहे, तो सब लड़कों को बी० सी० जी० के इंजेक्शन दिलवा सकती है। राजाजी इस बारे में बहुत बोल चुके हैं। यह सारा इसीलिए होता है कि इस देश ने केंद्र के हाथ में सब सत्ता सौंप दी है। किन्तु अगर अपने बच्चों को कैसी दवा दी

जाय, यह हम ही तय करने लगें, तो सरकार का यह एक काम कम होकर उसकी सत्ता क्षीण हो जायगी। इस तरह देश को एक और आजादी मिल जायगी। पर आज आरोग्य के लिए कौन-सी पद्धति चलायी जाय, यह सरकार सोचती है और हम कहते हैं : 'यह बड़ा जुल्म है।'

शिक्षण सरकार के हाथ में न हो

दूसरी मिसाल लीजिये। आज शिक्षण पर राजसत्ता का नियंत्रण है। जो 'टेक्स्ट बुक' उस प्रदेश की सरकार तय करे, वही उस प्रांत के सब बच्चों को पढ़नी होगी। इसका मतलब यह है कि बच्चों के दिमागों में अपने विचार ठूँसने की शक्ति सरकार के हाथों में आये। अगर सरकार कम्युनिस्ट होगी, तो वह बच्चों को कम्युनिज्म सिखायेगी। फासिस्ट हो, तो फासिज्म सिखायेगी। सरकार सोशलिस्ट हो, तो बच्चों को सोशलिज्म सीखना होगा और पूँजीवादी हो, तो सर्वत्र पूँजीवाद का गौरव सिखाया जायगा। सरकार प्लानिंगवाली हो, तो प्लानिंग की महिमा बच्चों के दिमाग में ठूँसी जायगी। मतलब यह है कि बच्चों के दिमाग को आजादी नहीं रहेगी। इसलिए हमारे देश में माना गया था कि शिक्षण पर राज्य की सत्ता होनी ही नहीं चाहिए। सांदीपनि गुरु पर वसुदेव की सत्ता नहीं चल सकती थी। वसुदेव का लड़का श्रीकृष्ण सेवक बनकर सांदीपनि के पास गया और सांदीपनि कृष्ण को सुदामा के साथ लकड़ी चीरने का काम देते थे। वहाँ कौन-सी 'टेक्स्ट बुक' चलनी चाहिए, यह वसुदेव न देखता था। क्षत्रिय-सत्ता या राज-सत्ता शिक्षण पर हरगिज नहीं चल पाती थी। परिणाम यह हुआ कि संस्कृत भाषा में आज जितना विचार स्वातन्त्र्य है, उतना कहीं नहीं देखा जाता। हिन्दू-धर्म के अन्दर छह-छह दर्शन निकले और वे भी परस्पर एक दूसरे का विरोध करते थे, इतना विचार का स्वातन्त्र्य यहाँ चला। इसका कारण यही है कि राजसत्ता का कोई काबू शिक्षण पर नहीं था।

सारांश, अगर आज भी हिन्दुस्तान में लोगों की तरफ से शिक्षण की योजना चलेगी और सरकार का शिक्षण विभाग खतम हो जायगा, तो हिन्दुस्तान को और एक सत्ता मिल जायगी। इस तरह सरकार का एक-एक कार्य जनता के

हाथ में आयेगा और सरकार की सत्ता क्षीण होती जायगी, तो दुनिया में अहिंसा और शान्ति टिक पायेगी। नहीं तो केन्द्रीय सत्ता के हाथ में लोग रहेंगे, तो समझ लें कि दुनिया खतरे में है।

लोकशाही का ढोंग

क्या आप यह समझते हैं कि आपको मतदान का अधिकार मिला, इसलिए आपके हाथ में सचमुच सत्ता आ गयी? कलकत्ते में गायों के खून की नदियाँ बहती हैं, तो क्या आप यह समझते हैं कि वहाँ के लोग उसके लिए अनुकूल हैं? उत्तर प्रदेश में गो-वध की बन्दी हो गयी, तो क्या उत्तर प्रदेश का लोकमत बंगाल से अलग हो गया? बात यह है कि यहाँ लोकमत का कोई सवाल ही नहीं। बंगाल का मुख्य मन्त्री जिस तरह सोचता है, उसी तरह वहाँ का काम चलता है। उत्तर प्रदेश और बिहार में शराब की नदी बहती है। काशी में जितनी बड़ी विशाल गंगा नदी बहती है, उतनी ही विशाल शराब की नदी भी। उधर मद्रास और बम्बई में शराब की बंदी है। तब क्या आप समझते हैं कि बम्बई और मद्रास का लोकमत शराब के विरुद्ध और बिहार तथा उत्तर प्रदेश का अनुकूल है? स्पष्ट है कि अगर अच्छा मुख्य मन्त्री आये, तो राज्य अच्छा और गलत आये, तो राज्य गलत! मुगलों के राज्य में भी तो यही होता था। अकबर आया, तो अच्छा राज्य चला और औरंगजेब आया, तो खराब। जैसे उस समय लोकमत का कोई सवाल नहीं था, वैसे आज भी नहीं है, यद्यपि 'वोटिंग' (Voting) का ढोंग अवश्य चला है।

कहने के लिए तो ये सारे आपके 'सेवक' कहलायेंगे। आप मालिक हैं, पाँच साल के लिए आपने इन नौकरों को चुना है। लेकिन अगर हम मालिक जाग्रत न रहेंगे, तो ये ही नौकर कल 'पक्के मालिक' बन जायेंगे। और ये कहते हैं कि आपके कल्याण के लिए हमारे हाथ में ज्यादा-से-ज्यादा सत्ता होनी चाहिए। इसका नाम है कल्याणकारी राज्य (Welfare State)। किन्तु जब से यह कल्पना हमने की, तभी से हिन्दुस्तान पराधीन हो गया। कभी-कभी सोचता हूँ कि क्या १५ अगस्त १९४७ हमारा स्वतन्त्रता-दिन है या परतन्त्रता-दिन? क्योंकि

इसके पहले हम कुछ-न-कुछ करते थे। बिहार में भूकम्प हुआ, तो जमनालालजी वहाँ दौड़ पड़े। जनता ने काम शुरू किया। गुजरात में बाढ़ आयी, तो वल्लभभाई दौड़े गये। वहाँ की बाढ़ में लोगों ने खूब काम किया, जिसे देख अंग्रेज सरकार को भी शर्म आयी और वे काम करने लग गये। पर अगर आज बाढ़ आती है, तो कोई एक-दूसरे की मदद नहीं करता। कहते हैं, 'सरकार मदद करेगी।' गत वर्ष बिहार में बारिश में बाढ़पीड़ित क्षेत्र में मेरी यात्रा चल रही थी। मुजफ्फरपुर और दरभंगा जिलों में जबरदस्त बाढ़ थी और सीतामढ़ी के बहुत-से देहात पानी के अन्दर डूबे थे। फिर भी सीतामढ़ी शहर में सिनेमा बंद नहीं हुआ। मैंने वहाँ की सभा में कहा था : 'लोग पीड़ित हैं। उनकी मदद के लिए कम-से-कम १०-१५ दिन के वास्ते सिनेमा बंद करो। इतनी निठुरता क्यों?' कारण स्पष्ट है, वे सोचते हैं कि सरकार करेगी। उसमें हमारा क्या कर्तव्य है। हर बात में सरकार पर आधार रखना स्वतंत्रता का नहीं, गुलामी का लक्षण है।

जन-शक्ति से मसले हल हों

आज भूदान की तरफ लोगों का ध्यान क्यों जाता है? विदेशी लोग हमारी यात्रा में साथ घूमते हैं। दुनिया के बहुत सारे लोगों का ध्यान इसने खींच लिया है। क्योंकि लोग सोचते हैं कि यहाँ जनशक्ति के जरिये जमीन के बँटवारे का काम हो रहा है, बड़ी अद्भुत बात है। लेकिन यहाँ के लोग बाबा से पूछते हैं कि 'तुम पैदल-पैदल क्यों घूमते हो? सरकार से कानून बनवा लो, काम खतम हो जायगा!' पर वे सोचते नहीं कि क्या कानून से प्रेम भी किया जा सकेगा? बाबा ने सरकार को जमीन बाँटने से रोका कहाँ है? गत पाँच सालों में सरकार ने जमीन क्यों नहीं बाँटी? अगर वह जमीन बाँट देती, तो बाबा की यात्रा बंद पड़ती और वह दूसरा काम करता। लेकिन सरकार जिन लोगों की बनी है, वे सारे बड़े-बड़े जमीनवाले हैं। कांग्रेसवालों और सरकार की बात मैं छोड़ देता हूँ। कम्युनिस्ट दरिद्रों के पक्षपाती कहलाते हैं, लेकिन उन्होंने भी यही कहा कि 'कम्युनिस्टों का राज्य आयेगा, तो हम बीस एकड़ का सीलिंग करेंगे।'

कृष्णा-गोदावरी की तरीवाली २० एकड़ जमीन याने महाराष्ट्र की ५०० एकड़ जमीन! यहाँ २० एकड़ तरीवाला मनुष्य लक्षाधीश बनेगा। इतनी जमीन रखने के लिए कम्युनिस्ट राजी हैं, तो दूसरों की बात ही क्या? फिर भी मान लीजिये कि कानून से यह काम किया जायगा, तो क्या लोगों में प्रेम और जन-शक्ति पैदा होगी? इसीलिए दुनिया का भूदान की तरफ ध्यान है।

लोक-शक्ति के जरिये ऐसे विलक्षण कार्य होने जा रहे हैं, जिसकी आज तक किसीने कल्पना तक नहीं की, क्योंकि इसमें जन-शक्ति बढ़ती है। लोग प्रेम से जमीन दान देते हैं और एक मसला हल करते हैं। यह एक ऐसा कार्य होगा, जिससे दुनिया के दूसरे मसले हल हो सकेंगे। मान लीजिये, भूदान का काम जन-शक्ति से हो गया और गाँव-गाँव में प्रेम से जमीन बँट गयी, तो कितना बड़ा काम होगा। कोरापुट जिले में छह सौ ग्राम-दान मिले हैं। वहाँ जमीन की मालकियत मिट गयी, तो अब वहाँ सरकार के कानून को कौन पूछता है? अगर गाँव-गाँव के लोग तय करें कि हम जमीन की मालकियत नहीं रखेंगे, तो कौन उनके सिर पर मालकियत थोपेगा?

सत्ता विचार की ही चले, व्यक्ति की नहीं

इस तरह अपने देश का एक-एक मसला सरकार-निरपेक्ष जन-शक्ति से हल करना चाहिए। नहीं तो सारी सत्ता सरकार के हाथ में रहेगी और दुनिया मे शान्ति रहना मुश्किल हो जायगा। अभी पाकिस्तान ने अपना शस्त्रास्त्र-भंभार बढ़ाने के लिए अमेरिका की मदद लेना तय किया। उस समय अगर पंडित नेहरू का दिमाग ठिकाने पर नहीं रहता और वे कहते कि 'हम सबको युद्ध के लिए तैयार होना चाहिए' तो क्या हिंदुस्तान मे अशांति का वातावरण पैदा न होता? लेकिन परमेश्वर की कृपा से हमें एक ऐसे मनुष्य मिले हैं, जिनकी अक्ल ठिकाने पर है। याने हिन्दुस्तान में शांति रखना या देश को अशांति में डुबोना, यह सारा पंडित नेहरू पर निर्भर है। इस तरह किसी एक व्यक्ति के हाथ में सारे देश को ऊपर उठाने या नीचे गिराने की ताकत कानून से देना गलत है। अगर किसीके पास नैतिक शक्ति हो और लोग उसकी सलाह मानते

इसके पहले हम कुछ-न-कुछ करते थे। बिहार में भूकम्प हुआ, तो जमनालालजी वहाँ दौड़ पड़े। जनता ने काम शुरू किया। गुजरात में बाढ आयी, तो वल्लभ-भाई दौड़े गये। वहाँ की बाढ में लोगों ने खूब काम किया, जिसे देख अंग्रेज सरकार को भी शर्म आयी और वे काम करने लग गये। पर अगर आज बाढ़ आती है, तो कोई एक-दूसरे की मदद नहीं करता। कहते हैं, 'सरकार मदद करेगी।' गत वर्ष बिहार में बारिश में बाढ़पीड़ित क्षेत्र में मेरी यात्रा चल रही थी। मुजफ्फरपुर और दरभंगा जिलों में जबरदस्त बाढ़ थी और सीतामढ़ी के बहुत-से देहात पानी के अन्दर डूबे थे। फिर भी सीतामढ़ी शहर में सिनेमा बंद नहीं हुआ। मैंने वहाँ की सभा में कहा था: 'लोग पीड़ित हैं। उनकी मदद के लिए कम-से-कम १०-१५ दिन के वास्ते सिनेमा बंद करो। इतनी निठुरता क्यों?' कारण स्पष्ट है, वे सोचते हैं कि सरकार करेगी। उसमें हमारा क्या कर्तव्य है। हर बात में सरकार पर आधार रखना स्वतंत्रता का नहीं, गुलामी का लक्षण है।

जन-शक्ति से मसले हल हों

आज भूदान की तरफ लोगों का ध्यान क्यों जाता है? विदेशी लोग हमारी यात्रा में साथ घूमते हैं। दुनिया के बहुत सारे लोगों का ध्यान इसने खींच लिया है। क्योंकि लोग सोचते हैं कि यहाँ जनशक्ति के जरिये जमीन के बँटवारे का काम हो रहा है, बड़ी अद्भुत बात है। लेकिन यहाँ के लोग बाबा से पूछते हैं कि 'तुम पैदल-पैदल क्यों घूमते हो? सरकार से कानून बनवा लो, काम खतम हो जायगा!' पर वे सोचते नहीं कि क्या कानून से प्रेम भी किया जा सकेगा? बाबा ने सरकार को जमीन बाँटने से रोका कहाँ है? गत पाँच सालों में सरकार ने जमीन क्यों नहीं बाँटी? अगर वह जमीन बाँट देती, तो बाबा की यात्रा बंद पड़ती और वह दूसरा काम करता। लेकिन सरकार जिन लोगों की बनी है, वे सारे बड़े-बड़े जमीनवाले हैं। कांग्रेसवालों और सरकार की बात मैं छोड़ देता हूँ। कम्युनिस्ट दरिद्रों के पक्षपाती कहलाते हैं, लेकिन उन्होंने भी यही कहा कि 'कम्युनिस्टों का राज्य आयेगा, तो हम बीस एकड़ का सीलिंग करेंगे।'

कृष्णा-गोदावरी की तरीवाली २० एकड़ जमीन याने महाराष्ट्र की ५०० एकड़ जमीन! यहाँ २० एकड़ तरीवाला मनुष्य लक्षाधीश बनेगा। इतनी जमीन रखने के लिए कम्युनिस्ट राजी हैं, तो दूसरों की बात ही क्या! फिर भी मान लीजिये कि कानून से यह काम किया जायगा, तो क्या लोगों में प्रेम और जन-शक्ति पैदा होगी? इसीलिए दुनिया का भूदान की तरफ ध्यान है।

लोक-शक्ति के जरिये ऐसे विलक्षण कार्य होने जा रहे हैं, जिसकी आज तक किसीने कल्पना तक नहीं की, क्योंकि इसमें जन-शक्ति बढ़ती है। लोग प्रेम से जमीन दान देते हैं और एक मसला हल करते हैं। यह एक ऐसा कार्य होगा, जिससे दुनिया के दूसरे मसले हल हो सकेंगे। मान लीजिये, भूदान का काम जन-शक्ति से हो गया और गाँव-गाँव में प्रेम से जमीन बँट गयी, तो कितना बड़ा काम होगा। कोरापुट जिले में छह सौ ग्राम-दान मिले हैं। वहाँ जमीन की मालकियत मिट गयी, तो अब वहाँ सरकार के कानून को कौन पूछता है! अगर गाँव-गाँव के लोग तय करें कि हम जमीन की मालकियत नहीं रखेंगे, तो कौन उनके सिर पर मालकियत थोपेगा!

सत्ता विचार की ही चले, व्यक्ति की नहीं

इस तरह अपने देश का एक-एक मसला सरकार-निरपेक्ष जन-शक्ति से हल करना चाहिए। नहीं तो सारी सत्ता सरकार के हाथ में रहेगी और दुनिया में शान्ति रहना मुश्किल हो जायगा। अभी पाकिस्तान ने अपना शस्त्रास्त्र-संभार बढ़ाने के लिए अमेरिका की मदद लेना तय किया। उस समय अगर पंडित नेहरू का दिमाग ठिकाने पर नहीं रहता और वे कहते कि 'हम सबको युद्ध के लिए तैयार होना चाहिए' तो क्या हिंदुस्तान में अशांति का वातावरण पैदा न होता? लेकिन परमेश्वर की कृपा से हमें एक ऐसे मनुष्य मिले हैं, जिनकी अक्ल ठिकाने पर है। याने हिन्दुस्तान में शांति रखना या देश को अशांति में डुबोना, यह सारा पंडित नेहरू पर निर्भर है। इस तरह किसी एक व्यक्ति के हाथ में सारे देश को ऊपर उठाने या नीचे गिराने की ताकत कानून से देना गलत है। अगर किसीके पास नैतिक शक्ति हो और लोग उसकी सलाह मानते

हों, तो दूसरी बात है। गांधीजी की सत्ता हिंदुस्तान पर चलती थी, लेकिन वह नैतिक सत्ता थी। सब लोग उनकी बात मानने या न मानने के लिए मुक्त थे। इस तरह महापुरुषों की नैतिक सत्ता चले, तो उसमें कोई उज्र नहीं। लेकिन देश को बनाने या बिगाड़ने की कानूनी सत्ता किसी एक के हाथ में देना गलत है।

हम तो यह भी चाहते हैं कि लोग नैतिक सत्ता भी बिना सोचे-समझे कबूल न करें। बाबा यह नहीं चाहता कि बाबा की तपस्या देखकर आप लोग उसकी बात बिना समझे कबूल करें। वह यही चाहता है कि उसकी बात आपको जँचे, तभी आप उसे स्वीकार करें। हमने स्पष्ट जाहिर किया है कि हमारी बात समझे बिना कोई हमें दान देगा, तो उससे हमें दुःख होगा। हमारी बात समझकर कोई दान देता है, तो हमें खुशी होती है। हम चाहते हैं जन-शक्ति और लोक-हृदय का उद्धार। हम चाहते हैं कि सामूहिक संकल्प-शक्ति प्रकट हो, समुदाय की चित्त-शुद्धि हो। इस प्रकार की शक्ति प्रकट किये बिना अपना देश और दुनिया खतरे से नहीं बचेगी।

विशाखपत्तनम्
२७-१०-'५५

निरहंकार सेवा ही भक्ति : ६ :

[प्रेम-समाज के वार्षिकोत्सव में दिया गया प्रवचन]

ईसाइयों का सेवा-कार्य

आप जो काम कर रहे हैं, उससे भगवान् को अत्यन्त प्रसन्नता होती है। दुःखियों की सेवा से बढ़कर भगवान् को संतुष्ट करनेवाला दूसरा कोई काम नहीं है। उधर 'रामकृष्ण-मिशन' की तरफ से भी जगह-जगह सेवा-कार्य चलते हैं। 'ईसाई-मिशन' तो दुनिया में मशहूर ही है, पर हिन्दुस्तान में शायद पहली बार 'रामकृष्ण-मिशन' व्यापक सेवा-कार्य कर रहा है। ईसाई लोगों को मिशनरी कार्य की प्रेरणा ईसामसीह से मिली है। ईसामसीह ब्रह्मचारी और परम प्रेमी थे, वे महारोगियों और दुःखियों के बीच जाते तथा अपने स्पर्श से उन्हें शान्त करते थे। उस पवित्र स्मृति से प्रेरित होकर ईसा के अनुयायी दुनियाभर सेवा के लिए गये। किन्तु उनके मन में ऐसा कुछ रहता है कि हम दूसरों को ईसाई-धर्म की दीक्षा देंगे, तभी प्रेम-कार्य पूर्ण होगा। उन्हें मैं इसलिए दोष नहीं देता, लेकिन यह अवश्य कहता हूँ कि यह सकाम वासना है। अगर वह न होती, तो यह कार्य अधिक रमणीय और अधिक उज्ज्वल होता। फिर भी उन्होंने जो काम किया, उसकी उज्ज्वलता कुछ कम नहीं है।

शुष्क वेदान्त और सेवा-शून्य भक्ति

रामकृष्ण-मिशनवाले अद्वैत-सिद्धान्त से स्फूर्ति और प्रेरणा पाते हैं। उन्हें प्रेरणा का सुन्दर स्थान मिल गया। लेकिन हिन्दुस्तान में अद्वैत बिलकुल शुष्क पाया गया था। अद्वैती ज्यादा-से-ज्यादा निष्क्रिय हो गये थे। इसलिए प्रेम का प्रकर्ष अद्वैत में होना चाहिए, इसका दर्शन हिन्दुस्तान को नहीं होता था। प्रेम का प्रकर्ष हिन्दुस्तान में भक्ति-मार्ग में दीख पड़ता है, पर वहाँ यह कमी रही कि वह सेवा में परिणत नहीं हुआ। भक्त सबके लिए आदर और प्रेम रखते हैं,

लेकिन उनके धर्म की परिसमाप्ति, परिणति ध्यान और मूर्ति-पूजा में हो गयी। मूर्ति के ध्यान तक ही वह धर्म सीमित हो गया। वे सुबह भगवान् की मूर्ति को जगाते हैं, फिर उसके स्नान का एक नाटक करते हैं और फिर उसे खिलाने का नाटक करते हैं। रात को भगवान् सोते हैं, तो उनके सुलाने का एक नाटक होता है। पर यह तो एक किंडरगार्टन हुआ। याने वे सारे गाँव की सेवा किस तरह हो, इसका नमूना मन्दिर में खड़ा करते थे। अगर चार बजे गाँव के सब लोग उठें, ऐसा चाहते, तो भगवान् को भी चार बजे उठाते थे। अगर चाहते कि गाँव के कुल लोग सुबह छह बजे सूर्योदय के समय स्नान करें, तो भगवान् भी सूर्योदय के समय स्नान करते थे। अगर वे चाहते कि बारह बजे सबके घर नियमित भोजन हो, तो भगवान् भी बारह बजे भोजन करते थे। अगर वे चाहते कि गाँव के लोग सिनेमा देखकर आँखें न बिगाड़ें और रात में नौ बजे सो जायँ, तो भगवान् भी रात में नौ बजे सो जाते थे। इस तरह सारे गाँव के जीवन को नियंत्रित करने की युक्ति उन्होंने निकाली। उनका उद्देश्य बहुत अच्छा था। आप जितने दक्षिण में जायँगे, आपको इस बात का दर्शन होगा। दक्षिण के छोटे-छोटे गाँवों में भी बीच मे बहुत ही बड़ा मन्दिर होता है। कुल गाँव के लोगों के जीवन का नियंत्रण वह मन्दिर करता है।

यह सब अच्छा था, फिर भी भक्ति मार्ग उस मूर्ति के ध्यान में परिसमाप्त हो गया। दुःखी लोगों की सेवा में वह प्रकट नहीं हुआ। वे घर के लोगों की सेवा करते और घर-घर जो सेवा होती है, उसे ही पर्याप्त मानते हैं। लेकिन आज समाज की स्थिति ऐसी है कि इतनी सेवा पूरी नहीं हो सकती। घर में भी कहाँ सेवा करेंगे? घर में कोई बीमार पड़े, तो सोने के लिए अच्छी जगह नहीं। एक ही छोटा-सा कमरा है, उसीके अन्दर चूल्हा जलता है, सारा धुआँ फैलता है। ऐसी स्थिति में बीमार की सेवा कहाँ हो सकती है? इसलिए घर-घर व्यक्ति की सेवा कर सेवा-कार्य खतम हुआ, ऐसा नहीं। इसलिए भक्ति-मार्ग की परिणति प्रत्यक्ष सेवा में होनी चाहिए। वह नहीं हुई। इसलिए भक्ति-मार्ग में कमी रह गयी।

और जैसा कि अभी मैंने कहा, अद्वैत इतना शुष्क हो गया कि कुछ काम

ही नहीं करता था। खाना होता, तो वह लाचारी से खाता, भिक्षा माँगनी पड़ती, तो माँगता, पर यह सारा अपने उद्देश्य में बाधक समझता था। इस तरह कार्यमात्र को ही बाधक माननेवाला वेदान्त फैला और उससे शुष्कता आ गयी। मैं कबूल करता हूँ कि प्रेम का अत्यन्त प्रकर्ष दिल में होता है। और अद्वैत पूर्ण होता है, तो बाह्य-क्रिया समाप्त होती है। ऐसा कोई महान् अद्वैती हो, तो उसके दर्शन से ही दुःख दूर होंगे। परन्तु ऐसा महात्मा लाखों, करोड़ों में एक होता है। उसके नाम से अद्वैत विचार के लोग शुष्क बन जायँ, क्रियाहीन हो जायँ, तो उसमें कोई वीर्य नहीं रहेगा।

अद्वैत और भक्ति-मार्ग में संशोधन

सारांश, हिन्दुस्तान में पहली बार रामकृष्ण-मिशन द्वारा अद्वैत से प्रेरित होकर पूर्ण प्रेम की सेवा शुरू हुई और पहली ही बार यहाँ महात्मा गांधी द्वारा भक्ति-मार्ग के तौर पर समाज-सेवा शुरू हुई। रामकृष्ण के शिष्यों ने अद्वैत-कार्य में प्रेम का प्रकर्ष सेवा में किया। महात्मा गांधी ने परमेश्वर की भक्ति का सारसर्वस्व मानव-सेवा में सिखाया। इस तरह आधुनिक समाज में भक्ति-मार्ग और अद्वैत-सिद्धान्त का बहुत संशोधन हुआ। इसी परंपरा में ये प्रेम-समाजवाले आये हैं।

अगर लोग या ऐसी संस्थाएँ ऐसे बहुत से सेवा-कार्य उठा लेंगे, तो सरकार का काम क्षीण हो जायगा। ऐसे काम को सरकार मदद देना चाहती है, तो जरूर दे और देनी भी चाहिए। किन्तु यदि हिन्दुस्तान का कुल सेवा-कार्य सामाजिक संस्था उठा ले, तो सामूहिक संकल्प का दर्शन होगा।

सेवा में अहंकार न हो

सरकार का एक-एक कार्य लोगों के हाथ में आना चाहिए और सरकार क्षीण होनी चाहिए और वह क्षीण हो भी सकती है। यह सेवा-कार्य ऐसा है कि हिन्दुस्तान की जनता उसे आसानी से उठा सकती है। सेवा में उसकी उत्तम शक्ति प्रकट हो सकती है। फिर भी उसमें एक शर्त है। अगर सेवा में अहंकार का भाव रहा, तो वह सेवा भक्ति नहीं हो सकती। अगर सेवा में अहंकार खतम

हो गया, तो वही सेवा भक्ति हो जाती है। माँ बच्चों की सेवा करती है और बच्चा माँ की सेवा। उसमें अगर अहंकार का अंश न रहे, तो वही भगवान् की पूजा हो सकती है। लेकिन अगर माँ के मन में यह खयाल रहे कि यह तो मेरा बच्चा है, तो वह साधारण सेवा होगी, भक्ति नहीं। सेवा को भक्ति का, सर्वोत्तम भक्ति का रूप आ सकता है, अगर उसमें अहंकार न हो। यहाँ जो कुछ दीन लोग आयें, उन्हें यह भान न हो कि यह हम पर उपकार हो रहा है। अगर उनके मन में ऐसा विचार आया, तो हम कहेंगे कि ये उपकारकर्ता अहंकारी हो गये। हमारे मन में यही भावना होनी चाहिए और यही अनुभव होना चाहिए कि ये 'अनाथ' कहलानेवाले अनाथ नहीं, हमारे नाथ हैं। भगवान् ने इनका रूप धारण किया है। उन सेवा लेनेवाले बीमारों के मन में भी यह भावना न होनी चाहिए कि अमुक-अमुक व्यक्ति हमारी सेवा कर रहे हैं। यही भावना होनी चाहिए कि भगवान् इनके रूप में मेरी सेवा करता है। अगर यह मजा सेवा में दाखिल हो जाय, तो सेवा सर्वोत्तम भक्ति बन जायगी।

विशाखपत्तनम्
२७-१०-'५५

सर्वोदय में शत-प्रतिशत प्राइवेट और पब्लिक सेक्टर : ७ :

हमें पश्चिम से बहुत बातें सीखनी हैं, खासकर विज्ञान की। लेकिन जहाँ तक समाजशास्त्र का ताल्लुक है, हमें उससे बहुत कम सीखना है। वैसे समाजशास्त्र के बारे में पश्चिमी भाषाओं में बहुत साहित्य लिखा गया है, फिर भी हमारी संस्कृति अलग ही है। भारतीय सभ्यता की विशेषता 'संयम' है। आपने स्थितप्रज्ञ के लक्षण में सुना होगा कि जिसने अपने इन्द्रियों पर काबू रखा है, उसकी प्रज्ञा स्थिर है। यह केवल यहाँ के धर्मशास्त्र ने ही नहीं, बल्कि राजनीति शास्त्र ने भी कहा है। 'प्रजा की मुख्य शक्ति इन्द्रिय-निग्रह है', यह कौटिल्य ने भी लिखा है। कौटिल्य धर्मशास्त्र का लेखक नहीं, वह तो एक अर्थशास्त्रज्ञ और राजनीतिशास्त्रज्ञ था। तथ्य यह है कि संयम से समाज बनता है और जिस समाज में लोग संयम नहीं रखते, वहाँ फूट पड़ती है।

हो गया, तो वही सेवा भक्ति हो जाती है। माँ बच्चे की सेवा करती है और बच्चा माँ की सेवा। उसमें अगर अहंकार का अंश न रहे, तो वही भगवान् की पूजा हो सकती है। लेकिन अगर माँ के मन में यह खयाल रहे कि यह तो मेरा बच्चा है, तो वह साधारण सेवा होगी, भक्ति नहीं। सेवा को भक्ति का, सर्वोत्तम भक्ति का रूप आ सकता है, अगर उसमें अहंकार न हो। यहाँ जो कुछ दीन लोग आयें, उन्हें यह भान न हो कि यह हम पर उपकार हो रहा है। अगर उनके मन में ऐसा विचार आया, तो हम कहेंगे कि ये उपकारकर्ता अहंकारी हो गये। हमारे मन में यही भावना होनी चाहिए और यही अनुभव होना चाहिए कि ये 'अनाथ' कहलानेवाले अनाथ नहीं, हमारे नाथ हैं। भगवान् ने इनका रूप धारण किया है। उन सेवा लेनेवाले बीमारों के मन में भी यह भावना न होनी चाहिए कि अमुक-अमुक व्यक्ति हमारी सेवा कर रहे हैं। यही भावना होनी चाहिए कि भगवान् इनके रूप में मेरी सेवा करता है। अगर यह मजा सेवा में दाखिल हो जाय, तो सेवा सर्वोत्तम भक्ति बन जायगी।

विशाखपत्तनम्

२७-१०-'५५

सर्वोदय में शत-प्रतिशत प्राइवेट और पब्लिक सेक्टर : ७ :

हमें पश्चिम से बहुत बातें सीखनी हैं, खासकर विज्ञान की। लेकिन जहाँ तक समाजशास्त्र का ताल्लुक है, हमें उससे बहुत कम सीखना है। वैसे समाजशास्त्र के बारे में पश्चिमी भाषाओं में बहुत साहित्य लिखा गया है, फिर भी हमारी संस्कृति अलग ही है। भारतीय सभ्यता की विशेषता 'संयम' है। आपने स्थितप्रज्ञ के लक्षण में सुना होगा कि जिसने अपने इन्द्रियों पर काबू रखा है, उसकी प्रज्ञा स्थिर है। यह केवल यहाँ के धर्मशास्त्र ने ही नहीं, बल्कि राजनीति-शास्त्र ने भी कहा है। 'प्रजा की मुख्य शक्ति इन्द्रिय-निग्रह है', यह कौटिल्य ने भी लिखा है। कौटिल्य धर्मशास्त्र का लेखक नहीं, वह तो एक अर्थशास्त्रज्ञ और राजनीतिशास्त्रज्ञ था। तथ्य यह है कि संयम से समाज बनता है और जिस समाज में लोग संयम नहीं रखते, वहाँ फूट पड़ती है।

प्राइवेट और पब्लिक सेक्टर का वाद

आज सभी लोग समाजवाद की बातें करते हैं। कांग्रेस कहती है कि 'हमें समाजवादी समाज-रचना करनी चाहिए।' यह बड़ी खुशी की बात है। लेकिन समाजवाद तब बनता है, जब एक-एक व्यक्ति संयमशील बने। जहाँ समाज का हरएक व्यक्ति अपने को समाज से अलग मानता है, वहाँ समाजवाद नहीं बन पाता। 'समाजदेवो भव' माननेवाले व्यक्ति ही समाजवादी बन सकते हैं। जब हर व्यक्ति यह माने कि हमें अपनी सारी शक्ति समाज को समर्पित करनी है, तभी समाजवाद बन सकता है।

आजकल तो देश के लिए आर्थिक योजना (प्लानिंग) बनाने की भी बड़ी चर्चा चल रही है। वहाँ झगड़ा चल रहा है कि प्राइवेट और पब्लिक सेक्टर को कितना-कितना महत्त्व दिया जाय—कितने काम समाज के हाथ में और कितने काम व्यक्ति के हाथ में दिये जायँ। किन्तु यह तो ऐसा सवाल है कि कितना काम अंगुलियों से और कितना काम हाथ से किया जाय? जनता के हाथ में ज्यादा काम दिया जाता है, तो पूँजीवाले घबड़ाते हैं और प्राइवेट व्यक्तियों के हाथ में ज्यादा काम दिया जाय, तो समाजवादी। फिर दोनों के बीच सामंजस्य बैठाने की बात चलती है। कहा जाता है कि 'प्राइवेट सेक्टर में ५० प्रतिशत और पब्लिक सेक्टर में ५० प्रतिशत शक्ति दी जाय। बाद में धीरे-धीरे व्यक्ति के हाथ से कम करते हुए समाज का हिस्सा बढ़ायें, तो आखिर व्यक्ति का हिस्सा शून्य बनकर समाज का हिस्सा ही १०० प्रतिशत बन जायगा।'

सर्वोदय में दोनों के हाथ सौ प्रतिशत शक्ति

लोग पूछते हैं कि सर्वोदय की योजना क्या है? तो हम उत्तर देते हैं कि इसमें व्यक्ति के हाथ में १०० प्रतिशत और समाज के हाथ में भी १०० प्रतिशत शक्ति की व्यवस्था है। दोनों मिलकर १००! यह हमारा सर्वोदय-गणित है, जो वालटेयर की यूनिवर्सिटी में सिखाया नहीं जाता। जैसे परिवार में हरएक व्यक्ति के हाथ में सौ प्रतिशत शक्ति होती है—बाप, बेटा और माँ की शक्ति में बँटवारा नहीं होता, परिवार के व्यक्ति और परिवार के बीच कोई भेद नहीं होता—वैसे

ही व्यक्ति और समाज के बीच कोई फर्क नहीं है। यह भारतीय सभ्यता का विचार है। व्यक्ति अपनी सारी सेवा समाज को देगा और समाज भी हरएक *व्यक्ति को पूरी स्वतंत्रता देगा। उसके विकास की पूरी योजना समाज में होगी।* यही है हमारी सर्वोदय-योजना! यहाँ 'ग्रेटेस्ट गुड ऑफ दि ग्रेटेस्ट नंबर' नहीं चलता, यहाँ तो 'सर्वभूतहिते रताः' चलता है। याने हम भिन्न-भिन्न व्यक्तियों में विरोध पैदा कर समाज रचना करना नहीं चाहते। 'सा रे ग म प ध नि सा' ये सात स्वर होते हुए भी इनमें कोई विरोध नहीं है। सबका समुचित उपयोग करके हमें उत्तम संगीत मिलता है। क ख ग घ——इन पर मात्राओं में कोई विरोध नहीं, सब मिलकर उत्तम साहित्य और ग्रंथ बन सकता है। षड्रसों में विरोध नहीं होता, सब मिलकर सुंदर भोजन तैयार हो सकता है। हममें योजना करने की कुशलता चाहिए। कुशलतापूर्वक योजना होने पर समाज की हरएक व्यक्ति को पूरी सेवा मिलेगी। किंतु हमने तो पश्चिम का समाजशास्त्र और राजनीति-शास्त्र अपनाया है। इसलिए 'मैजॉरिटी' और 'माइनॉरिटी' का ही सवाल चल रहा है। इसके परिणामस्वरूप सारी दुनिया में नयी जातियाँ खड़ी हो गयी हैं। सब मिलकर कोई बात तय करें, ऐसा रह ही नहीं गया!

पश्चिम की सदोष चिन्तन-पद्धति का अभिशाप

यह सारा पश्चिम से लाये हुए समाज-शास्त्र और राजनीति-शास्त्र का ही परिणाम है। इसमें समाज को सेवा देने की जगह उस पर वजन कैसे डाला जाय, इसीका विचार चलता है। इसमें चिंतन कर्तव्य-प्रधान नहीं, हक-प्रधान होता है। एक मजेदार बात मैं आपको सुनाऊँगा! अपनी संस्कृत भाषा में 'हक' के लिए कोई शब्द ही नहीं है। हक का तर्जुमा 'अधिकार' किया जाता है। लेकिन संस्कृत में 'अधिकार' का अर्थ होता है, कर्तव्य। 'मनुष्याधिकारं कर्म।' इसलिए संस्कृत का अधिकार 'कर्तव्य'-वाचक शब्द है। हमारे यहाँ परिवार में माँ-बाप और संतान के हक के बारे में नहीं, कर्तव्य के बारे में सोचा जाता है। यही हमारी भारतीय चिंतन-पद्धति है। इसके विपरीत पश्चिम से आयी पद्धति से परस्पर-विरोधी हित बनते हैं। फलस्वरूप आज गुरु-शिष्य के हित भी परस्परविरुद्ध होने

लगे हैं। विद्यार्थियों की अपने गुरु के विरुद्ध 'फेडरेशन' या संस्थाएँ बनती हैं। 'अखिल भारत विद्यार्थी संघ' तो बन गया, अब 'अखिल भारत बेटा-संघ' बनना ही बाकी है!

इस तरह आज पश्चिम के इस चिन्तन से हमारे समाज के टुकड़े-टुकड़े हो रहे हैं। 'सारा समाज एक परिवार है' यह भावना ही हम भूल गये हैं। पुराने जमाने में सिर्फ जाति-भेद थे, पर अब इसमें वर्ग-भेद भी आ गया है। पहले तो कुम्भार, चमार और तेली के कर्तव्य में कोई विरोध नहीं था, स्पर्धा न हो, ऐसी योजना थी। लेकिन आज उसमे ऊँच-नीचता आ गयी और उसके कारण जाति-भेदों में खराबी आ गयी। परिणाम यह हुआ कि हिंदुस्तान में भेद बढ़ ही रहा है।

भूदान में भारतीयता का गुण

सर्वोदय समाज-रचना अलग ही प्रकार की है। हमारा एक ही भारतीय धर्म है। हम सब दुनिया की अपने ढंग से सेवा करना चाहते हैं। हम न तो दुनिया को लूटना चाहते हैं और न उससे स्वयं को लुटवाना ही चाहते हैं। बाहरवालों को पूरी आजादी मिले और हमारे देश को भी आजादी रहे, ऐसी हमारी कोशिश रहेगी। एक की आजादी का दूसरे से विरोध नहीं हो सकता। ऐसा समाज कर्तव्य-प्रधान होगा और उसका आधार संयम और जितेंद्रियता होगी। उसमें हर-एक व्यक्ति अपनी सारी सेवा समाज को समर्पित करने के लिए हर हमेशा उत्सुक रहेगा।

हमारा यह भूदान-यज्ञ इसीलिए इतना लोकप्रिय हुआ कि हम लोगों को भोग नहीं, त्याग करना सिखाते हैं। यह कोई छोटी घटना नहीं है। हिंदुस्तान के ही नहीं, दुनिया के भी इतिहास में कभी चार लाख लोगों ने भूमिदान नहीं दिया है। इसने सारी दुनिया का ध्यान खींचा है। इसमें कुछ भी जबरदस्ती नहीं की गयी, प्रेम से समझाया गया और इतना दान मिल गया। हमें अभी तक एक भी शख्स ऐसा नहीं मिला, जिसने दान देने से इनकार किया हो। किसीने मोहवश कह दिया कि 'हम दान नहीं दे सकते', लेकिन 'दान देना उचित है',

यह सभी मानते हैं। आखिर मोह जाने में भी कुछ समय लगता ही है। किन्तु हम जहाँ गये, वहाँ सबने अत्यन्त शांति और उत्साह से हमारी बात सुनी। इसका कारण यही है कि भारतीयता जैसी कोई चीज है, जिसका गुण इस आंदोलन में प्रकट होता है। हम समझते हैं कि इस काम से नौजवानों में बड़ा उत्साह आना चाहिए, क्योंकि जिस जीवन में त्याग का मौका नहीं, वह जीवन नीरस होता है।

कम्युनिस्टों का २० एकड़ का सीलिंग

लोग हमसे कानून द्वारा भूमि-समस्या का हल करने के लिए कहते हैं। पर हम कहते हैं कि हम न तो कभी चुनाव के लिए खड़े हुए और न कभी होने ही वाले हैं। चुनाव के समय भी गंगा-प्रवाह की तरह बाबा की पदयात्रा सतत जारी रही। इस तरह हमसे चुनाव का कोई वास्ता नहीं। लेकिन आपने सरकार को चुना है। आप उससे कानून बनवाना चाहते हों, तो बनवायें, हम रोकते नहीं। लेकिन सरकार क्या कर सकती है? अभी तो राज्य कांग्रेस के हाथ में है। लेकिन समझ लो कि सरकार कम्युनिस्टों की हो जाय, जो गरीबों के पक्षपाती समझे जाते हैं, तो वे लोग भी यही चाहते हैं कि २० एकड़ वेट लैंड का सीलिंग हो। गोदावरी, कृष्णा की २० एकड़ वेट लैंड का अर्थ है, एक लाख रुपया। आप ही सोचें कि फिर इस 'सीलिंग' से गरीबों को क्या मिलेगा? लेकिन बाबा कहता है कि जैसे हवा, पानी और सूरज की रोशनी का कोई मालिक नहीं, वैसे ही जमीन का भी कोई मालिक नहीं हो सकता। इसलिए गाँव के सभी लोगों को, जो भूमि की काश्त करना चाहते हों, भूमि मिलनी चाहिए। इन सबको देने पर अगर कुछ बचे, तो दो-चार एकड़ किसीके पास अधिक रहने में कोई उज्र नहीं।

वास्तव में भूमि हमारी माता है और हम उनके सेवक हैं। इसके बदले अगर हम भूमि के मालिक बनते हैं, तो अधर्म करते हैं। लेकिन इन दिनों यही बात चल पड़ी है। गाँव-गाँव के उद्योग टूट गये। फिर लोगों ने पैसे के लिए जमीन बेचना शुरू किया, जिससे जमीन साहूकार और व्यापारियों के हाथ चली गयी। जमीन पर कीमत लगना शुरू हुआ। नहीं तो जमीन खरीदने-बेचने की चीज

नहीं है। उसकी कीमत पैसे से नहीं आँकी जा सकती। लोग सुनाते हैं कि यहाँ की जमीन बड़ी महँगी है, पाँच हजार रुपये एकड़ की है। लेकिन इस तरह जमीन की कीमत करना गलत है। क्या आप अपनी माँ की इस तरह कीमत लगाते हैं? महाराष्ट्र में माँ की जितनी कीमत है, उससे ज्यादा कीमत हमारी माँ की है, क्योंकि महाराष्ट्र की माँ कुरूप है और हमारी माँ सुन्दर है—इस तरह जो लड़के अपनी माँ की कीमत रुपये में करते होंगे, वे माँ की क्या सेवा करेंगे। माँ कुरूप हो या सुरूप, उसकी कीमत रुपये में नहीं हो सकती। वह अमूल्य है, उसका प्रेम कुरूप नहीं होता। रूप देखकर उसकी कीमत नहीं की जा सकती। इसी तरह चाहे जमीन कम फसल दे या ज्यादा, वह हमारी माँ है और अमूल्य है।

पीठापुरम्
८-११-'५५

साम्ययोग और साम्यवाद : ८ :

जिस तरह बुद्ध भगवान् ने यज्ञ में चलनेवाली पशु-हिंसा का सवाल हाथ में लेकर दुनिया में करुणा का विचार फैलाया, उसी तरह हम भी भूमि-समस्या हाथ में लेकर लोभमूलक मालकियत की कल्पना मिटाने का विचार दुनिया में फैलाना चाहते हैं। भूदान-आन्दोलन को हमने 'साम्ययोग का आन्दोलन' कहा है, जो दुनिया में अन्यत्र चलनेवाले 'साम्यवाद' से सर्वथा भिन्न है। साम्यवाद को हम एक ऊँचा और उदार विचार मानते हैं। वह हर हालत में पूँजीवाद से बेहतर है, फिर भी उसमें जो कई प्रकार के दोष हैं, उनका विवरण भी हम जनता के सामने रखना आवश्यक मानते हैं। उसकी मुख्य न्यूनता है, उसका पूँजीवाद की प्रतिक्रिया के रूप में पैदा होना। जो विचार प्रतिक्रियास्वरूप पैदा होता है, वह व्यापक नहीं हो सकता, उसका दायरा सीमित बन जाता है। इसलिए साम्यवाद में कुछ मर्यादाएँ आ गयी हैं। किन्तु साम्ययोग में ऐसी कोई मर्यादा नहीं, वह एक व्यापक जीवन-दर्शन है।

उद्देश्य सीमित, पर प्रकार व्यापक रहे

आज एक भाई ने देहात के मजदूरों में श्रमदान-आन्दोलन चलाने की इच्छा प्रकट की। मैंने उनसे कहा कि श्रमदान केवल मजदूरों से ही क्यों लिया जाय, कुल मानव-समाज से क्यों नहीं ? यह ठीक है कि आरम्भ में मजदूर ही श्रमदान देंगे, लेकिन प्रोफेसर, व्यापारी, मन्त्री आदि सभी से वह श्रमदान क्यों न माँगा जाय ? हम अपना आन्दोलन मजदूरों तक ही सीमित क्यों करें ? अगर हम *सिर्फ मजदूरों से ही श्रमदान माँगेंगे, तो मजदूर और गैर-मजदूर, ऐसे दो टुकड़े* बन जायँगे। इस तरह टुकड़े करने से आरम्भ में ही हम अपनी ताकत घटायेंगे। इसलिए हमारा विचार ऐसा होना चाहिए, जो सारी मानवता के लिए लागू हो। चाहे *उसका उद्देश्य सीमित क्यों न हो, पर उसका प्रकार या तरीका व्यापक* होना चाहिए। भूदान-आन्दोलन का उद्देश्य सीमित है, पर उसका तरीका सारी दुनिया को लागू होता है। सूर्यनारायण हर चीज को समान उष्णता देता है, पर कोई चीज कम उष्णता लेती है, तो कोई ज्यादा। *सूर्य-किरणों से बर्फ ही पिघलेगा,* पानी नहीं; पानी तो सिर्फ गरम हो जायगा। पानी से मिट्टी ज्यादा गरम होगी, मिट्टी से पत्थर और पत्थर से लोहा ज्यादा गरम हो जायगा। यद्यपि सूर्य-किरणों का असर हर चीज पर *कम-बेशी होगा,* फिर भी *सूर्य कभी यह नहीं कहेगा कि मैं बर्फ* को पिघलाने का कार्यक्रम कर रहा हूँ। वह जानता है कि मेरी किरणों से लोहा नहीं, बर्फ ही पिघलेगा; फिर भी वह कहेगा कि मैं कुल दुनिया को गरम करने *आया हूँ। वह अपने प्रयोग को सीमित नहीं करेगा,* इसी *तरह पानी भी नारियल* के पेड़ में जाने से मधुर फल पैदा करेगा, मिर्च के पास जाने से तीखा और कपास के पौधे के पास जाने से तंतुवाला फल पैदा करेगा। इस तरह पानी का अलग-अलग परिणाम होता है। पानी में चीनी और मिट्टी पिघल (गल) जायगी, पर पत्थर या लोहा नहीं। फिर भी पानी की कोशिश सारी दुनिया पर प्रभाव डालने की होगी।

खानेवाले को श्रम करना चाहिए

सारांश, जो विचार महान् होता है, वह सीमित दायरे में नहीं रहता। इसलिए हमें हरएक से श्रमदान लेना है। हमारा पराक्रम चला, तो वह जरूर

हो सकेगा। हम चाहते हैं कि मालिक-मजदूर का भेद ही न रहे। हिंदुस्तान में हर व्यक्ति प्रतिदिन कम-से-कम एक-एक घण्टा श्रमदान दे। आज देश में उत्पादन बढ़ाने की बहुत आवश्यकता है। देश के बड़े-बड़े नेता कह रहे हैं कि 'उत्पादन बढ़ाओ, उत्पादन बढ़ाओ'। लेकिन क्या खेतों और कारखानों में काम करनेवाले मजदूर आठ के बदले नौ घंटे काम करें—यही कोई उत्पादन बढ़ाने का तरीका है? होना तो यह चाहिए कि श्रम की प्रतिष्ठा बढ़े। गांधीजी ने जिंदगीभर कई प्रकार के काम किये। भंगी-काम और चमार का काम भी किया, कुष्ठरोगियों की सेवा की, राजनीति पर व्याख्यान और गीता पर प्रवचन दिये। वे नियमित कातते थे और जिस दिन चले गये, उस दिन भी उनका कातना पूरा हो चुका था। उन्होंने यह सब इसीलिए किया कि वे दुनिया के सामने यह विचार रखना चाहते थे कि 'जो शख्स खाता है, उसे कुछ-न-कुछ पैदा करना चाहिए।' इसलिए हम व्यापारी, वकील, मंत्री आदि से भी कहेंगे कि आपका काम उपयोगी है, फिर भी आपको दिन में एक घंटा उत्पादक परिश्रम जरूर करना चाहिए।

श्रम से बुद्धि घटती नहीं, बढ़ती ही है

कुछ लोग कहते हैं कि प्रधान-मंत्री एक घंटा खेत में काम करने के बजाय एक घंटा अधिक चर्चा करेगा, तो कितना अच्छा होगा। बाबा के बारे में भी यही कहा जाता है कि वह एक घंटा चर्खा चलाने के बजाय बोध देगा, तो ज्यादा अच्छा होगा। लेकिन लोग यह नहीं कहते कि बाबा खाने के बजाय प्रवचन देगा, छह घंटे सोने के बजाय बोधदान देगा, तो कितना सुन्दर होगा। बाबा खाता, सोता है, तो लोगों को आश्चर्य नहीं लगता, किन्तु वह चर्खा चलाता या चक्की पीसता है, तो आश्चर्य लगता है। समझने की जरूरत है कि सारी मानवता के लिए कुछ चीजें बुनियादी होती हैं। यह ठीक है कि कोई शरीर-परिश्रम का काम अधिक करेगा, तो कोई बौद्धिक परिश्रम का; किन्तु दोनों को दोनों काम करने चाहिए। जिनके पास बुद्धि-शक्ति है, वे अगर थोड़ा शरीर-परिश्रम करें, तो कुछ खोयेंगे नहीं, बल्कि बहुत पायेंगे। मैं यह बात अपने अनुभव से कह रहा हूँ। मैंने जितना अध्ययन किया, उससे कम शरीर-श्रम नहीं किया। मैंने प्रतिदिन चार-

छह घंटे विविध प्रकार के परिश्रम में बिताते हैं। उससे मेरी बुद्धि की तेजस्विता कम नहीं हुई, बल्कि बढ़ी ही।

राष्ट्र की उपासना

अगर ईश्वर की यह इच्छा होती कि कुछ लोग बुद्धि का काम करें और कुछ लोग शरीर-श्रम, तो उसने कुछ लोगों को सिर-ही-सिर दिये होते और कुछ को हाथ ही-हाथ! ईश्वर के लिए कुछ भी असंभव नहीं है। लेकिन उसने हरएक को दिमाग भी दिया है और पेट भी। उधर चिंतन भी चलता है और इधर भूख भी लगती है। इसलिए यह विचार भी गलत है कि मजदूर घंटों तक शरीर-श्रम ही करते रहें। उन्हें रोज दो-तीन घंटे बौद्धिक काम का भी मौका मिलना चाहिए। क्या ऐसा हो सकता है कि कुछ लोग सिर्फ खाना खायें और कुछ सिर्फ पानी ही पियें? यह ठीक है कि फलाहार करनेवाले कम पानी पीयेंगे और रोटी खानेवाले ज्यादा; फिर भी दोनों को खाना भी चाहिए और पानी भी। इसी तरह समाज-रचना ऐसी होनी चाहिए कि हरएक मनुष्य का पूर्ण विकास हो। इसीलिए हरएक को श्रम की प्रतिष्ठा और चिंतन, दोनों की ही प्रतिष्ठा महसूस होनी चाहिए।

मुझे बचपन की एक घटना याद आती है। एक दिन मैं माँ के पास खाना माँगने गया, तो उसने पूछा कि 'स्नान किया?' मेरे 'हाँ' कहने पर उसने फिर से पूछा, 'तुलसी के पेड़ को पानी पिलाया?' मैंने 'ना' कहा, तो उसने कहा, 'जब तक तुलसी को पानी नहीं पिलायेगा, तब तक पानी न मिलेगा।' हम समझते हैं कि माँ ने बड़ा अच्छा काम किया, जो मुझे पेड़ की सेवा किये बिना खाना नहीं दिया। इस तरह जब राष्ट्र की उपासना शुरू होगी और हर माता अपने बच्चों को एकआध घंटा परिश्रम किये बगैर खाना नहीं देगी, तभी देश ऊँचा उठेगा।

समाज के टुकड़े करना अधर्म

हमारा आन्दोलन कुल मनुष्यों के लिए होना चाहिए। आज लोग सेवा तो करते हैं, लेकिन समाज के दो टुकड़े भी करते हैं। कोई जातिवादी होते हैं, तो

'ब्राह्मण-सभा' बनायेंगे, कोई हरिजनों में काम करेंगे। कोई 'हिन्दूसभावादी' होंगे, तो सिर्फ हिन्दुओं के ही कल्याण की चिन्ता करेंगे। इस तरह टुकड़े करना, आत्मा को चीरना या काटना बड़ी भयानक वस्तु है।

मध्यप्रदेश के एक भाई ने, जो कि हिंदू-धर्म के बड़े अभिमानी थे, हमें लिखा कि 'मैं २० एकड़ जमीन दान देना चाहता हूँ, लेकिन इस शर्त पर कि वह मुसलमानों को न दी जाय।' हमने उनको लिखा कि 'इस तरह दोनों में भेद करना अत्यन्त अधर्म है। कोई अस्पताल खोला जाता है, तो उसमें सभी रोगियों की सेवा होती है। दुःख निवारण के काम में भेद कर आप हिंदू-धर्म पर प्रहार कर रहे हैं। यह बात आर्य-संस्कृति के खिलाफ है, इसलिए हम आपका दान नहीं ले सकते।' उन्होंने फिर से लिखा कि 'हमारी जमीन बहुत अच्छी है, किसी भी हिंदू गरीब को दीजिये। उतनी जमीन आप मुसलमानों को न देंगे, तो क्या बिगड़ेगा? आपके पास दूसरी जमीन पड़ी है।' इस पर मैंने उनको लिख दिया: 'यह अत्यन्त दुर्बुद्धि है। मुझे भूमि का लोभ नहीं है। मैं आपकी जमीन नहीं लूँगा।'

उत्तर प्रदेश में भी जब एक भाई ने इस शर्त पर जमीन देनी चाही कि वह हरिजनों को न दी जाय, तो हमने जमीन लेने से इनकार कर दिया। परमेश्वर इस तरह का कोई भेद नहीं करता। सूर्य की किरणें हर घर में प्रवेश करती हैं, चाहे वह ब्राह्मण का घर हो या हरिजन का। गंगा का पानी हरएक की प्यास बुझाता है, चाहे वह हिन्दू हो या मुसलमान, शेर हो या गाय। परमेश्वर की सारी सृष्टि साम्ययोग सिखाती है, फिर भी हम उसके टुकड़े करते हैं, यह बड़ा भारी अधर्म है।

आस्ट्रेलियन जापानियों को प्रेम से जमीन दें

इन दिनों भाषा के अनुसार प्रान्त-रचना के सवाल पर काफी झगड़े चल रहे हैं। मैं मानता हूँ कि भाषा के अनुसार प्रान्त बनने चाहिए, क्योंकि जब तक जनता की भाषा में राज्य का कारोबार नहीं चलता, तब तक सच्चा स्वराज्य नहीं आता। फिर भी प्रान्तों का यह विभाजन दिलों का विभाजन न होना चाहिए। आज बल्लारी जैसे जमीन के छोटे से टुकड़े के लिए दो प्रान्तों में कटुता और

संघर्ष चल रहे हैं। हमें यह सारा हास्यास्पद मालूम होता है। हमने कहा, हम इसका फैसला चिट्ठी डालकर करेंगे। हम कहते हैं कि बल्लारी की गिनती आन्ध्र में करो या कर्नाटक में, दो बातें निश्चित हैं कि वह हिन्दुस्तान के बाहर नहीं जाता और न अपनी जगह ही छोड़ता है। आज के सारे झगड़े इसीलिए चलते हैं कि हम टुकड़े करके चिन्तन करते हैं।

आज जापान में जन-संख्या बहुत ज्यादा है और जमीन कम। उधर आस्ट्रेलिया में जमीन खूब पड़ी है और जन-संख्या कम है। लेकिन आस्ट्रेलियन जापानियों को यह कहकर उन्हें आस्ट्रेलिया में आने नहीं देते कि 'वह हमारे *बाप की जमीन है।' ये सोचते नहीं कि बेटे तो सारी दुनिया के बेटे होते हैं।* अगर पूरी मानवता का विचार करेंगे, तो आस्ट्रेलियावाले प्रेम से जापानवालों को जमीन देंगे। *लेकिन प्रेम से नहीं देते, तो झगड़े और खूनी क्रान्ति के बाद देंगे;* क्योंकि जो आवश्यकता है, वह पूरी हुए बगैर मानवता का समाधान नहीं *हो सकता।*

सारांश, जहाँ व्यापक बुद्धि से सोचते हैं, वहाँ मसले जल्दी हल हो जाते हैं। *हम चाहते हैं कि अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में भी भूदान का तरीका लागू किया जाय और* सारी दुनिया एक मानी जाय। हर मानव विश्व-नागरिक हो और कोई भी व्यक्ति किसी भी देश में जाकर बसे और काम करे। जब इस तरह होगा, तभी भूदान-यज्ञ सफल होगा।

हृदय-क्षेत्र में लड़ाई

जिस तरह जातिवादी ब्राह्मण-ब्राह्मणेतर, हरिजन परिजन आदि टुकड़े करते हैं, उसी तरह कम्युनिस्ट भी टुकड़ों में चिन्तन करते हैं। वे समाज के दो वर्ग मानते हैं; गरीब और अमीर। लेकिन हर वर्ग में अच्छे और बुरे, दोनों होते हैं, इसलिए उनका युद्ध राम-रावण युद्ध नहीं, बल्कि कौरव-पाण्डव-युद्ध होगा। जहाँ दोनों पक्षों में भले-बुरे हों, वहाँ उस लड़ाई के परिणामस्वरूप दोनों का नाश होता है। जहाँ एक ओर खालिस सत्य और दूसरी ओर खालिस असत्य हो, वहाँ लड़ाई में जोर आता है। हम सारी दुनिया से दान माँगते हैं, तो कुछ देते हैं

और कुछ नहीं भी देते। देनेवाले सब उदार पक्ष में शामिल होंगे और न देनेवाले कंजूस पक्ष में। दोनों पक्षों में कुछ गरीब होंगे, तो कुछ अमीर। इस तरह गुणों के आधार पर बने पक्षों में लड़ाई हो, तो उसमें कंजूस टिक नहीं सकते। क्या कभी प्रकाश और अंधकार की भी लड़ाई हुई है? सूर्यनारायण अपनी सारी सेना लेकर आया। सामने घना अंधकार खड़ा था, जिसकी सेना में बड़े-बड़े लोग थे। फिर जोरों से लड़ाई हुई, जिसमें सूर्य की जीत हुई—क्या इस तरह कभी लड़ाई हुई है? स्पष्ट है कि जहाँ सूर्यनारायण आया, वहीं अंधकार खतम हो जाता है।

सारांश, जहाँ सारी सज्जनता एकत्र हुई, वहाँ दुर्जनता टिक नहीं सकती। तुलसीदासजी ने लिखा है कि 'सुमति कुमति सबके उर बसहिं।' हरएक हृदय में सद्बुद्धि और दुर्बुद्धि, दोनों होती है। हम सद्बुद्धि को इकट्ठा करने की कोशिश करेंगे, तो ताकत पैदा होगी। साम्ययोग की कोशिश यह है कि हर मनुष्य की सद्भावनाएँ एकत्र होकर उनकी दुर्भावनाओं के साथ लड़ाई हो। वह लड़ाई एक ही मोर्चे पर न चलेगी, बल्कि हजारों मोर्चों पर होगी। वह लड़ाई हरएक के हृदय में चलेगी।

साम्यवादी भी एक प्रकार के जातिवादी

साम्ययोग में हम कुल मानवता का काम करना चाहते हैं, जब कि 'कम्युनिस्ट' (साम्यवादी) और 'कम्युनेलिस्ट' (जातिवादी) टुकड़े करके काम करते हैं। अक्सर कहा जाता है कि उनमें से एक 'लेफ्टिस्ट' (वाम) होते हैं और दूसरे 'राइटिस्ट' (दक्षिण) होते हैं, लेकिन हम कहते हैं कि दोनों 'रॉंगिस्ट' (गलत) हैं। टुकड़े कर काम करने से वे आरंभ में ही अपनी ताकत घटा देते हैं। कुल मानवता को इकट्ठा करने की कोशिश की जाय, तो आरंभ में ही ताकत बढ़ती है। इसीलिए हिंदू-धर्म ने कहा है: 'गणानांत्वा गणपतिं हवामहे।'—'सब गणों का तू गणपति है, इसलिए हम तेरा आवाहन करते हैं।' इसके मानी यह है कि हम सारे समूह की इच्छाशक्ति को अनुकूल करना चाहते हैं।

हमें खुशी है कि धीरे-धीरे कम्युनिस्ट भी प्रेमपन्थ में दाखिल हो रहे हैं। इसका मतलब यह नहीं कि उनके अलावा दूसरे सारे प्रेमी हैं। किन्तु उन्होंने संघर्ष का एक वाद माना है। दूसरे लोग संघर्ष का वाद नहीं मानते, फिर भी लोभ के कारण संघर्ष करते हैं। अब कम्युनिस्ट लोग संघर्ष का तत्त्वज्ञान छोड़ विश्व-शांति की बातें कर रहे हैं। किंतु विश्वशांति कोई अभावात्मक वस्तु नहीं है। सिर्फ लड़ाई रोकने से विश्वशांति न होगी, उसके लिए प्रेम का प्रयत्न करना होगा। विश्वशांति का तरीका अमल में लाने से सारे हाइड्रोजन बम आदि यों ही खतम हो जायँगे। विश्वशांति का तरीका यह है कि हम सारे समाज की सेवा करें और समाज में भेद न करें। इसीको गीता 'लोक-संग्रह' कहती है। उसके मानी है, सब लोगों को एकत्र करना और संभेद न हो, इसकी कोशिश करना। जाति, वर्ग, धर्म आदि के झगड़े करते रहोगे, तो विश्वशान्ति नहीं होगी। भले ही उससे दो-चार साल के लिए युद्ध रोका जाय, जो कूटनीतिज्ञ भी किया करते हैं। लेकिन मसलों को हल किये बगैर शान्ति नहीं होगी और वे इसी तरीके से हल करने चाहिए कि सबके हृदय में शान्ति और समाधान पैदा हो। समाज के टुकड़े करके मसले हल करने की कोशिश की जायगी, तो शान्ति न होगी। साम्यवादी भी एक प्रकार के जातिवादी हैं। जातिवादियों के समान वे भी हर गाँव के, प्रान्त के, देश के दो टुकड़े करते हैं, जिससे सारी दुनिया में झगड़े चलते रहते हैं।

प्रेम-शक्ति या द्वेष-शक्ति

भूदान में ऐसा तरीका अख्तियार किया गया है, जिससे हर मनुष्य की सद्भावना प्रकट हो। भू-दान का विचार अमीर-गरीब, सबको लागू है। एक एकड़वाला अगर अपनी मालकियत छोड़ेगा, तो ऐसी ताकत पैदा करेगा कि हजार एकड़वाले को भी अपनी मालकियत छोड़नी पड़ेगी। कम्युनिस्ट लोग गरीब और अमीर का झगड़ा कराना चाहते हैं। हम उनसे कहते हैं कि तुम्हारे गरीब और अमीर, दोनों एक ही वर्ग के हैं। गरीब को अपनी लँगोटी का अभिमान है, तो अमीर को अपनी धोती का। लोभियों का एक ही वर्ग होता है, दस रुपयेवाला

सौ रुपयेवालों की ओर देखकर मत्सर करता है, तो सौवाला हजारवालों की ओर देखकर। कुरान में कहा गया है कि 'जन्नत' (स्वर्ग) और 'दोजख' (नरक) के बीच 'बरजख' होता है। बरजख जानेवालों की एक आँख रोती है और दूसरी हँसती है। जो आँख स्वर्ग की तरफ देखती है, वह रोती है, जो नरक की तरफ देखती है, वह हँसती है। इसलिए हर कोई ऊपर देखा करेगा, तो दुःखी होगा, मत्सर करेगा और जो नीचे देखेगा, वह सुखी होगा, उदार बनेगा।

आज आपके सामने यही सवाल है कि आप मत्सर शक्ति पैदा करके मसले हल करते हैं या प्रेम-शक्ति पैदा करके? भूदान-यज्ञ के जरिये प्रेम-शक्ति पैदा करके मसले हल करने की कोशिश की जा रही है। अगर साम्यवादी इस बात को कबूल करें कि हम द्वेष-शक्ति से नहीं, प्रेम-शक्ति से ही काम करेंगे, तो हम दोनों नजदीक आ सकते हैं। जहाँ प्रेम-शक्ति पर विश्वास हो जायगा, वहीं वास्तव में विश्वशान्ति होगी।

सामलकोटा
१-११-'५५

विश्वव्याधि का सौम्य उपाय : भूदान : ९ :

[प्रार्थना-सभा का आरंभ पाँच मिनट के मौन चिंतन से होता है। इस प्रवचन में उसके बारे में विनोबाजी ने समझाया है।]

मौन-चिंतन क्या है ?

सबसे पहले हम परमेश्वर की प्रार्थना करेंगे। प्रार्थना के दो अंश होंगे, पहला अंश मौन का होगा और दूसरे में ज्ञानी के लक्षण पढ़े जायँगे। मौन में हम परमात्मा के गुणों का चिंतन करेंगे। अनन्त आकाश जैसे परमात्मा के गुण भी अनन्त हैं। परमात्मा 'विश्वकर्ता' नाम से प्रसिद्ध हैं, इसीलिए उन्हें 'ईश्वर' कहते हैं। किन्तु वे जगत्कर्ता हैं, यह उनका मुख्य गुण नहीं। हम यह भी नहीं कह सकते कि वे जगत्कर्ता हैं या नहीं। एक दृष्टि से वे जगत्कर्ता हैं और दूसरी

दृष्टि से नहीं भी है। क्योंकि जैसे घड़ा कुम्भार से बिलकुल अलग वस्तु है, वैसे जगत् परमेश्वर से बिलकुल अलग नहीं। इसलिए उन्हें जगत्कर्ता कहना भी मुश्किल होता है। इस तरह उनका वर्णन शब्दों से परे हो जाता है। अतः जगत्कर्ता के तौर पर हम उनका चिंतन नहीं कर सकते। वह चिंतन हमारी शक्ति से बाहर होगा। जगत् क्या है, हम नहीं जानते। हम जो जानते हैं, वह तो उस जगत् का एक बिलकुल नगण्य अंश है। महान् विराट् जगत् को हम नहीं जानते। फिर उसके कर्ता के तौर पर परमात्मा का चिंतन कैसे कर सकेंगे? इसलिए 'वह कर्ता है या अकर्ता', यह बात हम तत्त्वज्ञानियों पर छोड़ देंगे। वे भी इसका निर्णय न कर सकेंगे, केवल चर्चाभर करेंगे।

परमात्मा को अन्तर्यामी रूप में देखें

हम परमात्मा को अन्तर्यामी के रूप में देखेंगे। हमारे हृदय में उसकी कुछ अनुभूति होती है। अगर हम सबके हृदय में परमात्मा का अंश न होता, तो सबको सार्वभौम सहानुभूति न होती। यह सहानुभूति केवल मनुष्यों के लिए ही नहीं, बल्कि प्राणिमात्र के लिए है। कोई प्राणी दुःखी हो, तो सहानुभूति से हमारा हृदय तत्काल पिघल जाता है। हम चाहे उसे मदद न कर सकें, तो भी हमारी सहानुभूति उसके पास दौड़ी जाती है। हरएक के हृदय में सहानुभूति का यह अंश होता है। अगर वे अन्तर्यामी हरएक के हृदय में न होते, सबके हृदय में यह समान अंश न होता, तो उस सहानुभूति का कोई कारण भी नहीं होता। इसलिए अन्तर्यामी के रूप में परमात्मा को देखना हमारे लिए लाभदायी है। उसके अनन्त गुणों का कोई-न-कोई अंश किसीके रूप में प्रकट होता है। दयालु पुरुष के रूप में परमात्मा की दया का अंश दीख पड़ता है। प्रेमी मनुष्य के रूप में भगवान् के प्रेमानुराग का अंश दीख पड़ता है। ज्ञानी मनुष्य के रूप में परमात्मा के ज्ञान का रूप दीख पड़ता है। ऐसा कोई मनुष्य या प्राणी नहीं, जिसमें कोई-न-कोई अच्छा गुण न हो। चाहे ज्यादा हो या कम, लेकिन हरएक में कुछ-न-कुछ गुण होता अवश्य है और वह परमात्मा का अंश है। उस अंश को हम बढ़ा सकते हैं। अगर हम परमात्मा के गुणों का तीव्र चिंतन करें और

हमारे हृदय में वे आयें, ऐसी कोशिश करें, तो होते-होते मनुष्य के गुण इतने विकसित होंगे कि कुछ लोग परमेश्वर के निकट जा सकेंगे।

ईश-चिन्तन से ईश-गुणों का स्पर्श

वैसे परमेश्वर के निकट जाने की भाषा तो एक पागलपन की भाषा है। लेकिन जब कोई चंडोल पक्षी उड़ते-उड़ते हमारी दृष्टि से ओझल हो जाता है, तो हम कहते हैं कि वह सूरज के पास पहुँच गया। वह पक्षी जानता है कि उसके और सूरज के बीच कितना फासला है। लेकिन हम कहते हैं कि वह पहुँच गया। इसलिए मनुष्य के गुणों का कितना भी विकास हो, परमेश्वर के गुणों के साथ उसकी तुलना नहीं हो सकती। फिर भी हमने ऐसे उन्नत मनुष्य देखे हैं, जिनके गुणों की कल्पना साधारण मनुष्य नहीं कर सकता। ऐसों को हम 'महात्मा' कहते और परमात्मतुल्य समझते हैं। लेकिन वे अपने को महात्मा नहीं समझते। वे कहते हैं कि हम तो क्षुद्रात्मा हैं, परमात्मा से दूर हैं। फिर भी सर्वसाधारण लोगों के खयाल से वे महात्मा होते हैं। इस प्रकार के गुणों का विकास हर मनुष्य में हो सकता है। हम समझते हैं कि शिक्षण-विभाग की ओर से जो तालीम दी जाती है, उसका भी उद्देश्य यही होना चाहिए कि मनुष्य का गुण-विकास हो। तभी तालीम सफल होगी। इसीको 'भक्ति की दृष्टि' कहते हैं। अभी हम इसी दृष्टि से परमात्मा का चिंतन करेंगे और उससे गुण-विकास की चाह रखेंगे। इस तरह हर रोज परमात्मा के दयालु, प्रेममय, सत्यस्वरूप आदि गुणों का हम चिंतन करें, तो हमें उन गुणों का स्पर्श होगा।

दुःख की बीमारी का इलाज

हमारी भूदान-यात्रा में कई जगह लोग नारे लगाते हैं। हम जानते हैं कि उससे उत्साह पैदा होता है। हम उस उत्साह को रोकना नहीं चाहते। किन्तु हम कहना चाहते हैं कि यह भूदान-आन्दोलन नारों से और चिल्लाने से सफल न होगा, यह तो शान्त-चिन्तन से ही होगा। क्योंकि यह काम कुछ थोड़े-से दुःखी लोगों को भूमि देने का काम नहीं। किसी भूखे को देखकर हम दया से उसे थोड़ा खिला देते हैं, इस प्रकार की तात्कालिक दया का यह काम नहीं है। किन्तु लोगों

दृष्टि से नहीं भी हैं। क्योंकि जैसे घड़ा कुम्भार से बिलकुल अलग वस्तु है, वैसे जगत् परमेश्वर से बिलकुल अलग नहीं। इसलिए उन्हें जगत्कर्ता कहना भी मुश्किल होता है। इस तरह उनका वर्णन शब्दों से परे हो जाता है। अतः जगत्कर्ता के तौर पर हम उनका चिंतन नहीं कर सकते। वह चिंतन हमारी शक्ति से बाहर होगा। जगत् क्या है, हम नहीं जानते। हम जो जानते हैं, वह तो उस जगत् का एक बिलकुल नगण्य अंश है। महान् विराट् जगत् को हम नहीं जानते। फिर उसके कर्ता के तौर पर परमात्मा का चिंतन कैसे कर सकेंगे? इसलिए 'वह कर्ता है या अकर्ता', यह बात हम तत्त्वज्ञानियों पर छोड़ देंगे। वे भी इसका निर्णय न कर सकेंगे, केवल चर्चाभर करेंगे।

परमात्मा को अन्तर्यामी रूप में देखें

हम परमात्मा को अन्तर्यामी के रूप में देखेंगे। हमारे हृदय में उसकी कुछ अनुभूति होती है। अगर हम सबके हृदय में परमात्मा का अंश न होता, तो सबको सार्वभौम सहानुभूति न होती। यह सहानुभूति केवल मनुष्यों के लिए ही नहीं, बल्कि प्राणिमात्र के लिए है। कोई प्राणी दुःखी हो, तो सहानुभूति से हमारा हृदय तत्काल पिघल जाता है। हम चाहे उसे मदद न कर सकें, तो भी हमारी सहानुभूति उसके पास दौड़ी जाती है। हरएक के हृदय में सहानुभूति का यह अंश होता है। अगर वे अन्तर्यामी हरएक के हृदय में न होते, सबके हृदय में वह समान अंश न होता, तो उस सहानुभूति का कोई कारण भी नहीं होता। इसलिए अन्तर्यामी के रूप में परमात्मा को देखना हमारे लिए लाभदायी है। उसके अनन्त गुणों का कोई-न-कोई अंश किसीके रूप में प्रकट होता है। दयालु पुरुष के रूप में परमात्मा की दया का अंश दीख पड़ता है। प्रेमी मनुष्य के रूप में भगवान् के प्रेमानुराग का अंश दीख पड़ता है। ज्ञानी मनुष्य के रूप में परमात्मा के ज्ञान का रूप दीख पड़ता है। ऐसा कोई मनुष्य या प्राणी नहीं, जिसमें कोई-न-कोई अच्छा गुण न हो। चाहे ज्यादा हो या कम, लेकिन हरएक में कुछ-न-कुछ गुण होता अवश्य है और वह परमात्मा का अंश है। उस अंश को हम बढ़ा सकते हैं। अगर हम परमात्मा के गुणों का तीव्र चिंतन करें और

हमारे हृदय में वे आयें, ऐसी कोशिश करें, तो होते-होते मनुष्य के गुण इतने विकसित होंगे कि कुछ लोग परमेश्वर के निकट जा सकेंगे।

ईश-चिन्तन से ईश-गुणों का स्पर्श

वैसे परमेश्वर के निकट जाने की भाषा तो एक पागलपन की भाषा है। लेकिन जब कोई चंडोल पक्षी उड़ते-उड़ते हमारी दृष्टि से ओझल हो जाता है, तो हम कहते हैं कि वह सूरज के पास पहुँच गया। वह पक्षी जानता है कि उसके और सूरज के बीच कितना फासला है। लेकिन हम कहते हैं कि वह पहुँच गया। इसलिए मनुष्य के गुणों का कितना भी विकास हो, परमेश्वर के गुणों के साथ उसकी तुलना नहीं हो सकती। फिर भी हमने ऐसे उन्नत मनुष्य देखे हैं, जिनके गुणों की कल्पना साधारण मनुष्य नहीं कर सकता। ऐसों को हम 'महात्मा' कहते और परमात्मतुल्य समझते हैं। लेकिन वे अपने को महात्मा नहीं समझते। वे कहते हैं कि हम तो क्षुद्रात्मा हैं, परमात्मा से दूर हैं। फिर भी सर्वसाधारण लोगों के खयाल से वे महात्मा होते हैं। इस प्रकार के गुणों का विकास हर मनुष्य में हो सकता है। हम समझते हैं कि शिक्षण-विभाग की ओर से जो तालीम दी जाती है, उसका भी उद्देश्य यही होना चाहिए कि मनुष्य का गुण-विकास हो। तभी तालीम सफल होगी। इसीको 'भक्ति की दृष्टि' कहते हैं। अभी हम इसी दृष्टि से परमात्मा का चिंतन करेंगे और उससे गुण-विकास की चाह रखेंगे। इस तरह हर रोज परमात्मा के दयालु, प्रेममय, सत्यस्वरूप आदि गुणों का हम चिंतन करें, तो हमें उन गुणों का स्पर्श होगा।

दुःख की बीमारी का इलाज

हमारी भूदान-यात्रा में कई जगह लोग नारे लगाते हैं। हम जानते हैं कि उससे उत्साह पैदा होता है। हम उस उत्साह को रोकना नहीं चाहते। किन्तु हम कहना चाहते हैं कि यह भूदान-आन्दोलन नारों से और चिल्लाने से सफल न होगा, यह तो शान्त-चिन्तन से ही होगा। क्योंकि यह काम कुछ थोड़े-से दुःखी लोगों को भूमि देने का काम नहीं। किसी भूखे को देखकर हम दया से उसे थोड़ा खिला देते हैं, इस प्रकार की तात्कालिक दया का यह काम नहीं है। किन्तु लोगों

को भूख की पीड़ा क्यों होती है, कुछ लोगों को खाने को क्यों नहीं मिलता और लोग क्यों दुःखी होते हैं, इसका चिन्तन कर समाज की रचना में बदल करने का ही यह काम है। कोई बीमार पड़ा और उसके पेट में पीड़ा हो, तो उसके परिणामस्वरूप उसका सिर दुखता है। उस समय उसका सिर दबाने या कपाल पर सोंठ लगाने से उसे थोड़ी राहत मिलती है, लेकिन उसके असली दुःख पेट की बीमारी का जब तक उपाय नहीं होता, तब तक सिर दबाने या सोंठ लगाने से रोग का निर्मूलन नहीं हो सकता। भूदान-यज्ञ में हम केवल सिर दबाने का यत्न नहीं करते, बल्कि रोगी को अन्दर से औषध देकर उसके रोग का निर्मूलन करने की कोशिश करते हैं। हम यह चेष्टा कर रहे हैं कि तीव्र औषध देकर रोग दुरुस्त न किया जाय, बल्कि सौम्य औषध से किया जाय। क्योंकि तीव्र औषध से एक रोग दुरुस्त हुआ, तो उसके बदले दूसरा पैदा होता है। इस तरह इधर हम सिर दबाने आदि के जैसे छोटे-छोटे काम कर संतुष्ट होना नहीं चाहते और उधर तीव्र औषध भी नहीं चाहते हैं।

तीव्र औषध हानिकारक

समाज में प्राचीनकाल से आज तक कुछ-न कुछ दुःख चलते आये हैं। जहाँ थोड़ा दुःख दीख पड़ा, वहाँ दया से कुछ मदद कर दी। किसी भूखे को खिला दिया, इस तरह दया का काम हमेशा चलता है, जो सिर दबाने या सोंठ लगाने जैसा है। हिन्दुस्तान या दुनिया का आज का दुःख इस तरह छोटे-मोटे प्रयोगों से न मिटेगा। ऐसी दया की कीमत बहुत है, फिर भी इससे मसले हल न होंगे। यह पहचानकर कुछ डॉक्टरों ने रोग-निवारण का ऐसा जबरदस्त इलाज चलाया कि उससे वह रोग तो हटा, पर दूसरे कई रोग पैदा हुए, जिनसे रोगी बेजार हो उठा! जिन्होंने ऐसे समाज की दुरुस्ती के लिए हिंसक इलाज काम में लिये, हिंसक क्रान्तियाँ कीं, वे अब पश्चात्ताप में पड़े हैं। होता यह है कि जैसे-जैसे तीव्र औषध खाने की आदत पड़ जाती है, वैसे ही रोगी को उत्तरोत्तर अधिक तीव्र इलाज करने पड़ते हैं। हिंसा के जरिये समाज के दुःख दूर करने की कोशिश करते-करते हिंसा उत्तरोत्तर खूब बढ़ती रही। एक तोला औषध से काम न हुआ,

तो डेढ़ तोला दिया। फिर डेढ़ तोला खाने की आदत पड़ जाने पर उसका भी परिणाम नहीं हुआ, तो दो तोले दिया।

इस तरह औषध की मात्रा और तीव्रता बढ़ाते गये। यों करते-करते सब जगह हिरण्यगर्भ की मात्रा चलने लगी। हरएक रोग के लिए हिरण्यगर्भ की मात्रा ही दी गयी। परिणाम यह हुआ कि आज समाज में हिंसा इतनी बढ़ गयी कि समाज में उससे कोई लाभ होने के बदले हानि ही होने लगी। शस्त्रास्त्र बढ़ाते-बढ़ाते, तीव्र शस्त्रास्त्रों की खोज करते-करते ऐटम और हाइड्रोजन बम तक आ पहुँचे। ये बम वैज्ञानिकों की बुद्धि से निकले, जो इस जमाने की बुद्धि है। हरएक पक्ष के पास आज ये बम हैं। पहले तो अमेरिका के पास यह चीज निकली। फिर रूस के पास गयी। अब इंग्लैंड आदि देश भी ये बम बना रहे हैं। पहले जिसने तलवार निकाली, तो दूसरों के पास तलवार नहीं थी। इसलिए जिसके पास तलवार थी, उसकी चली। लेकिन जब तलवार सार्वजनिक हो गयी, तब तलवार की कुछ नहीं चली। फिर बंदूक निकली, तो जिसने निकाली, उसीकी चली। लेकिन जब बन्दूक सार्वजनिक हो गयी, तो उसकी कुछ न चली। इस तरह शस्त्रास्त्रों का विकास करते-करते हम अब ऐसी हालत में पहुँच गये हैं कि वे शस्त्रास्त्र मनुष्य के हाथ में नहीं रहे। अब औषध इतने तीव्र हो गये कि उन्हें खिलाने से मनुष्य मर जायगा और फिर उसका रोग भी दुरुस्त होगा।

परशुराम के हिंसा के असफल प्रयोग

हम चाहते हैं कि रोग नष्ट हो, पर उसके साथ मनुष्य नष्ट न हो। ऐटम और हाइड्रोजन बम के परिणामस्वरूप आज यह आशंका हो रही है कि शायद् मनुष्य भी नष्ट हो जाय। अब तो घर बैठे-बैठे भी सिर पर बम गिर सकता है। आज की लड़ाई में सिर्फ लड़नेवाले ही खतम नहीं होते, बल्कि न लड़नेवाले भी खतम होते हैं। इसमें स्त्रियाँ, बच्चे, पशु, पेड़, सब खतम होंगे। इसलिए इन कामों में जो बड़े प्रवीण लोग हैं, उनके भी ध्यान में आया है कि ये काम बेकार हैं, इससे मसले हल न होंगे। अभी आप देख रहे हैं कि बुल्गानिन हिंदुस्तान

में आ रहे हैं। आखिर वे क्यों आ रहे हैं? क्या हिंदुस्तान के पास कोई शक्ति है, बड़ी सेना है या दौलत? यह तो भिखारी देश है। लेकिन बुल्गानिन शांति की खोज में यहाँ आ रहा है। रूसी लोग हिंदुस्तान में कुछ देखने के लिए नहीं, बल्कि प्रेम संपादन के लिए आये हैं।

मुझे १६४५ की एक मजेदार कहानी याद आ रही है। उस समय लड़ाई में सेनापति की ओर से सेना के लिए रोज नये-नये हुक्म निकलते थे, जिसे 'आर्डर ऑफ दि डे' (आज की आज्ञा) कहते थे। एक दिन स्टालिन ने रूसी सैनिकों के लिए आज्ञा निकाली कि 'तुम लोग जर्मनों के साथ शस्त्रास्त्रों से लड़ते हो, इतना ही काफी नहीं। तुम्हें अपने हृदय, मन और बुद्धि से उनका पूरा द्वेष करना चाहिए।' कहने का सार यह है कि जब तक पूरा द्वेष न करेंगे, तब तक ये औजार काम के नहीं। जो लोग द्वेष पर इतनी श्रद्धा रखते थे, वे अब प्रेम पर रखने लगे हैं; क्योंकि वे सच्चे लोग हैं; दाम्भिक नहीं। उन्हें लगता था कि शस्त्रास्त्रों के बल पर हम दुनिया में शांति कर अच्छी व्यवस्था रखेंगे।

जैसे परशुराम को लगता था कि शस्त्रास्त्रों के बल पर हम सारी पृथ्वी को निःक्षत्रिय करेंगे और उन्होंने इक्कीस बार यह प्रयोग किया। क्या आपने कभी यह सुना है कि किसीको इक्कीस बार फाँसी पर लटकाया गया? एक बार लटकाने पर दुबारा लटकाने की जरूरत नहीं होती। पर परशुराम को इक्कीस बार निःक्षत्रिय पृथ्वी करनी पड़ी, क्योंकि उसने ऊपर-ऊपर से पेड़ काटकर बीज को कायम रखा। परशुराम खुद ब्राह्मण होने पर भी क्षत्रिय बना, तो फिर वह क्षत्रियों का संहार कैसे कर सकता था? अगर उसे क्षत्रियों का संहार करना था, तो खुद से आरंभ करते, तब दुनिया निःक्षत्रिय होती। जब इक्कीस बार प्रयोग करके भी वह असफल साबित हुआ, तब उसने हार खायी और वह खेती के काम के लिए चला गया। फिर उसने पेड़ काटकर बसाहट बनाने का काम किया। कहा जाता है कि कोंकण और त्रिवांकुर-कोचीन आदि उसीने बसाया। वह सच्चा मनुष्य था, उसे लगा कि क्षत्रिय उन्मत्त हो गये हैं, तो उनकी उन्मत्तता दूर करने के लिए हमें भी क्षत्रिय होना पड़ेगा। किन्तु यह प्रयोग सफल नहीं हो सकता था।

अंधकार का प्रतिकार किसी चीज से करना हो, तो वह प्रकाश से ही हो सकता है, यह जब उसके ध्यान में आया, तो उसने शांति-कार्य शुरू किया।

कम्युनिस्टों के परशुराम के-से प्रयोग

कम्युनिस्ट लोगों की हालत भी परशुराम की जैसी है। उन्होंने देखा कि पूँजीवादी खूब शस्त्रास्त्र बढ़ा रहे हैं, तो हमें भी बढ़ाना चाहिए। पूँजीवादियों ने गलत समाज-रचना बनायी है, तो उन्हें खतम किये बगैर वह बदलेगी ही नहीं। फलतः रूस में खूब संहार करके कम्युनिज्म की स्थापना हुई। किंतु वह नाममात्र की स्थापना है। लोगों के हाथ कोई सत्ता नहीं आयी, बल्कि शस्त्र उठानेवालों के हाथ आयी। याने क्षात्र-वर्ग के हाथ में रही। परिणाम यह हुआ कि दुनिया में पूँजीवादी राष्ट्र शस्त्रास्त्र बढ़ाने लगे और इधर ये भी। अमेरिकावाले जाहिर करते हैं कि हमने हाइड्रोजन बम खोज निकाला, तो रूसी कहते हैं कि हमारे पास भी वह है।

ये सभी चाहते हैं कि जागतिक युद्ध न हो। लेकिन बाबा को इसकी कोई चिंता नहीं। बाबा कहता है कि तुम्हारे शस्त्रास्त्र खूब बढ़ गये हैं, तो जरा एक बार लड़ लो। क्योंकि एक बार ऐसा सुन्दर युद्ध लड़ लोगे, तो सीधे अहिंसा की तरफ आओगे, अगर अभी तक नहीं आ पाये हो तो। किन्तु उन्हें लगा कि लड़ने का प्रयोग अच्छा नहीं। जिस तरह रावण ने शिव-धनुष उठाने का प्रयोग किया, तो वह उसीकी छाती पर आ गिरा, वैसे ही ऐटम और हाइड्रोजन बम हाथ में आया है, तो उससे अब सारा समाज बचेगा या खतम होगा, यह आशंका होने लगी है।

किसे मारा जाय ?

इसलिए स्पष्ट है कि तीव्र औषध से रोग दुरुस्त नहीं होता। उसके लिए सौम्य औषध की ही जरूरत है, यह सिद्ध है। और यह भी सिद्ध हो चुका है कि सिर दबाने और सोंठ लगाने से रोग दुरुस्त नहीं होगा। भूखे को खिलाने की छोटी-छोटी दया के प्रयोगों से आज न चलेगा और ये शस्त्रास्त्रों से संहार करने के प्रयोग, जमींदारों को और राजाओं को मारने के प्रयोग भी काम

के नहीं हैं। जमींदारों को मारने की बात है, उसमें सवाल पैदा होता है कि किन्हें मारा जाय? अकबर और बीरबल की मशहूर कहानी है। अकबर ने बीरबल से कहा था कि सब दामादों को सूली पर चढ़ाना है, इसलिए सूली तैयार करो। बीरबल ने बहुत सारी लोहे की सूलियाँ बनायीं, एक चाँदी की और एक सोने की भी बनायी। जब बादशाह ने पूछा कि चाँदी और सोने की सूली किनके लिए हैं, तो बीरबल ने कहा : एक मेरे लिए और दूसरी आपके लिए, क्योंकि हम भी किसी-न-किसीके दामाद हैं ही। इसी तरह ५०० एकड़वाला कहता है कि मेरे पास कम जमीन है, ५००० एकड़वाले को कत्ल करना चाहिए। १०० एकड़वाला कहता है कि ५०० वाले को कत्ल करो। इस तरह यह रास्ता काम का नहीं है।

उपनिषदों का आदेश

सारांश, आज दोनों मार्ग निकम्मे साबित हुए हैं—सोंठ लगानेवाला दया का मार्ग और तीव्र औषधवाला मार्ग। तो, अब हमें चिंतन करना चाहिए कि रोगी को दुरुस्त करने का और कौन-सा उपाय हो सकता है? इसीलिए हम कहते हैं कि भूदान का काम नारों से न होगा, बल्कि चिंतन से होगा। इसमें सोचने की बात है कि हम अपने यहाँ की भूमि-समस्या किस प्रकार हल करेंगे। हमें एक युक्ति ध्यान में आयी है। वह हमारे चिंतन से ही ध्यान में आयी, ऐसी बात नहीं, ईश्वर ने ही तेलंगाना में हमें यह बात सुझायी। हमने सोचा कि हरएक के हृदय में अन्तर्यामी परमात्मा है, तो जरा दरवाजा खोलकर उनके पास जायँ और सबको समझायें कि हवा, पानी और सूरज की रोशनी के समान जमीन पर सबका हक है। इस बात को कबूल करोगे, तो तुम्हारा भला है।

लोग कहते हैं कि यह बात हमें पसन्द है। और कुछ लोग हमें दान भी देते हैं। लेकिन कुछ लोग आक्षेप उठाते हैं कि हिन्दुस्तान में जमीन कम है और जनसंख्या अधिक है। तो, जमीन के बँटवारे से दारिद्र्य ही बँटेगा। इस पर हम कहते हैं कि दारिद्र्य हो, तो दारिद्र्य बाँटो और लक्ष्मी हो, तो लक्ष्मी। जिस तरह परिवार में जो कुछ होता है, सब बाँटकर खाते हैं, यह नहीं होता है

कि कुछ लोग खाते हैं और कुछ को भूखे रखते हैं। हम कबूल करते हैं कि हिन्दुस्तान में उत्पादन खूब बढ़ाना जरूरी है। यह बात सीखने के लिए न हमें 'योजना-आयोग' के पास जाने की जरूरत है, न पश्चिम का अर्थशास्त्र सीखने की। यह तो हमें उपनिषदों ने ही सिखाया है, जो ब्रह्मविद्या के सिवा दूसरी कोई चीज जानते ही न थे और मनुष्य की आध्यात्मिक उन्नति के सिवा जिन्हें दूसरी किसी भी चीज की परवाह ही नहीं थी। उन्होंने आज्ञा दी थी कि 'अन्नं बहु कुर्वीत। तद् व्रतम्।'—अन्न खूब पैदा करने का व्रत लो। उन्होंने यह भी कहा है कि अन्न से सब लोग जीते हैं और अन्न अधिक पैदा न हुआ, तो लोग आपस-आपस में लड़ेंगे, द्वेष और असन्तोष पैदा होगा। समाधान नहीं रहेगा। इसलिए अन्न खूब बढ़ाओ। हम चाहते हैं कि उत्पादन खूब बढ़े, लेकिन आज हमारे पास जो कुछ है, वह सब लोगों में समान रूप से बाँटना चाहिए। हम रोज सुबह दो-तीन घंटा चलते हैं और श्वासोच्छ्‌वास भी किया करते हैं। कोई हमसे यह कहेगा कि २-३ घंटा चला करो और उसके बाद खूब श्वासोच्छ्‌वास लो, तो हम यही कहेंगे कि श्वासोच्छ्‌वास नहीं करेंगे, तो हम मर जायँगे। इसलिए चलते समय, चलने के बाद और सोते समय भी हम श्वासोच्छ्‌वास लेंगे। इसी तरह आज हमारे पास जमीन कम है, सम्पत्ति कम है, तो भी हम बाँटेंगे और ज्यादा होने पर भी बाँटेंगे।

प्रजा कितनी पैदा करना, यह तो लोगों की इच्छा पर निर्भर है। वह एक बिलकुल ही स्वतन्त्र विषय है। उसका भी उत्तर उपनिषदों ने दिया है। उन्होंने कहा है कि जिस प्रजा में इंद्रिय-निग्रह नहीं, वह सुखी नहीं हो सकती। इसलिए हम चाहते हैं कि हमारी प्रजा में इंद्रिय-निग्रह आये। फिर भी हम यह कहना चाहते हैं कि आज हमारे देश में जो जन-संख्या है, उसका भार इस जमीन पर है। इसलिए जमीन पर सबका हक है।

भूदान का सौम्य उपाय

हमने जो उपाय सुझाया है, वह फलवाला तीव्र औषध नहीं और न सोंठ लगानेवाला दया का औषध है। यह बीच का सौम्य उपाय है।

इसमें त्याग करना पड़ता है, मालकियत मिटानी पड़ती है। अगर कोई कहे कि मालकियत मिटाना कठिन मालूम होता है, तो हम पूछेंगे कि क्या फिर कत्ल-वाला रास्ता आसान मालूम होता है ? जब दो रास्ते निकम्मे साबित हो चुके, तो तीसरा रास्ता अपनाया ही होगा। छोटी-छोटी दया से काम नहीं होता और न हत्याकांड से ही होता है, तो बीमारी हटाने के लिए कुछ तो करना ही होगा। इसीलिए हमने यह उपाय सोचा है कि गाँव गाँव की जमीन गाँव के लोगों में बाँटी जाय।

आरंभ में हमने छठे हिस्से की ही माँग की थी। लेकिन अब हम कहते हैं कि गाँव के कुल भूमिहीनों को बुलाकर, उनका स्वागत कर, उन्हें तिलक लगाकर दे दो। ऐसा काम करोगे, तो बुल्गानिन को यहाँ देखने की कोई चीज मिलेगी। आज तो वह प्रेम-संपादन करने के लिए आ रहा है। लेकिन प्रेम के मार्ग से कोई काम कैसे होगा, यह अभी तक सिद्ध नहीं हुआ है। इतना ही सिद्ध हुआ है कि द्वेष के मार्ग से काम नहीं होगा, यह भी पूरा ध्यान में नहीं आया। प्रेम-मार्ग से मसले कैसे हल होंगे, यह अभी सिद्ध करना है। इसलिए इस विचार को आप उठायेंगे और गाँव-गाँव जाकर जमीन बाँटेंगे, तो प्रेम से मसले हल हो सकते हैं और शस्त्रास्त्रों की अनावश्यकता सिद्ध हो सकती है। इसके लिए आज के मालकियत के विचारों में फर्क करना होगा। इसीलिए हमने कहा कि चिंतन की आदत डालो। जिस चिंतन-प्रणाली से बाबा भूदान-यज्ञ के उपाय पर पहुँचा, वही चिंतन-प्रणाली बाबा ने आज आप लोगों के सामने रखी है।

कोत्तापेटा
१८-११-'५५

दान और न्यास

आज सुबह जब हम यहाँ आये, तो कुछ वैदिकों ने हमारे स्वागत में 'महा-नारायणोपनिषद्' का अंतिम अंश हमें सुनाया, जिसमें ऋषियों ने हमारे कर्तव्यों का भान कराया है। बड़ी सुंदर भाषा में कई कर्तव्य हमारे सामने रखे गये हैं, जिनमें अतिथि-सेवा, तप, दान आदि बहुत-सी बातें बतायी गयी हैं। लेकिन अन्त में यह कहा है कि इन सबमें न्यास श्रेष्ठ चीज है।

"न्यासमेषां तपसाम् अतिरिक्तमाहुः।"

इसके जवाब में हमने कहा कि उपनिषदों ने दान की महिमा भी गायी है। आज हम दान और न्यास में जो फर्क है, उस बारे में समझायेंगे।

संग्रह के पाप से मुक्त होने के लिए दान

भूदान-यज्ञ का पहला कदम है, 'दान' और अंतिम कदम है, 'न्यास'। दान का अर्थ है—देना, "संविभागः"। याने अपने पास जो चीज है, उसका एक हिस्सा समाज को देना। दान में किसी पर उपकार करने की भावना नहीं होती। बल्कि मनुष्य यही महसूस करता है कि मैंने समाज से भर-भरकर पाया है, मैं समाज का अत्यंत ऋणी हूँ। इसलिए अपने पास जो चीज है, वह समाज की देन है और उसके प्रसाद के तौर पर ही हम उसका सेवन कर सकते हैं। साथ ही चूँकि वह समाज की देन है और समाज का हम पर उपकार हुआ है, इसलिए उसका एक अंश हम समाज को देते रहेंगे, तभी हमें उसे भोगने का अधिकार होगा। 'अगर हम अपनी प्राप्ति का अंश समाज को नहीं देते और खुद ही उसका सेवन करते हैं, तो चोरी करते हैं', ऐसा शाप भगवान् ने भगवद्गीता में दिया है।

आज तक यह माना गया है कि चोरी करना मानवता के विरुद्ध है और इसीलिए वह पाप है। किंतु यह बात हमारे ध्यान में नहीं आयी कि संग्रह करना भी पाप है। 'चोरी' और 'संग्रह' एक ही सिक्के के दो बाजू हैं। एक बाजू से

हम संग्रह करते रहते हैं, तो दूसरी बाजू से उसके प्रतिक्रियास्वरूप चोरियाँ होती रहती हैं। आज के समाज ने संग्रह पर प्रहार नहीं किया और सिर्फ चोरी को ही गुनाह समझा। इतना ही नहीं, आज तो इससे उल्टे व्यक्ति का संग्रह पवित्र समझा जाता है। मानव को उसका हक मानकर कानून में भी उसे एक पवित्र अधिकार समझा गया है। किन्तु हमें यह न भूलना चाहिए कि चोरी का मूल संग्रह में है। संग्रह ही चोरी को जन्म देता है। इसलिए अगर चोरी पाप है, तो संग्रह पुण्य नहीं हो सकता, वह भी पाप ही होना चाहिए।

फिर भी जब मनुष्य संसार में व्यवहार करता है, तो हरएक से कुछ-न-कुछ संग्रह हो ही जाता है। इसलिए उस पाप से निवृत्त होने की योजना यही है कि उसका एक हिस्सा समाज को अर्पण कर दें। हमने तो छठा हिस्सा ही माँगा है, किंतु ज्यादा-से-ज्यादा जितना हो सके, अर्पण करना चाहिए। भोग भोगनेवाले हर व्यक्ति का यह कर्तव्य है। इसे 'दान' कहते हैं। इसमें यह मानी हुई बात है कि आप अपने पास थोड़ा-सा तो भी संग्रह रखते हैं, उस हालत में दान का कर्तव्य आपको प्राप्त होता है। जिनके पास कुछ भी संग्रह नहीं, ऐसे व्यक्ति बहुत थोड़े होते हैं। इसलिए दान के कर्तव्य से कोई मुक्त नहीं हो सकता। इसे 'नित्य दान' कहते हैं। याने यह कोई किसी खास मौके पर करने का धर्म नहीं, सतत करने का है।

दान नित्यकार्य है

कुछ लोग पूछते हैं कि आप अभी जमीन का छठा हिस्सा माँगते हैं, तो एक बार छठा हिस्सा देने से, एक बार यह धर्म-कार्य कर डालने से क्या हमारा छुटकारा हो जायगा? हम कहना चाहते हैं कि यह वृत्ति धर्म-वृत्ति नहीं। आप विवाह करते हैं, तो बँध जाते हैं या छूटते हैं? जिस तरह विवाह से आप बँध जाते हैं और उसमें अपना कल्याण समझते हैं, वैसे ही धर्म-कार्य में बँध जाना कल्याण है। हम यह तो नहीं कहते कि हम एक बार जरा-सा खा लेंगे, तो फिर खाने से छुटकारा हो जायगा। बल्कि यही होता है कि हमने परसों खाया, कल खाया, आज भी खायेंगे और आगे भी खाने की वासना कायम रहती है। हम

जानते हैं कि यह चीज देह के लिए लाभप्रद है। इसलिए जब तक देह है, तब तक उसे कुछ-न-कुछ आहार देना अच्छा है।

हम यह भी नहीं कहते कि हमने एक दफा गंगा में खूब स्नान कर लिया, तो फिर स्नान से छूट गये। इस तरह दुबारा स्नान न करना पड़े, ऐसी इच्छा नहीं रखते हैं। बल्कि हमने स्नान का व्रत ही लिया है। शरीर का व्रत है कि मैं रोज गंदा हो जाऊँगा और हमारा भी यह व्रत है कि हम उसे रोज धोयेंगे। वह नहीं हारता और हम भी नहीं हार खाते। वह रोज गन्दा बन जाता है और हम रोज उसे धोते हैं। पर आखिर एक दिन हमारी हार हो ही जाती है। हम मर जाते हैं, तो शरीर को धो नहीं सकते। उस समय हमारे हिन्दू लोग हमें मदद करते हैं और लाश को धो देते हैं। वे कहते है कि इसका स्नान करने का व्रत आज खंडित हुआ, तो हम उसे पूरा कर देंगे। सारांश, हम जानते हैं कि स्नान से शरीर की शुद्धि होती और हृदय की स्फूर्ति बढ़ती है। इसलिए आनन्द से रोज स्नान करते है। हम रोज रात को सोते है। हमें कभी सोने की अरुचि पैदा नहीं होती। शरीर को रोज थकान आती है, इसलिए उसे रोज आराम देना हम लाभप्रद समझते हैं।

इस तरह जैसे हम रोज स्नान करते हैं, रोज भोजन करते हैं, रोज निद्रा लेते हैं, वैसे ही दान भी नित्य कार्य है। जैसे नहाने, खाने और सोने में हमें रोज आनन्द आता है, वैसा ही समझनेवाले को नित्य दान में भी आनन्द होता है। भोग से जो मलिनता निर्माण होती है, उसे धोने के लिए हर रोज दानरूपी स्नान अवश्य करना चाहिए। अगर हम कभी भोगरूपी मलिनता से मुक्त होंगे, भोग की आवश्यकता न रहेगी, तो फिर दान की भी आवश्यकता नहीं रहेगी। किन्तु हमारा भोग निरन्तर चलता है, इसलिए दान-क्रिया भी सतत चलनी चाहिए।

दान याने ऋण-मुक्ति

यह बात ध्यान में रखनी चाहिए कि दान में हम दूसरे पर उपकार नहीं करते। उन्हींका हम पर खूब उपकार हो चुका है। इसलिए यह हम अपने ऋण का शोधन कर रहे हैं। बचपन से हमने समाज का निरंतर उपकार लिया है।

समाज ने हमें विद्या दी, हमारा भरण-पोषण किया है। उसने हमारी सेवा के लिए पचासों चीजें बनायी हैं। विद्यार्थी जिन मकानों में विद्या पाते हैं, वे किसान और मजदूरों के बनाये होते हैं।

आज हम आपके यहाँ एक दिन ठहरे और आपके सामने कुछ बातें रखीं, जो विश्व-कल्याण की होती हैं। तो, आप बाबा को उपकार-कर्ता समझते हैं। लेकिन आज के दिन आपका हम पर कितना उपकार हुआ, इसका हिसाब बाबा के मन में है। बाबा के लिए खाने-पीने की चीजें, स्नान आदि का सारा प्रबंध जनता ने किया है। रहने के लिए अच्छा मकान दिया है और रात में इसकी नींद में खलल न पहुँचे, इसकी भी आप चिंता करते हैं। हम नहीं समझते कि आपने आज के दिन हम पर जो उपकार किया, उसका भी पूरा अंश हम आपको वापस दे रहे हैं। तब फिर बचपन से हम पर जो उपकार हुआ है, उसका हिसाब कितना होगा? आज के दिन का भी लेखा जोड़ा जाय, तो हमारी सेवा उतनी नहीं होगी, जितना कि आपका उपकार है। इसलिए हम अपने मन में यह समझते हैं कि उपकार-कर्ता हम नहीं, समाज है। दान करनेवाला इसी भावना से दान करे।

आज तो हम आपसे जमीन माँग रहे हैं। लेकिन कल आपसे पूछेंगे कि जिसे आपने जमीन दी, उसे बैल-जोड़ी और पहले साल के लिए बीज भी नहीं देंगे? आप कहेंगे, हाँ, जरूर देंगे। फिर हम पूछेंगे कि आपने जिसे जमीन दी, उसका लड़का बीमार है, तो आप उसके लिए दवा का कुछ इंतजाम नहीं करेंगे? आप कहेंगे, हमने उसे अपने परिवार में दाखिल कर लिया है, इसलिए जरूर दवा का इन्तजाम करेंगे। फिर हम आपसे पूछेंगे कि उसके लड़के की शादी का इन्तजाम आप कर सकते हैं? तो आप कहेंगे, क्यों नहीं कर सकते? शादी तो स्वतंत्र कार्य है। उसमें किसीके भी घर का खर्चा न होना चाहिए, सारे गाँव की तरफ से खर्चा होना चाहिए। शादी के लिए किसीको कर्ज निकालना पड़े, यह सारे समाज के लिए दोष है। शादी तय करना माता-पिता का काम है। लेकिन उसके लिए खर्चा सारा गाँव करेगा, क्योंकि यह सार्वजनिक कार्य है। इस तरह से जैसे विवाह करने के बाद आपका संसार शुरू होता और बढ़ता ही जाता

है, वैसे भूमिदान देने के बाद आपका काम शुरू होगा और बढ़ता ही जायगा। इसीका नाम 'दान' है!

न्यास : मालकियत का विसर्जन

'न्यास' में मालकियत का पूरा विसर्जन है। मैं अपने पास संग्रह रखूँगा ही नहीं। जो कुछ होगा, गाँव को दे दूँगा। फिर समाज की तरफ से मुझे जो मिलेगा, वह मैं लूँगा। मैं नारायणाश्रित बनूँगा—यह नारायणोपनिषद् का वाक्य है, जिसमें ऋषि कहता है कि न्यास सबसे श्रेष्ठ तत्त्व है। याने मालकियत का परित्याग कर नारायण की शरण जाना सबसे श्रेष्ठ धर्म है। भूदान-यज्ञ का अंतिम कदम यही है। जिस तरह भूमिति में दो बिन्दु होते हैं और तभी सुरेखा बनती है, उसी तरह सर्वोदय के भी दो बिन्दु हैं: पहला बिन्दु है दान और दूसरा बिन्दु न्यास। दान से लेकर न्यास तक धर्म का पन्थ है, जिस पर हम उत्तरोत्तर बढ़ते चले जायँगे और आखिर में अपनी मालकियत का विसर्जन कर देंगे। जैसे नदी पेड़ों को पोषण देती चली जाती है, वैसे धार्मिक मनुष्य भी दान देता चला जाता है। नदी से आप पूछेंगे कि तुम्हारा उद्देश्य क्या है, तो वह कहेगी: 'मेरा उद्देश्य समुद्र में लीन होना है, न कि पेड़ों को पानी देना। लेकिन मैं समुद्र की ओर जाती हुई मार्ग के पेड़ों को भी पानी देती चली जाती हूँ।' वैसे ही मनुष्य से पूछा जाय कि तेरे जीवन का उद्देश्य क्या है? तो वह उत्तर देगा: 'मेरे जीवन का उद्देश्य है न्यास याने समाज में लीन हो जाना, व्यक्तिगत मालकियत मिटाकर समूह की शरण लेना।'

बाबा आपके पास भूमि माँगता है। आखिर उसकी वाणी में क्या आकर्षण है? वह कोई वक्ता नहीं। उसकी वाणी में यही आकर्षण है कि उसने अपना सब कुछ समाज को अर्पण कर दिया है। ऐसा शख्स आपके पास आकर दान की बात करता है, तो आपके दिल को वह जँचती है। इस तरह न्यास कर समाज के पास पहुँचनेवाले लोग हों और उन्हींके हाथ में समाज का नेतृत्व हो, तो समाज में दान-परम्परा चलेगी। समाज में संन्यास-परम्परा निरन्तर चलनी

चाहिए। जब समाज को सर्वस्व समर्पण कर समाज-आश्रित बन रहनेवाले कुछ संन्यासी निकलेंगे, तभी लोगों में दान चलेगा। सूर्यनारायण में इतनी प्रखर उष्णता होती है, तभी हममें ६८ डिग्री उष्णता आ पाती है। अगर सूर्यनारायण में ही ६८ डिग्री उष्णता रहे, तो हम सारे ठंडे पड़ जायँगे। इसलिए समाज के नेता जब सर्वस्व परित्यागी बनेंगे, तो लोग कम-से-कम दानशील बनेंगे ही। इसी-लिए नारायणोपनिषद् ने कहा है, 'सबमें श्रेष्ठ तपस्या संन्यास है।'

संन्यास याने नारायण-परायण होना

इन दिनों लोग 'संन्यास' का अर्थ ही गलत समझे बैठे हैं। वे समझते हैं कि संन्यास का मतलब है, समाज का परित्याग। वास्तव में संन्यास का मतलब है, समाजमय हो जाना, पूर्ण अभय बनना। 'मुझे किसीका भय नहीं, और मुझसे किसीको भय नहीं; मेरा व्यक्तिगत अहंकार कुछ नहीं; मैं तो आपके लिए हूँ; आप मेरा जो भी इस्तेमाल करना चाहें, कर सकते हैं'—इसीका नाम है संन्यास। '*शान्तः महान्तः अखिलजीववत्सलः वसंतवत् लोकहितं चरन्तः।*' याने वसंत ऋतु के समान ये लोकहित करते रहते हैं। वसंत ऋतु पेड़ों को पुष्पित और फलित करती है, लेकिन स्वयं उन फलों का सेवन नहीं करती। वह निरपेक्ष रहकर पुष्पों को और फलों को पल्लवित करती है। इसीका नाम है, संन्यास। किन्तु आज संन्यासी का अर्थ यही हो गया है कि समाज की तरफ से भोजन करनेवाला और समाज की कुछ भी सेवा न करनेवाला। आज की मान्यता के अनुसार संन्यासी सिर्फ भिक्षा माँगने के लिए लोगों के पास जायगा, शरीर से कोई काम न करेगा। आप यह कल्पना ही नहीं कर सकते कि कोई सन्यासी खेत खोद रहा हो। आपके सामने सन्यासी का ऐसा चित्र खड़ा नहीं होगा कि वह गाय की सेवा कर रहा हो; किसीके घर जाय, तो २-४ सेर अनाज पीस देता और फिर खाता हो, किसी गाँव में गंदगी दीखने पर झाड़ू लगा उसे साफ करता हो। बल्कि आपके सामने संन्यासी का ऐसा ही चित्र खड़ा होता है कि वह लोगों का परित्याग कर अलग रहेगा, सिर्फ भिक्षा माँगने के लिए लोगों के पास जायगा और कभी मौके पर बोध दे देगा।

हमारे एक मित्र संन्यास की बात सोचते थे, तो उनके पिताजी हमारे पास आकर रोने लगे और कहने लगे : 'आप मेरे लड़के को कुछ समझाइये, वह संन्यास ले रहा है।' जब मैंने उनसे पूछा कि 'इसमें रोने की क्या बात है ?' तो उन्होंने कहा : 'हम बूढ़े हो गये हैं, लड़का संन्यास ले लेगा, तो हमारी सेवा कौन करेगा ? उसीकी सेवा हमें करनी पड़ेगी।' इसका मतलब यह हुआ कि यह माना गया कि संन्यासी किसीकी सेवा नहीं करेगा, बल्कि सबकी सेवा लेगा।

हमारे दादा अपने एक मित्र की कहानी सुनाते थे। वे मित्र बड़े विद्वान् और एक शंकराचार्य के शिष्य थे। शंकराचार्य ने मरते समय अपने शिष्यों से कहा कि 'दादा के उस मित्र को उनकी गद्दी पर बिठाया जाय।' सुनकर वे मित्र दादा के पास आकर रोने लगे, कहने लगे : 'अब तो मुझे सन्यास लेना ही पड़ेगा। फिर मैं कुछ काम ही न कर सकूँगा। मेरी सेवा की बहुत-सी जिम्मेवारियाँ हैं, लेकिन अब मैं कुछ भी सेवा न कर सकूँगा।'

इन दो कहानियों पर से आपके ध्यान में आ गया होगा कि आज समाज में संन्यास का कितना विपरीत अर्थ किया जा रहा है। माना जाता है कि नारायणोपनिषद् संन्यास का है। किन्तु संन्यास का ऐसा गलत अर्थ समझने के कारण हमारा जीवन भी गलत बन गया है। किसी प्रकार की सेवा न करना, यह संन्यास का लक्षण नहीं। वास्तव में संन्यास याने केवल सेवामय जीवन, जिसमें देह की आसक्ति न हो, मन में कोई अहंकार न हो और व्यक्तिगत स्वार्थ कुछ भी न रहे। इसीका नाम है, नारायण-परायण जीवन और इसीको 'न्यास' कहते हैं। हमारा हरएक का जीवन ऐसा होना चाहिए। हरएक पूरी तरह समाज-परायण होना चाहिए। व्यक्तिगत स्वार्थ, लोभ या कामना न रहे, यही हमारा अंतिम ध्येय होना चाहिए।

दान का सामाजिक मूल्य

सारांश, व्यक्ति अपना सर्वस्व समाज को समर्पण करे, यह संन्यास है और भोग करते हुए उसका एक हिस्सा समाज को देना, यह है दान, यह उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है। किन्तु दान और न्यास, दोनों का न केवल व्यक्तिगत मूल्य है, बल्कि सामाजिक मूल्य भी है। जो मूल्य केवल व्यक्तिगत रह जायँगे, उनमें शक्ति

नहीं आयेगी। सामाजिक दृष्टि से दान का अर्थ यह होता है कि सारे समाज में सतत दान प्रवाहित होता रहे। जिस तरह फुटबॉल के खेल में हम गेंद अपने पास पकड़े नहीं रखते। जहाँ गेंद हाथ में आया, फौरन उसे लात मारकर दूसरे के पास भेज देते हैं। इसीका नाम है, सामाजिक दान-प्रक्रिया। हमारे पास किसी-न-किसी तरफ से धन आये, तो फौरन उसे लात मारकर दूसरे के पास पहुँचा देना चाहिए। इस प्रक्रिया में समाज में धन का अभाव नहीं रहता। समाज में धन बहुत रहता है और वह अनेक व्यक्तियों के पास जाता है; लेकिन कोई व्यक्ति उसे पकड़े नहीं रहता। फुटबॉल में कोई अपने पास गेंद पकड़ रखे, तो खेल ही खतम हो जाता है। आज हमारे पास कोई चीज आयी, तो उसका थोड़ा-सा अंश सेवन कर बाकी का फौरन उसी दिन और उसी क्षण समाज को लौटा देने की प्रक्रिया को सामाजिक दान-प्रक्रिया कहते हैं।

इसकी उत्तम मिसाल हमारा यह शरीर है। खाना खाते समय हाथ लड्डू उठाकर मुँह में डालने के बजाय लोभी बनकर अपने पास पकड़ रखें, तो क्या भोजन का आनंद मिलेगा? लेकिन हाथ परोपकारी बनकर उसे तत्काल मुँह में डालता है। मुँह भी उसे पेट में भेजने के बजाय अपने पास पकड़ रखे, तो मुँह फूल जायगा और भोजन का आनंद न मिलेगा। पर मुँह परोपकारी बनकर लड्डू को चबा पेट के पास पहुँचा देता है। अगर पेट स्वार्थी बन जाय और लड्डू को अपने पास रखे, तो आपरेशन करने की बारी आयेगी। लेकिन पेट उसे पचाकर उसका खून बनाकर शरीर में सर्वत्र भेज देता है। इस तरह शरीर का हरएक अवयव स्वार्थी नहीं, देह-परायण होता है। अगर हरएक अवयव स्वार्थी बने, तो भोजन ही खतम हो जाय। इसी तरह किसीके घर में धन का ढेर पड़ा हो, सड़ रहा हो, धन के कारण वह आलसी बन गया हो, तो दूसरे लोगों में उसके लिए मत्सर पैदा होता है। फिर चोरियाँ चलती हैं। इसके बदले अगर वह अपने पास आये धन का एक अंश सेवन कर बाकी का समाज के पास पहुँचा दे, तो उस धन का आज ही उपयोग होगा। इसीको दान का सामाजिक मूल्य कहते हैं।

न्यास का सामाजिक मूल्य

अब मैं न्यास के सामाजिक मूल्य के बारे में कहूँगा। समाज में परिग्रह

बढ़ना है, तो उसके रक्षण की योजना करनी पड़ती है। अहमदाबाद और बंबई की मिलों मे सारे हिंदुस्तान के लिए कपड़ा तैयार होता है, तो उन मिलों की रक्षा के लिए योजना करनी पड़ेगी। कहीं लड़ाई छिड़ जाय और उन दो जगहों पर बम पड़े, तो सब खतम हो जायगा, फिर देश को नंगा रहना पड़ेगा। इसलिए उन मिलों की रक्षा के लिए शस्त्रास्त्र से सज्जित होना पड़ेगा। यह सब छोड़ने का अर्थ है, न्यास। न्यास का मतलब है कि सर्वत्र विकेंद्रित उत्पादन होना चाहिए। किसी एक जगह सारे प्रांत या देश के लिए उत्पादन होता हो, तो वह बात न्यास के विरुद्ध है। व्यक्ति की तरफ से निरंतर समाज को देते रहने को 'सामाजिक दान-योजना' कहा जायगा, तो 'समाज में कहीं भी केंद्रित उत्पादन न होने' को 'सामाजिक न्यास-योजना' कहा जायगा।

आजकल बड़े-बड़े राज्य शस्त्र-संन्यास की बातें करते हैं। अभी बुल्गानिन हिंदुस्तान में आया है। वह चाहता है कि दुनिया शस्त्र-संन्यास कर दे, पर वह खुद शस्त्रों से लदा हुआ है। लेकिन यह बात ध्यान में आ रही है कि सबके हाथ शस्त्र आने पर उनसे किसीको लाभ नहीं होता। अगर शस्त्र देवी कम्युनिस्टों से कहे कि मैं तुम्हें ही वरती हूँ, तो उन्हें कुछ लाभ हो सकता था। लेकिन वह न सिर्फ कम्युनिस्टों पर, वरन् पूँजीवादियों और साम्राज्यवादियों पर भी प्रसन्न है। उसका एक पातिव्रत्य नहीं है। आज अमेरिका और रूस, दोनों के पास शस्त्रास्त्र-संभार है और इंग्लैंड, फ्रांस जैसे दूसरे देश भी शस्त्रास्त्र बढ़ाना चाहते हैं। इसलिए शस्त्र-संन्यास हो, तो अच्छा होगा, ऐसा अब मार्शल को भी लगने लगा है। लेकिन शस्त्र-संन्यास तो तभी होगा, जब विकेन्द्रित उत्पादन की योजना होगी। संन्यास की यह योजना सब विद्याओं में श्रेष्ठ है। उपनिषदों ने कहा है: 'न्यासमेषां तपसाम् अतिरिक्तमाहुः।' सब तपस्याओं में न्यास श्रेष्ठ है। आज कोई केवल शस्त्रास्त्रों का संन्यास करने की बात कहे, तो वह अधूरी बात होगी। अगर हम चाहते हैं कि बहनें स्वतंत्र होकर घूमें, तो उन्हें गहनें छोड़ने ही पड़ेंगे। गहनों ने बहनों को गुलाम बना रखा है। गहनों की रक्षा के लिए बहनों को भी तिजोरी में बन्द रखा जाता है। इसी तरह अगर आप शस्त्र-संन्यास चाहते हैं, तो एक जगह बहुत ज्यादा उत्पादन न होना चाहिए।

न्यास याने विकेन्द्रित उद्योग

उत्पादन होने पर फौरन उसे दूसरी जगह पहुँचा देना दान-योजना है। इसके साथ न्यास-योजना भी चलनी चाहिए। याने एक जगह बहुत ज्यादा उत्पादन न होना चाहिए। इस तरह हर जगह थोड़ा-थोड़ा उत्पादन हो और फिर भी जो उत्पादन होता हो, उसे फौरन दूसरे के पास पहुँचाया जाय—इस तरह सामाजिक दान और न्यास की योजना होनी चाहिए। हम चाहते हैं कि ग्राम-ग्राम में विकेन्द्रित उत्पादन हो। इसका मतलब यह नहीं कि हम सिंदरी के कारखाने का या भाखरा डैम का निषेध करते हैं। हम चाहते हैं कि वे जरूर बनें। लेकिन यह भी चाहते हैं कि खेत-खेत में कुएँ बनें। अगर पानी की विकेन्द्रित योजना की जाय, तो हर किसान का जीवन पूर्ण होगा। नहीं तो आपने किसी जगह बड़ा डैम बनाया, उसके रक्षण के लिए योजना करनी पड़ती है। जहाँ केन्द्रित उद्योग चलते हैं, वहाँ उनका रक्षण करना ही पड़ता है। इसलिए आज जो चल रहा है, उसे हम दोष नहीं देते, बल्कि यही चाहते हैं कि हमें सम्पत्ति के उत्पादन का ही ऐसा रास्ता पकड़ना चाहिए, जिससे संपत्ति का विभाजन होता चला जाय। इस तरह एक बाजू से न्यास-योजना याने विकेन्द्रित उद्योग की योजना और दूसरी बाजू से जो भी उत्पादन हो, वह सबमें बँटने की दान-योजना करनी होगी।

जैसे-जैसे हम तत्त्व-चिंतन करते हैं, वैसे-वैसे शब्दों के नये-नये अर्थ सूझते हैं। आध्यात्मिक शब्द बड़े 'अर्थ-घन' या अर्थ से भरे होते हैं। अगर हम अर्थों को समझकर उनके अनुसार अपना जीवन बनाते हैं, तो वे अर्थ हम पर प्रसन्न होते हैं।

अमलापुरम

२०-११-'५५

दिनों पश्चिम की विद्या के कारण बच्चों को नाहक मरे राजाओं के नाम याद करने पड़ते हैं। मैं जब दिल्ली के नजदीक मेवातों के काम कर रहा था, तो मुसलमानों की एक सभा में मैंने पूछा: "अकबर बादशाह का नाम तो आप जानते ही होंगे?" जब उन्होंने कहा कि "नहीं जानते", तो मैंने पूछा: "क्या आपने 'अकबर' नाम कभी सुना ही नहीं?" उन्होंने जवाब दिया: "जी हाँ, सुना है—'अल्लाह हो अकबर, अल्लाह हो अकबर'!" जब दिल्ली के पास रहनेवाले मुसलमान अकबर जैसे बहुत बड़े बादशाह का नाम भी नहीं जानते, तो दूसरे राजाओं को कौन पूछता है? हिंदुस्तान की जनता सिर्फ एक ही राजा का नाम जानती है—'राजा राम राजा राम'।

साराश, हम पुराने इतिहास को कोई महत्त्व नहीं देते, क्योंकि हम तो इतिहास बनानेवाले हैं। राम और कृष्ण अवतार थे, तो हम क्या शैतान हैं? हम भी अवतार हैं। हमारे लिए नये ब्रह्म का आविर्भाव होगा। मर्यादा पुरुषोत्तम राम का ब्रह्म था—मर्यादा की स्थापना करना। कृष्ण भगवान् का ब्रह्म था—अनासक्त कर्मयोग। बुद्ध भगवान् का ब्रह्म था—अहिंसा। और हमारा ब्रह्म है—सर्वोदय। नया ब्रह्म, नया यज्ञ, नया त्याग, नया न्याय और नया उत्साह हो, तभी जीवन जीने लायक होगा। इस तरह नये-नये ब्रह्म का अनुभव करते-करते हम परब्रह्म तक पहुँच जायँगे। सारी दुनिया में साम्ययोग की स्थापना होगी। पहले 'अन्नं ब्रह्मेति व्यजानात्', फिर 'प्राणम् ब्रह्मेति व्यजानात्', फिर 'मनो ब्रह्मेति' फिर 'विज्ञानम् ब्रह्मेति' और अन्त में 'आनन्दं ब्रह्मेति'। इस तरह खूब ऊपर-ऊपर चढ़ना है। स्वराज्य-प्राप्ति में जितनी ताकत लगायी, उससे ज्यादा ताकत सर्वोदय-प्राप्ति में लगानी है। स्वराज्य-प्राप्ति में कुछ गुणों का—जैसे निर्भयता आदि का—विकास हुआ। अब निर्लोभता का विकास करना है। जब लेने की बात होती है, तो मनुष्य को उत्साह आता है। इसी तरह जब देने में उत्साह होगा, तभी सर्वोदय आयेगा।

नये तरुण आगे आयें

नयी तपस्या के लिए नये तरुणों को आगे आना चाहिए। स्वराज्य

प्राप्ति में जिन्होंने तपस्या की, वे अब थक गये हैं। सब लोग गांधीजी के जैसे चिरतरुण नहीं होते। वे तो त्याग के बाद त्याग करते चले गये। अस्सी साल की उम्र में वह बूढ़ा नोआखाली में गाँव-गाँव पैदल घूमकर दुःखितों के आँसू पोंछता था। उसी समय सारे देश में स्वराज्य-प्राप्ति का उत्सव मनाया जा रहा था। लेकिन वे कहते थे कि 'स्वराज्य तो आया, पर मेरे लिए तपस्या ही है, मेरा स्थान तो नोआखाली में है। वे नित्य नयी तपस्या करते गये, इसलिए उनका हमेशा के लिए नवजीवन था। लेकिन सब लोग ऐसे चिरतरुण नहीं होते। इसलिए अब नये जवानों को उत्साह से आगे आना चाहिए और कहना चाहिए कि 'हम अपनी सब जमीन सब लोगों में बाँट देंगे, हम भूमि के मालिक नहीं रहेंगे। भूमि-पुत्र के नाते सब मिलकर भूमि की काश्त करेंगे। सारी भूमि और संपत्ति भगवान् की कर देंगे। हमारा-तुम्हारा, यह भेद मिटा देंगे। हम बड़े भाग्यवान् हैं कि हमारे सामने यह पवित्र कार्य उपस्थित है!'

वीक्षासरम्
२४-११-'५५

सर्वोदय के आधार

: १२ :

सर्वोदय कैसे ?

हमने कई बार कहा है कि देहात के लोग परमेश्वर की सेवा करते हैं, नागरिकों को उनके साथ संबंध रखना चाहिए। देहात के लोग साक्षात् ईश्वर की सेवा करते हैं, तो ईश्वर के सेवकों की सेवा नागरिकों को करनी चाहिए। इस तरह का प्रेम नागरिकों और देहातियों में हो जायगा, तो भारत में एकरूपता और एकरसता निर्माण होगी।

जो गुण गाँव में होते हैं, उनका अभ्यास नागरिकों को करना चाहिए। ग्रामीणों में शरीर-परिश्रम की आदत होती है। नागरिकों में वह नहीं होती। हरएक को शरीर-परिश्रम, व्यायाम की जरूरत है। व्यायाम के बिना खाना हजम नहीं होता। इसीलिए शहरों में व्यायाम-शालाएँ खोली जाती हैं। वहाँ लोग

दस-पन्द्रह मिनट दंड-बैठक करते हैं, जिसमें सिवा पसीने के और कोई उत्पादन नहीं होता। उन्हें समझाना होगा कि आप ऐसा व्यायाम कीजिये, जिससे उत्पादन हो। इस तरह नागरिकों और ग्रामीणों के जीवन में फर्क है। नागरिकों को इतना तय करना चाहिए कि व्यायाम के तौर पर शरीर-परिश्रम करें।

आज शिक्षित लोग व्यायाम के सिवा कोई परिश्रम नहीं करते। वे डम्बेल्स लेते और उन्हें हवा में घुमाते हैं। जिससे कुछ पैदा न हो, ऐसा काम इज्जत का काम माना जाता है। सोचने की बात है कि अगर हम उत्पादन करें और मजदूर कहलायें, तो क्या बिगड़ेगा? लेकिन मजदूरों के लिए इतनी घृणा है कि यह नाम भी हम पसन्द नहीं करते। जो काम करता है, उसे नीच मानते हैं। जो गन्दगी करेगा, वह 'नागरिक' कहलायेगा और जो साफ करेगा, वह 'अछूत'! यह वृत्ति नागरिक छोड़ दें और ग्रामीणों के सेवक बनें। ग्रामीण सीधे परमेश्वर की उपासना करें। वे सुबह होते ही सूर्यनारायण की उपासना करते हुए खेतों में काम करें और हम उनकी सेवा करें। तभी 'सर्वोदय' होगा।

'सर्व-सेवा' का अर्थ

महात्मा गांधी के जाने के बाद उनकी कई संस्थाएँ अलग-अलग काम करती थीं। ग्रामीणों की सेवा के लिए उन्होंने कई संस्थाएँ बनायी थीं। उन सब संस्थाओं ने मिलकर एक विशाल संस्था बनायी, जिसका नाम है 'सर्व-सेवा-संघ'। इसमें 'सर्व' शब्द बड़े महत्त्व का है। यों कुछ-न-कुछ सेवा लोग करते ही हैं, लेकिन वह सेवा 'सर्व-सेवा' नहीं होती। बहुत लोग 'असर्व' की सेवा करते हैं। जो जातिवादी होते हैं, वे 'असर्ववादी' हैं। कोई कहता है, हम ब्राह्मणों की सेवा करेंगे। कोई कहता है, हम मुसलमानों की सेवा करेंगे, उनका भला हम चाहते हैं। इस तरह छोटी-छोटी जमातों की सेवा में लगे रहनेवाले 'कम्युनलिस्ट' (सम्प्रदायवादी) कहलाते हैं। दूसरे होते हैं, कम्युनिस्ट। वे भी 'असर्ववादी' हैं। वे मानते हैं कि समाज में दो वर्ग हैं : एक श्वशुर और दूसरा दामाद। इन दोनों का परस्पर विरोध मानकर वे कहते हैं कि हमें एक वर्ग की सेवा करनी है। इस तरह उनके हृदय में समाज

के दो टुकड़े हैं। अवश्य ही वे सेवाभाव से काम करते हैं, उनके हृदय में प्रेम है, सच्चे भाव हैं। पर वे समाज का विभाजन कर और एक वर्ग के पक्षपाती बनकर काम करते हैं।

बीरबल और बादशाह की यह कहानी आपको मालूम ही होगी। बादशाह ने हुक्म दिया कि जितने दामाद हों, उन सबको फाँसी की सजा दी जाय। बीरबल ने बहुत-सी लोहे की सूलियाँ बनवायीं, जिनमें एक सूली चाँदी की और एक सोने की भी थी। बादशाह ने पूछा : 'क्यों, तैयारी हो गयी ?' बीरबल ने कहा : 'हाँ' और उसने बादशाह को सूलियाँ दिखायीं। बादशाह ने पूछा : 'यह चाँदी की और यह सोने की सूली क्यों बनवायी ?' बीरबल ने धीरे से कहा : 'चाँदी की मेरे लिए और सोने की आपके लिए, क्योंकि हम दोनों भी तो किसीके दामाद हैं !'

आसक्ति छोड़ें

इस तरह जो लोग मालिकों से द्वेष करते हैं, वे खुद मालकियत चाहते हैं। मालिक बड़ी-बड़ी मालकियतें छोड़ने को तैयार नहीं, तो ये छोटी-छोटी मालकियतें छोड़ने को तैयार नहीं। छोटे लोग बड़े मालिकों से तो द्वेष करते हैं, लेकिन स्वयं छोटी मालकियतों से चिपके रहते हैं। इसीलिए बड़ों को भी अपनी मालकियत से चिपके रहने की इच्छा होती है। उनके ध्यान में ही नहीं आता कि हम जिस चीज के लिए बड़ों का द्वेष करते हैं, वही चीज हम भी कर रहे हैं। एक को लँगोटी की आसक्ति है, तो दूसरे को धोती की। एक का ममत्व महल में है, तो दूसरे का झोपड़ी में। इसीलिए हम कहते हैं कि सब छोटे लोगों को अपनी मालकियत की आसक्ति छोड़नी चाहिए, तभी बड़ों की मालकियत छूटेगी। केवल एक का मत्सर करने का कार्यक्रम चलेगा, तो उससे ताकत नहीं बनेगी।

श्रीमानों की सेवा कैसे ?

'सर्व-सेवा संघ' का सिद्धान्त है कि सर्व-सेवा करनी चाहिए। मालिकों और मजदूरों, गरीबों और श्रीमानों, सबकी सेवा करनी चाहिए। दोनों में संघर्ष

न रहना चाहिए। लोग पूछते हैं : 'श्रीमानों की सेवा कैसे करेंगे ?' उनकी सेवा उनको संपत्ति से मुक्त करके होगी।

एक दुबला-पतला कमजोर मनुष्य था—शुष्क शरीर! वह डॉक्टर के पास गया। डॉक्टर ने उसे अपने पास रख लिया और रोज दवा के नाम से कुछ पिलाने लगा, क्योंकि कुछ पिलाये बगैर आजकल लोगों का विश्वास नहीं जमता। उस दवा के साथ-साथ डॉक्टर ने उसे लड्डू खिलाना शुरू किया, घी और दूध भी देता था। डॉक्टर की ख्याति फैल गयी कि वह लड्डू खिला-खिलाकर अच्छा करता है। यह सुनकर एक ऐसा बीमार डॉक्टर के पास पहुँचा, जो अपने शरीर को उठा नहीं सकता था, हाँफता था। डॉक्टर ने उसे भी अपने घर में रख लिया और औषध पिलाना शुरू कर दिया। डॉक्टर ने कहा कि 'एक पथ्य का निश्चयपूर्वक पालन करोगे, तो तुम अच्छे हो जाओगे।' उस बीमार ने कहा : 'आप हमें जीवनदान देनेवाले हैं, आपको वचन देने में क्या हर्ज है!' डॉक्टर ने कहा : 'घी, शक्कर और आटा, तीनों तुम्हारे लिए वर्ज्य हैं। हम तुम्हें सिर्फ तरकारी खिलायेंगे।' वह शख्स बहुत नाराज हुआ। बोला : 'सिर्फ तरकारी खाने के लिए क्या मैं भैंस हूँ ? दूसरे शख्स को तुम लड्डू खिलाते हो, मुझे क्यों नहीं ? मैं तो यही आशा लेकर आया था।' डॉक्टर ने कहा : 'मैं तुम दोनों का मित्र हूँ। इसलिए तुम्हें पूछता हूँ कि तुम्हें जिन्दा रहना है या मरना ? जिन्दा रहना है, तो पचास रतल वजन घटाना होगा। नहीं तो वजन के साथ मरना होगा। जो कमजोर है, उसे खिलाना उस पर प्रेम करना है। जिसका वजन बहुत बढ़ा है, उसका वजन घटाना उस पर प्रेम करना है।'

प्रेम से लूटिये

इसलिए हम कहते हैं कि 'श्रीमानों पर प्रेम करना है', तो कम्युनिस्ट कहते हैं : 'उनसे द्वेष करना चाहिए।' हम कहते हैं : 'घी, शक्कर, रोटी बंद करना प्रेम है।' 'प्रेम' को आप 'द्वेष' नाम क्यों देते हैं ? बाबा में और आपमें यही तो फर्क है। बाबा घर-घर जाता है और दिन में लूटता है। जिसे लूटता है, वह उसे मानपत्र देता है। हमें आज तक पाँच लाख दानपत्र मिले और मानपत्र भी

बहुत मिले हैं। जिन्होंने दान दिया है, उन्हें मानपत्र मिलना चाहिए, लेकिन यहाँ उल्टा होता है; क्योंकि बाबा ने उनका वजन घटाया। पाँच सौ से सौ एकड़ रखा। अब वे कुछ दिन जीयेंगे और उन्हें आशीर्वाद देंगे। इसीलिए बाबा को मानपत्र मिलते हैं।

अभी एक गाँव में एक कम्युनिस्ट मित्र हमारे पास आये। उन्होंने हमारा व्याख्यान सुना। बाद में वे कहने लगे: 'अगर हम ऐसा व्याख्यान देते, तो सरकार हमें जेल भेजती।' मैंने कहा: 'यही तो आपमें और हममें फर्क है। आप रात में क्यों लूटते हैं? बाबा की युक्ति देखिये। श्रीमानों पर प्रेम करिये। प्रेम से उनका वजन घटाइये।'

दो भाई गले मिले

साढ़े चार साल पहले हम तेलंगाना में घूम रहे थे, तो देखा कि सरकार के सिपाही लोगों को खूब लूट रहे हैं। कहते थे कि 'तुम कम्युनिस्टों की मदद करते हो, इसलिए जेल चलो।' बेचारे दोनों बाजुओं से पीसे जाते थे। रात को कम्युनिस्ट धमकाते थे और दिन में सरकार के सिपाही सताते थे।

हमने वहाँ देखा, दो भाइयों में द्वेष था। एक कांग्रेसी था और दूसरा कम्युनिस्ट। जमीन का आधा हिस्सा एक के पास था और आधा दूसरे के पास। दोनों जमींदार थे। हमने उन दोनों को समझाया। वे समझ गये। दोनों ने एक-दूसरे का हाथ पकड़ा और सबके सामने कहा कि 'आज से हम परस्पर प्रेम करेंगे।' दोनों ने भूदान दिया। जो कंजूस कहलाता था, उसने भी दान दिया। फिर उनके मित्रों ने भी दान दिया।

हमने कहा: मैं दिन में लूटता हूँ, तुम रात में लूटते हो। लूटने में डरते क्यों हो? चोरी करने के लिए डरते क्यों हो? तुम अपने लिए तो चोरी कर नहीं रहे हो। भगवान् कृष्ण दूसरों के लिए चोरी करते थे। भागवत में कृष्ण की चोरी का वर्णन है। लोग उसे पाँच हजार साल से बड़े प्रेम से पढ़ते आ रहे हैं। कृष्ण ने बहुत मक्खन खाया, इसलिए वे मजबूत बने और कंस से टक्कर ले सके। यशोदा ने उनसे पूछा कि 'तुम मक्खन क्यों खाते हो?' तो बोले:

'तो क्या गोबर खाना चाहिए ? मैं अकेला नहीं खाता, अपने लिए चोरी नहीं करता।'

सारांश, चोरी की भी प्रशंसा होती है, बशर्ते वह दूसरे के लिए हो। इसलिए हम कहते हैं कि जहाँ हम दिन में लूट सकते हैं, वहाँ रात में लूटने की क्या जरूरत है ? प्रेम से दिन में लूट सकना ही कला है। जो काम कला से होता है, वह प्रेम से भी नहीं होता। इस वास्ते बाबा समझाता है, कला से काम करो। और इसी वास्ते बाबा सबको लूट सकता है।

साम्ययोग का अर्थ

बाबा जमीन लेकर क्या करता है ? क्या वह सिर्फ जमीन बटोर रहा है ? नहीं, वह तो जमीन की मालकियत मिटाना चाहता है। जैसे पानी, हवा और सूर्य-प्रकाश की मालकियत नहीं हो सकती, वैसे ही जमीन की भी मालकियत नहीं हो सकती। गाँव गाँव, घर-घर जाकर बाबा यही सुनाता है। लोग सुनते और दान देते हैं। कुछ लोग मोह के कारण नहीं भी देते। लेकिन ऐसा शख्स आज तक नहीं मिला, जिसने कहा हो कि 'आप जो कहते हैं, वह ठीक नहीं है।' हमारा दावा है कि हम गरीबों पर प्रेम करते हैं और अमीरों पर भी। जैसा कि तुलसीदासजी ने कहा है, 'यह राम के प्रेम की रीत है कि वह बड़े की बड़ाई और छोटे की छोटाई दूर करता है।' इसीलिए हम कहते हैं कि यह नयी बात हम नहीं बता रहे हैं। जो नीचे हैं, उन्हें ऊपर उठाना है और जो ऊपर हैं, उन्हें नीचे लाना है—दोनों को मिलाना है।

हिन्दुस्तान का हर किसान बाबा की यह बात समझता है। जिस खेत में टीले और गड्ढे हैं, उसमें फसल कैसे होगी ? इसलिए किसान खेत को समतल बना देता है। इसीको हम 'साम्ययोग' कहते हैं, पर ये लोग 'साम्यवाद'। किन्तु 'वाद' में प्रतिकार होता है और 'योग' में नहीं। 'साम्ययोग' का मतलब है : 'हर व्यक्ति अपनी शक्ति समाज को अर्पण करे और समाज की ओर से जो मिले, उसे प्रसाद के रूप में ग्रहण करे।'

सर्वोदय के आधार

अब हम सर्वोदय के आधार पर विचार करते हैं। मनुष्य का जन्म के साथ

ही तीन चीजों से सम्बन्ध आता है : पहला उसका शरीर है, जिसके आधार पर उसका सारा जीवन चलता है, जिसे वह अपना व्यक्तित्व कहता है। उसीके साथ मन, बुद्धि और इन्द्रियाँ भी आती हैं। यह उसका बाह्यरूप है। इसके अतिरिक्त उसका सम्बन्ध समाज के साथ भी आता है। उसमें उसके माता-पिता भी आते हैं। उनके साथ उसका सम्बन्ध स्वाभाविक तौर पर आता है। यानी एक तो उसका सम्बन्ध शरीर के साथ और दूसरा समाज के साथ आता है। शरीर और मन को हम अलग नहीं गिनते। शरीर सृष्टि का अंश है, इसलिए उसे हम सृष्टि में गिनते हैं। इनके अलावा इन दिनों एक चौथी चीज पैदा हुई है और वह है : सरकार। यानी मनुष्य का सम्बन्ध १. मन, २. समाज, ३. सृष्टि और ४. सरकार के साथ आता है।

सरकार कोई नैसर्गिक वस्तु नहीं, बनावटी चीज है। लेकिन आज हालत यह है कि जहाँ मनुष्य का जन्म हुआ, वहीं उस पर सरकार का अंकुश आ जाता है। सरकार की शक्ति इतनी व्यापक हो गयी है कि जीवन के सभी अंगों से उसका स्पर्श है। जन्म से लेकर मृत्यु तक उसका स्पर्श रहता है। इसलिए यद्यपि यह वस्तु कृत्रिम है, फिर भी इसके बारे में सोचना जरूरी हो जाता है। इन्हीं चार चीजों पर जीवन का सारा ढाँचा खड़ा है।

(१) अध्यात्म-विद्या मन का अंकुश

मनुष्य का अपना एक मन है। उसमें कई प्रकार के विकार और वासनाएँ होती हैं। कुछ अंशों में उनकी पूर्ति करनी पड़ती है; लेकिन वह कहाँ तक करनी है, यह सोचना पड़ता है। मनुष्य को भूख लगती और खाने की इच्छा होती है। पर वह अधिक खा लेता है, तो बीमार पड़ जाता है। अर्थात् खाने की वासना तृप्त होनी ही चाहिए, पर अत्यधिक खाना भी न चाहिए। विचार और जीभ को काबू में रखना चाहिए। इसीको हम 'अध्यात्म-विद्या' कहते हैं। इसका अर्थ यही है कि मनुष्य में समत्व रहना चाहिए। मनुष्य भोग करे, लेकिन अति न करे। वासना रखे, लेकिन वह भी अति न रखे। इस तरह बीच की हालत में रहने को 'योग' कहते हैं। जिस समाज में व्यक्ति को यह योग सधता है,

'तो क्या गोबर खाना चाहिए ? मैं अकेला नहीं खाता, अपने लिए चोरी नहीं करता।'

सारांश, चोरी की भी प्रशंसा होती है, बशर्ते वह दूसरे के लिए हो। इसलिए हम कहते हैं कि जहाँ हम दिन में लूट सकते हैं, वहाँ रात में लूटने की क्या जरूरत है ? प्रेम से दिन में लूट सकना ही कला है। जो काम कला से होता है, वह प्रेम से भी नहीं होता। इस वास्ते बाबा समझाता है, कला से काम करो। और इसी वास्ते बाबा सबको लूट सकता है।

साम्ययोग का अर्थ

बाबा जमीन लेकर क्या करता है ? क्या वह सिर्फ जमीन बटोर रहा है ? नहीं, वह तो जमीन की मालकियत मिटाना चाहता है। जैसे पानी, हवा और सूर्य-प्रकाश की मालकियत नहीं हो सकती, वैसे ही जमीन की भी मालकियत नहीं हो सकती। गाँव गाँव, घर-घर जाकर बाबा यही सुनाता है। लोग सुनते और दान देते हैं। कुछ लोग मोह के कारण नहीं भी देते। लेकिन ऐसा शख्स आज तक नहीं मिला, जिसने कहा हो कि 'आप जो कहते हैं, वह ठीक नहीं है।' हमारा दावा है कि हम गरीबों पर प्रेम करते हैं और अमीरों पर भी। जैसा कि तुलसीदासजी ने कहा है, 'यह राम के प्रेम की रीत है कि वह बड़े की बड़ाई और छोटे की छोटाई दूर करता है।' इसीलिए हम कहते हैं कि यह नयी बात हम नहीं बता रहे हैं। जो नीचे हैं, उन्हें ऊपर उठाना है और जो ऊपर हैं, उन्हें नीचे लाना है—दोनों को मिलाना है।

हिन्दुस्तान का हर किसान बाबा की यह बात समझता है। जिस खेत में टीले और गड्ढे हैं, उसमें फसल कैसे होगी ? इसलिए किसान खेत को समतल बना देता है। इसीको हम 'साम्ययोग' कहते हैं, पर ये लोग 'साम्यवाद'। किन्तु 'वाद' में प्रतिकार होता है और 'योग' में नहीं। 'साम्ययोग' का मतलब है : 'हर व्यक्ति अपनी शक्ति समाज को अर्पण करे और समाज की ओर से जो मिले, उसे प्रसाद के रूप में ग्रहण करे।'

सर्वोदय के आधार

अब हम सर्वोदय के आधार पर विचार करते हैं। मनुष्य का जन्म के साथ

ही तीन चीजों से सम्बन्ध आता है : पहला उसका शरीर है, जिसके आधार पर उसका सारा जीवन चलता है, जिसे वह अपना व्यक्तित्व कहता है। उसीके साथ मन, बुद्धि और इन्द्रियाँ भी आती हैं। यह उसका बाह्यरूप है। इसके अतिरिक्त उसका सम्बन्ध समाज के साथ भी आता है। उसमें उसके माता-पिता भी आते हैं। उनके साथ उसका सम्बन्ध स्वाभाविक तौर पर आता है। यानी एक तो उसका सम्बन्ध शरीर के साथ और दूसरा समाज के साथ आता है। शरीर और मन को हम अलग नहीं गिनते। शरीर सृष्टि का अंश है, इसलिए उसे हम सृष्टि में गिनते हैं। इनके अलावा इन दिनों एक चौथी चीज पैदा हुई है और वह है : सरकार। यानी मनुष्य का सम्बन्ध १. मन, २. समाज, ३. सृष्टि और ४. सरकार के साथ आता है।

सरकार कोई नैसर्गिक वस्तु नहीं, बनावटी चीज है। लेकिन आज हालत यह है कि जहाँ मनुष्य का जन्म हुआ, वहीं उस पर सरकार का अंकुश आ जाता है। सरकार की शक्ति इतनी व्यापक हो गयी है कि जीवन के सभी अंगों से उसका स्पर्श है। जन्म से लेकर मृत्यु तक उसका स्पर्श रहता है। इसलिए यद्यपि यह वस्तु कृत्रिम है, फिर भी इसके बारे मे सोचना जरूरी हो जाता है। इन्हीं चार चीजों पर जीवन का सारा ढाँचा खड़ा है।

(१) अध्यात्म-विद्या मन का अंकुश

मनुष्य का अपना एक मन है। उसमे कई प्रकार के विकार और वासनाएँ होती हैं। कुछ अंशों में उनकी पूर्ति करनी पड़ती है; लेकिन वह कहाँ तक करनी है, यह सोचना पड़ता है। मनुष्य को भूख लगती और खाने की इच्छा होती है। पर वह अधिक खा लेता है, तो बीमार पड़ जाता है। अर्थात् खाने की वासना तृप्त होनी ही चाहिए, पर अत्यधिक खाना भी न चाहिए। विचार और जीभ को काबू में रखना चाहिए। इसीको हम 'अध्यात्म-विद्या' कहते हैं। इसका अर्थ यही है कि मनुष्य में समत्व रहना चाहिए। मनुष्य भोग करे, लेकिन अति न करे। वासना रखे, लेकिन वह भी अति न रखे। इस तरह बीच की हालत में रहने को 'योग' कहते हैं। जिस समाज में व्यक्ति को यह योग सधता है,

वह समाज सुखी होता है। इसलिए सर्वोदय-समाज की शिक्षा में अध्यात्म-विद्या का प्रथम स्थान है।

हम स्थितप्रज्ञ के लक्षण पढ़ा करते हैं। उनमें लिखा है कि स्थितप्रज्ञ वही है, जो अपनी इन्द्रियों पर अंकुश रखता हो, ठीक वैसे ही, जैसे कछुवा खतरे के समय इन्द्रियों को अंदर खींच लेता है और जहाँ खतरा न हो, वहाँ उन्हें खुला छोड़ देता है। यह कोई असाधारण शक्ति नहीं है। अगर बचपन से तालीम मिले, तो मनुष्य के लिए यह चीज स्वाभाविक हो जायगी। शीत-निवारण के लिए अग्नि के कितने नजदीक बैठना चाहिए, यह किसीको बताने की जरूरत नहीं पड़ती। यह कोई बहुत बड़ी चीज यानी कृत्रिम वस्तु नहीं है, जिसके लिए या जिसकी प्राप्ति के लिए कोशिश करनी पड़े, क्योंकि उसमें भला है, यह स्पष्ट है।

जहाँ कृत्रिम समाज-रचना होती है, वहाँ बच्चों को माता-पिता बुरी तालीम देते हैं। ऐसा कोई बच्चा पैदा नहीं हुआ, जिसे पहले से ही मिर्च खाने की रुचि हो। मधुर रस सभी बच्चों को प्रिय होता है। तीखा और खारा उन्हें अच्छा ही नहीं लगता। गीता में यही तालीम दी गयी है कि 'तीखा और खारा न खाओ, मधुर रस का सेवन करो।' परन्तु माता-पिता बच्चों को तीखा और खारा खाने की आदत डालते हैं। बच्चे को पहले-पहल थोड़ा तीखा खिलाया जाता है, तो फौरन वह 'ना' कह देता है। फिर भी वे कहते हैं कि थोड़ा-थोड़ा खाते जाओ। इस तरह आदत पलट जाती है। यहाँ तक कि कुछ दिनों बाद बच्चे को बिना मिर्च का भोजन अच्छा ही नहीं लगता। तब गीता की तालीम कठिन मालूम होती है। यह मिसाल इसलिए दी कि गीता के द्वारा हमें जो कुछ सिखाया जा रहा है, वह कठिन नहीं। गलत तालीम के कारण बुरी आदतें डाली जाती हैं, इसलिए वह हमें कठिन मालूम होता है।

तम्बाकू : आंध्राकू

आंध्र प्रदेश में बच्चों में बीड़ी पीने की आदत डाली जाती है, यह हमने देखा है। हमने यह भी देखा कि यहाँ की उत्तम-से-उत्तम जमीन में तम्बाकू बोयी जाती है। इतना ही नहीं, जब हमारे स्वागत के लिए लोग आते हैं, तो मुँह में बीड़ी

रखे रहते हैं। उन्हें यह भान ही नहीं रहता कि वे यह कोई खराब काम कर रहे हैं, क्योंकि माता-पिता बचपन से उन्हें यही सिखाते हैं। आन्ध्र में हमने तम्बाकू के खेत इतने देखे कि आखिर उसे 'आन्ध्राकू' नाम दे दिया। यहाँ के किसानों को सारा जीवन रस तम्बाकू से ही मिलता है।

यों देखा जाय, तो स्वाभाविक रूप से बीड़ी पीने की प्रवृत्ति कभी नहीं होती। उसमें बदबू आती है। नाक में धुआँ जाता है, तो 'सफोकेशन' होता है, दम घुटने लगता है। बच्चा सुगंधित पुष्प देखे, तो स्वाभाविक है कि वह उसे लेने के लिए हाथ फैलायेगा। पर तम्बाकू में ऐसी सुगंध नहीं कि बच्चे का ध्यान एकदम उधर खिंच जाय। लेकिन व्यसन लगता है, तो उसके बिना चैन नहीं पड़ता। कुछ लोग हमने ऐसे भी देखे हैं, जिन्हें चिंतन करने की जरूरत होती है, तो फौरन सिगार सुलगा देते हैं और उस अग्नि-ज्योति के प्रकाश में उनका चिंतन शुरू होता है!

इन्द्रियों का नियमन

सारांश, जब कोई व्यसन लग जाता है, तो उसे छोड़ना मुश्किल होता है। बुरी आदतों के कारण संयम रखते नहीं बनता; नहीं तो वह मामूली बात है। जहाँ खतरा हो, वहाँ इन्द्रियों को समेट लेना और जहाँ न हो, वहाँ उन्हें खुला छोड़ना कछुवा जानता है, तो मनुष्य उसे क्यों न जानेगा? मनुष्य के लिए यह कोई कठिन वस्तु नहीं कि जितनी भूख हो, उतना ही खाये, प्यास लगने पर पानी पीये। न तो ज्यादा खाये और न ज्यादा निद्रा ले। निद्रा कम भी नहीं होनी चाहिए। क्या ये कठिन बातें हैं, जिनके लिए हमें अभ्यास करना पड़ेगा? किन्तु गलत तालीम दी जाती है, इसीलिए संयम की यह विद्या बड़ी भारी तपस्या मालूम होती है। पर सर्वोदय-विचार में यही तत्त्व मुख्य है कि अपने मन को वश में और इन्द्रियों को काबू में रखना चाहिए।

आन्ध्र-देश में हम लोगों को मौन-प्रार्थना के लिए समझाते हैं, तो वे अत्यन्त शान्ति से मौन-प्रार्थना करते हैं। हम इसे बड़ी शक्ति मानते हैं। इसमें संयम की बहुत भारी शक्ति भरी पड़ी है। इसके लिए शिक्षण में योजना होनी

चाहिए। यह जब होगा, तब संयम कठिन नहीं मालूम होगा और मनुष्य की उन्नति होगी। इसका नाम 'अध्यात्म-विद्या' है। इसमें मन पर और इन्द्रियों पर अंकुश रखा जाता है। यह इच्छाओं को मारने की नहीं, उनका परिमित और सही-सही उपयोग करने की बात है। जैसे घुड़सवार अंकुश रखता है, तो घोड़ा अच्छा काम देता है, वैसे ही इन्द्रियाँ हमें काम देंगी। वे हमारी बड़ी शक्ति हैं। उन्हें वश में रखने की विद्या हासिल होनी चाहिए। यह मनुष्य का एक प्रकार का कार्य है।

(२) नयी समाज-रचना बनाम हितों में विरोध

मनुष्य का दूसरा कार्य समाज के लिए होता है। समाज में अनेक व्यक्ति रहते हैं, उनमें विरोध न आये, ऐसी ही समाज-रचना करनी होगी। एक के सच्चे हित के विरुद्ध दूसरे का सच्चा हित हो ही नहीं सकता। यह आसान बात है, कठिन नहीं। जब हम समाज में रहते हैं, तो एक-दूसरे के लिए रहते हैं। इसलिए हमें एक-दूसरे का हित देखना चाहिए। हित टकरायेंगे, तो समाज का हित न होगा। एक मनुष्य विद्वान् बनता है, तो सारे समाज को लाभ होता है, उससे कोई हानि नहीं है। एक का आरोग्य सुन्दर रहता है, तो किसीको नुकसान नहीं होता। इस तरह सोचेंगे, तो एक के हित में दूसरे का हित है, यह बात ध्यान में आयेगी। परन्तु आज कृत्रिम समाज-शास्त्र आया है, जिसमें कहा जाता है कि एक-दूसरे के हित परस्पर विरुद्ध होते हैं। जिस तरह गलत शिक्षण से बुरी आदतें आयी हैं, उसी तरह गलत समाज-शास्त्र से हितों में परस्पर विरोध आ गया है। ऐसी हालत में सबके हितों का रक्षण करना कठिन हो गया है।

विरोधी संघों का जन्म

आज भाषावार प्रांत-रचना हो रही है। भिन्न-भिन्न प्रांतवाले सोच रहे हैं कि एक के हित के विरुद्ध दूसरे का हित है। आश्चर्य की बात है कि एक प्रांत के कुल लोगों की राय एक है और दूसरे प्रांत के कुल लोगों की राय उसके विरुद्ध। यह इसीलिए हुआ कि समाज-शास्त्र ने हमें सिखाया है कि परस्पर हितों में विरोध है। आज हितों की रक्षा के लिए अलग-अलग संघ बनाये जाते

हैं। आखिर अखिल भारतीय विद्यार्थी-संघ किसलिए है? इसीलिए कि विद्यार्थी समझते हैं कि शिक्षकों के हितों के विरुद्ध उनका हित है और उसे सँभालने के लिए वे अलग संघ बनाते हैं। शिक्षकों के हित के विरुद्ध विद्यार्थियों का हित और विद्यार्थियों के हित के विरुद्ध शिक्षकों का हित! अब एक ही कमी है और वह है, अखिल भारतीय बाप-संघ और अखिल भारतीय बेटा-संघ। अगर ये बन जायँ, तो संघटना पूर्ण होगी।

पत्नी बनाम पति

इंग्लैण्ड में पहले स्त्रियों को वोट देने का अधिकार नहीं था। वहाँ पुरुषों के हितों के विरुद्ध स्त्रियों का हित और स्त्रियों के हितों के विरुद्ध पुरुषों का हित हो गया। पति-विरुद्ध पत्नी का 'क्लास स्ट्रगल' (वर्ग-संघर्ष) शुरू हो गया। पत्नियों को अपने हक के लिए पति के विरुद्ध लड़ना पड़ा। पार्लमेण्ट में जाकर अंडे फेंक-फेंककर उन्हें मारना पड़ा। आखिर पतिदेव को पत्नी की बात कबूल करनी पड़ी और उन्हें वोट का अधिकार देना पड़ा। किन्तु अपने देश में इस तरह का कोई भेद प्रकट नहीं हुआ। हमें यह कल्पना भी नहीं आ सकती कि हमारे माता और पिता में इस तरह की लड़ाई हो। लेकिन वहाँ इस तरह की समस्या खड़ी हुई और वहाँ की स्त्रियों को संघर्ष करना पड़ा। इस तरह परस्पर हित में विरोध की कल्पना कर यह कृत्रिम समाज-शास्त्र बना।

हम बुद्धि से भी हारे

यही विरोध मिटाने के लिए राजनीति भी बनी। वह कहती है कि सारा कारोबार बहुमत के अनुसार चले। वह मतों की गिनती करने लगी : '५१ पक्ष में हैं और ४९ विरोध में, तो ५१ के अनुसार काम चलना चाहिए।' हमने यहाँ तक देखा है कि एक जगह खून के केस में पाँच में से तीन जजों ने कहा कि 'अभियुक्त दोषी है, उसे फाँसी देनी चाहिए' और दो जजों ने कहा कि 'वह निर्दोष है', तो तीन का बहुमत हो गया और गुनहगार को फाँसी दी गयी। इस तरह बहुमत के आधार पर सब काम करना चाहिए और अल्पमत को बहुमत के अनुसार चलना चाहिए। बहुमत का यह विचार पश्चिम ने खोज निकाला है और चूँकि यहाँ अंग्रेजी-राज था, इसलिए उसे हमने ले लिया। हम लोग उनके समक्ष बुद्धि से भी

पराजित हो गये। हम यह नहीं कहते कि पश्चिम की अच्छी चीज का अनुकरण नहीं करना चाहिए। और यह भी नहीं कहते कि अच्छी चीज पश्चिम में नहीं है। किन्तु इतना अवश्य कहेंगे कि यह अक्ल जो हमने उधर से ली, वह लेने लायक नहीं है।

चुनाव का विषवृक्ष

उड़ीसा के कोरापुट जिले में ६०० ग्राम दान में मिले हैं। उतने गाँवों ने कुल जमीन का दान दिया है। जिसके पास पचीस एकड़ जमीन थी, उसे पाँच एकड़ जमीन मिली है और यह उसने खुशी से ली। जिसके हिसाब में जितनी जमीन आयी, उतनी वहाँ के लोगों ने ले ली, क्योंकि उन लोगों को समझाया गया है कि जमीन सबकी है। दिलों में कोई विरोध नहीं है। यह आधुनिक समाजशास्त्र और आधुनिक अर्थ-शास्त्र वे लोग जानते ही नहीं। परंतु गोपबाबू के सामने आज एक समस्या है कि 'अभी चुनाव आ रहा है। भिन्न-भिन्न दलों के लोग इन गाँवों में आयेंगे और अपने-अपने लिए वोट माँगेंगे। मान लीजिये कि एक गाँव ने एक पार्टी को वोट दिया और दूसरे गाँव ने दूसरी पार्टी को, तो उन गाँवों में विरोध पैदा हो जायगा। पार्टीवाले लोग ग्राम-हित और जन-हित नहीं सोचते।'

यह जो चुनाव होता है, उसका अपना अलग धर्म-विचार है। उसके तीन सिद्धान्त हैं: आत्मस्तुति, परनिन्दा और मिथ्या-भाषण। अगर गाँव में इसके कारण फूट पड़ेगी, तो किया-कराया सारा काम मिट्टी में मिल जायगा। आग लगाना बहुत आसान है, पर बुझाना बहुत कठिन। भागवत में एक कहानी है कि गोकुल में आग लगी, तो भगवान् सारी अग्नि पी गये। यहाँ आग लगानेवाले लोग बहुत हैं। वे चुनाव के काम के लिए गाँव-गाँव जायेंगे और आग लगायेंगे। बाद में उस गाँव का क्या होगा, यह वे न सोचेंगे। इसलिए ग्रामसेवा करनेवालों के सामने सचमुच आज यह बड़ी समस्या है कि ग्रामों का रक्षण कैसे करें? जो विष-बीज लाकर बोया गया है, उससे कैसे बचें?

पंच बोले परमेश्वर

हमारे पास इसका उपाय था। हम कहते थे: 'पंच बोले परमेश्वर'। किसी

भी काम में पाँचों पंचों की राय एक होनी चाहिए। उनकी एक राय से ही काम चलता था। किन्तु अब जो नया समाज-शास्त्र आया है, वह कहता है : 'चार बोले परमेश्वर'; 'तीन बोले परमेश्वर।' चार विरुद्ध एक या तीन विरुद्ध दो, तो प्रस्ताव पास, यह जो चला, उसने सारी दुनिया को आग लगा दी।

नयी समाज-रचना

इसलिए हमें एक नयी समाज-रचना करनी है, जिसमें यह विचार होगा कि हितों में परस्पर कोई विरोध नहीं। यह रचना कोई कठिन नहीं। फिर भी आज तक जो गलत विश्वास चला, उसी कारण इस सीधी-सी बात को कठिन समझा जाता है। कोरापुट जिले के अपढ़ लोग भी समझते हैं कि हितों में परस्पर विरोध नहीं। बिल्कुल सीधी-सरल वस्तु है, पर आज वह टेढ़ी बनी है। आज इस अल्पसंख्या और बहुसंख्या के विचार का बड़ा भयंकर परिणाम हो रहा है। इसमें करोड़ों रुपये खर्च हो रहे हैं, पर गरीबों को कोई स्थान नहीं। जातिभेद तो इतना बढ़ गया कि कम्युनिस्टों में भी वह आ गया। उन्होंने भी एक दूसरा भेद माना है, श्रीमान् विरुद्ध गरीब। उतने से उनका निभ जाता है। हमें किसीने सुनाया कि 'कामा' और 'रेड्डी' मिलकर 'कामरेड' होता है। कम्युनिस्टों में कामा और रेड्डी विरुद्ध होते हैं। कितनी भयानक बात है कि जिस जातिभेद पर राजा राममोहन राय से लेकर गांधी तक सतत प्रहार होता रहा और जो मरने की तैयारी में था, वही इस चुनाव के कारण, अल्प-संख्या और बहु-संख्या के विचार के कारण बढ़ रहा है। इसे 'डेमॉक्रेसी' (लोकतंत्र) का वरदान (!) समझिये। इसलिए हमें एक नये सिरे से रचना करनी होगी, नया समाज-शास्त्र बनाना होगा। जैसा शिक्षण-शास्त्र होता है, वैसा ही समाज-शास्त्र बनता है। इसलिए शिक्षण-शास्त्र में भी परिवर्तन करना होगा।

सृष्टि से मानव का संबंध कैसा हो ?

प्रश्न है कि सृष्टि के साथ मानव का संबंध किस प्रकार का होना चाहिए ! कुछ लोग मानते हैं कि मानव को सृष्टि के साथ संघर्ष करना पड़ता है। वे संघर्षवादी हैं। उनमें कुछ चिन्तनशील हैं। उन्होंने नया शास्त्र ढूँढ़ रखा है।

कहते हैं कि 'मानवों के बीच संघर्ष चलेगा, उसके बाद कुछ व्यवस्था होगी और फिर नवनिर्माण तथा प्राचुर्य या समृद्धि होगी। उसके बाद राज्य-व्यवस्था मिटेगी और संघर्ष मिट जायगा। वे कहते हैं कि जब मानवों के बीच का संघर्ष मिट जायगा, तो मानव का सृष्टि के साथ जोरों से संघर्ष शुरू हो जायगा। किन्तु सोचने की बात है कि सृष्टि कब पैदा हुई, मानव कब पैदा हुआ और कहाँ से पैदा हुआ ? सृष्टि कब पैदा हुई, यह कहना ही असम्भव है। सृष्टि अनादि और अनंत है। रात को आप देखते हैं कि कितने तारे चमकते हैं। इतनी महान् विशाल सृष्टि है। तो, वह कब पैदा हुई होगी, इसका सवाल ही नहीं। फिर भी हमारी यह पृथ्वी करीब-करीब दो सौ करोड़ साल पहले पैदा हुई और मनुष्य की उत्पत्ति मुश्किल से पचास लाख साल पहले हुई होगी, ऐसा मान सकते हैं। जब मानव इतना आधुनिक है और सृष्टि इतनी प्राचीन है, तो उसके साथ वह संघर्ष क्या करेगा ? क्या बच्चा भी कभी माता के साथ संघर्ष करता है ?

संघर्ष का प्रश्न ही नहीं

माता बच्चे को प्रेम से स्तनपान कराती है और लड़का मुख से उसका दूध पी रहा है। इस पर अगर कोई कहे कि बच्चा स्तन के साथ संघर्ष कर रहा है, तो इस कल्पना में हम कोई अक्ल नहीं देखते। हम समझते हैं कि हमें सृष्टि की सेवा करनी चाहिए। सृष्टि हमें दूध पिलाती है। जैसे माता स्तनपान से बच्चे का पोषण करती है, वैसे ही सृष्टि के स्तनपान से मनुष्य का पोषण हो रहा है। हम पृथ्वी को खोदते हैं। हमें जो पानी मिलता है, वह दूध ही है, जिससे हमारा पोषण होता है। इसलिए हम तो यही समझते हैं कि हमें सृष्टि की सेवा करनी है। संघर्षवादी इसे 'संघर्ष' कहते हैं। यह शब्दभेद नहीं, विचारभेद है। परिणाम-स्वरूप कुछ लोग इस नतीजे पर आये हैं कि आज की सृष्टि मानव की संख्या के पोषण के लिए असमर्थ है। वे यह नहीं समझते कि माता जितने बच्चों को जन्म देती है, उतनों का पोषण करती है, बशर्ते बच्चे उसकी सेवा करें।

दशमुख का जन्म !

यह एक अजीब बात है कि हमारे देश में जनसंख्या बढ़ रही है, तो लोगों को

उसका भार मालूम होता है। सेनापति को कभी यह शिकायत नहीं होती कि मेरी सेना मे बहुत सिपाही हैं। किसी कुटुम्ब के लोग कभी यह कहते दिखाई देते हैं कि 'हमारी बड़ी दुर्दशा है, क्योंकि एक कमानेवाला और दस खानेवाले हैं', तो हमें बड़ा आश्चर्य लगता है। अगर परिवार में दस खानेवाले मुँह हैं और सिर्फ दो ही हाथ काम करनेवाले हैं, तो मुझे शंका होती है कि क्या इस परिवार में दशमुख (रावण) पैदा हो गया है ? हम पूछते हैं कि घर में अगर दस मुँह हैं, ता बीस हाथ भी हैं या नहीं ? परन्तु बीस हाथ काम नहीं करते, यह किसका दोष है, ईश्वर की सृष्टि का ? अगर ईश्वर ने हमें दो मुँह और एक हाथ दिया होता, तब तो शिकायत की बात भी होती, पर उसने वैसा नहीं किया। उसने हमें दो लम्बे-लम्बे हाथ दिये हैं, तब शिकायत कहाँ रही ?

हम कहना चाहते हैं कि पृथ्वी को प्रजा का नहीं, पाप का भार होता है। पाप से प्रजा बढ़ी, तो अवश्य भार होगा। प्रजा पाप से भी बढ़ सकती है और पुण्य से भी। वह पाप से घट सकती है और पुण्य से भी। चाहे प्रजा बढ़े या घटे, अगर पुण्य होगा, तो वह भार नहीं होगा और पाप होगा, तो भार होगा। उससे हानि होगी। ब्रह्मचर्य से प्रजा घटती है, तो लाभ है और पुरुषहीनता से घटती है, तो हानि है। संयम से घटी, तो लाभ होगा और कृत्रिम उपायों से घटी, तो हानि। पुण्य से बढ़ती है, तो लाभ और केवल स्वैराचार से बढ़ती है, तो हानि। हमारा यह सिद्धान्त है कि सृष्टि मे जो प्राणी और जन्तु हैं, उनके पोषण का इन्तजाम सृष्टि मे ही है। लेकिन सृष्टि की सेवा के लिए हमें भगवान् ने जो दो हाथ दिये हैं, उनका हमें पूरा उपयोग करना चाहिए।

अनीतिमय उपाय

इन दिनों कृत्रिमता से कुटुम्ब नियोजन की बात निर्लज्जतापूर्वक की जाती है। लोग सोचते नहीं कि उससे अनीति का कितना प्रचार होगा, आत्मसंयम की शक्ति का कितना ह्रास होगा और सारे जीवन में कितनी पराक्रमहीनता आयेगी ! इन सब लोगों क एक ऋषि हो गया है, जिसका नाम है 'माल्थस'। उसका सिद्धान्त है कि 'अगर प्रजा या सन्तान ज्यादा बढ़ती है, तो उसके पोषण के

लिए जमीन समर्थ न होगी।' फिर एटम और हाइड्रोजन बम बन रहे हैं, तो रोते क्यों हो ? अच्छा ही है, लोग मरेंगे। बहुत कम लोग जीयेंगे, तो दुःख क्यों ?

विज्ञान से विरोध नहीं

सोचने की बात है कि हमें पराक्रमशील बनना है, कर्मशील बनना है, परिशोधक वृत्ति रखनी है। इसके लिए अगर विज्ञान बढ़ाने की जरूरत हो, तो बढ़ाओ। सृष्टि का विज्ञान जितना बढ़ेगा, उतनी ही सृष्टि कारगर होगी। इसलिए हम विज्ञान का बहुत उत्कर्ष चाहते हैं। कुछ लोगों को ऐसा लगता है कि बाबा विज्ञान नहीं चाहता, वह सिर्फ चरखा बढ़ाना चाहता है। लेकिन वे हमें गलत समझे हैं। हम चरखा भी चलाना चाहते हैं और विज्ञान भी। लोग कहते हैं, 'हवाई जहाज की गति बहुत बढ़ी है, पाँच घंटे में दिल्ली जा सकते हैं।' हम पूछते हैं कि आपका विज्ञान क्या कर रहा है ? क्योंकि आप ही कहते हैं कि पाँच-पाँच घंटे बैठे रहने से तकलीफ होती है। उसमें ठीक सुधार करो और ऐसा इंतजाम करो कि हवाई जहाज में अच्छी तरह बैठकर सूत कात सकें। इतना भी नहीं हो सकता, तो आपका विज्ञान किस काम का ?

ज्ञान और विज्ञान दो पंख

जैसे आत्मा का ज्ञान मदद करता है, वैसे ही सृष्टि का विज्ञान भी हमारी मदद करेगा। ज्ञान और विज्ञान, दोनों की जरूरत है। जैसे दो पंखों पर पंछी उड़ता है, वैसे ही मनुष्य-जीवन के ये दो पंख हैं। मानव-समाज पहले से ही आत्मज्ञान और विज्ञान के लिए प्रयत्न करता आया है। हम चाहते हैं कि विज्ञान खूब बढ़े, लेकिन यह भी चाहते हैं कि हममें उसका ठीक ढंग से उपयोग करने की बुद्धि हो। अग्नि का उपयोग हम जरूर कर सकते हैं, लेकिन वह रसोई बनाने में किया जाय, किसीके मकान में आग लगाने के लिए नहीं। लोग कहते हैं कि एटम का युग आ रहा है और उस युग में उसका उपयोग कल्याणकारी काम में हो सकता है। पर तब गाँव का कारोबार कैसे चलेगा ? हम कहते हैं कि हम भी इस युग का स्वाद ले लें। जो काम हम उससे ले सकते हैं, वह लेंगे।

अणुशक्ति विकेन्द्रित कर गाँव-गाँव में उसका उपयोग किया जायगा। इसलिए हमें विज्ञान की शोधों के प्रति आदर है।

बिजली का उपयोग

हम बिजली का उपयोग करने के लिए राजी हैं, लेकिन उसका विनियोग किस तरह किया जायगा, इसका महत्त्व है। यदि चंद लोगों के हाथ शक्ति दे दें, तो वह शोषण का साधन बनेगी। आजकल यही हो रहा है और इसीसे हमारा विरोध है। बिजली आयेगी भी, तो पहले बड़े शहरों में, उसके बाद देहातों में। जो दूर के देहात हैं, उनमें आयेगी ही नहीं। उसका सबको समान लाभ न मिलेगा। उसकी पूँजी श्रीमानों के पास रहेगी, गरीबों के पास नहीं। परिणामस्वरूप बिजली की शक्ति गरीबों के नहीं, शोषण के काम आयेगी। हम ऐसा नहीं चाहते। केवल प्रकाश के रूप में गरीबों को बिजली मिलेगी, तो उसका परिणाम यही होगा कि रात में जागने की कोशिश होगी। इससे आँखें बिगड़ेंगी और जंतु सतायेंगे। गरीबों के लिए उसका उपयोग करीब-करीब शून्य होगा।

कहते हैं कि हम बिजली सस्ती देंगे और उसके लिए हरएक को पूँजी देंगे। मतलब यह कि इसका उपयोग पूँजीवाले ही कर सकेंगे। गरीबों को उससे कोई फायदा नहीं होगा। अगर आप उसके साधन सबको देते हैं, उसका उपयोग सार्वजनिक होता है, तो उसका लाभ सबको मिलता है। इतना करने को आप राजी हैं, तो बिजली का उपयोग करने के लिए बाबा भी राजी है और वह उसे चाहता है। हम विज्ञान का अत्यन्त उत्कर्ष चाहते हैं। वह इसलिए कि हम अहिंसावादी हैं, हिंसावादी नहीं।

हिंसा और विज्ञान

किन्तु विज्ञान की शादी अगर हिंसा के साथ होगी, तो मानव का सर्वनाश हो जायगा। इसलिए विज्ञान के साथ अहिंसा का ही विवाह होना चाहिए। अहिंसा और विज्ञान के संयोग से पृथ्वी पर स्वर्ग उतर आयेगा। हिंसा और विज्ञान के संयोग से मानव का खात्मा हो जायगा। उपयोग के दूसरे साधन हम जरूर बनाना चाहते हैं, लेकिन हवाई जहाज बनेगा, तो भी बाबा पैदल चलना

बन्द नहीं करेगा और जहाँ चाहेगा, वहाँ जायगा। आजकल लोगों ने पैदल चलना बन्द कर दिया है। कहते हैं, हम समय बचाना चाहते हैं। हम कहते हैं कि अगर आठ-दस मील चलने की बात है, तो पैदल चलना चाहिए। अगर बहुत दूर जाना है, तो वाहन का उपयोग कर सकते हैं। हम पूछना चाहते हैं कि आप समय को बचाना चाहते हैं या खुद को ?

कुछ लोग कहते हैं कि हम पैदल नहीं चलेंगे और हमने निश्चय किया है कि मोटर में बैठकर जल्दी काम खतम करेंगे। पहले जो काम लोग पाँच साल में करते थे, वह हम पाँच मिनट में करेंगे। ऐसे लोगों से हम कहते हैं कि ईश्वर अगर यह कहे कि 'मैं भी ऐसा ही चाहता हूँ, इसलिए सौ के बदले पचास साल में ही तुम उठो', तो क्या तुम्हें मंजूर होगा ? ईश्वर का नियम है कि जो जैसा काम करेगा, वैसा ही वह उसके साथ बरतेगा। इसलिए दीर्घायु बनने के लिए हमें रात को सिनेमा नहीं देखना चाहिए, स्कूल पैदल जाना चाहिए, धोबी से कपड़े नहीं धुलाने चाहिए और रात को निःस्वप्न नींद लेनी चाहिए। हम चाहते हैं कि विज्ञान बढ़े, अहिंसा और अक्ल भी बढ़े। अहिंसा और अक्ल को 'आत्मज्ञान' कहते हैं। इस आत्मज्ञान के साथ विज्ञान का योग होना चाहिए।

नकल का उपयोग

एक थे पिताजी। वे जहाँ कहीं जाते, साइकिल पर जाते थे। उनके लड़के ने उनका अनुकरण करना शुरू कर दिया। पैदल चलने के लिए कितना ही कहा गया, पर वह नहीं माना। पिता ने पूछा : 'सदा-सर्वदा यह तू क्या करता है ? भगवान् ने पाँव क्यों दिये हैं ?' लड़के ने जवाब दिया : 'साइकिल चलाने के लिए !' पिता ने कहा : 'यत्र पाँव तत्र साइकिल, इस तरह करोगे, तो कैसे चलेगा ?' हम कहते हैं, पाँव की जगह पाँव चलने चाहिए और साइकिल की जगह साइकिल। हवाई जहाज की जगह हवाई जहाज और मोटर की जगह मोटर चलनी चाहिए।

लोग हमसे पूछते हैं कि जमीन पर क्यों घूमते हो ? हम कहते हैं कि अगर हम हवा में घूमते, तो हमें हवा ही मिलती। पर जमीन पर चलते हैं, इसलिए

जमीन मिलती है। इसीका नाम है 'अक्ल'। लोग पूछते हैं, पैदल चलने से क्या होता है? हम कहते हैं: जिस काम के लिए जो करना है, वह हम करते हैं। हमें लोगों के साथ संपर्क रखना है, उनकी परिस्थिति समझ लेनी है, इसलिए हम पैदल ज्यादा घूमते हैं। उससे हमें लोगों का प्रेम और उसके परिणामस्वरूप जमीन मिलती है। हम बिना प्रेम के जमीन नहीं चाहते।

साधनों का उचित उपयोग

हमें यह अक्ल होनी चाहिए कि किस औजार का उपयोग किस तरह किया जाय। 'उपकरण' का महत्त्व 'करणों' से ज्यादा बढ़ाना नहीं चाहिए। करण हैं, इन्द्रिय और उपकरण हैं, साधन। पाँव से साइकिल का महत्त्व और आँखों से चश्मे का महत्त्व बढ़ा, तो कैसे चलेगा? चश्मे का महत्त्व है, पर वह अपनी जगह पर। यह मत समझिये कि यह बाबा खुद तो विद्वान् बन गया और अब हमारा चश्मा छीनना चाहता है। चश्मा न लगाना अच्छा ही है। एक था बाप और एक था उसका बेटा। बाप चश्मा लगाकर पढ़ता था, बेटे की भी पढ़ने की इच्छा हुई। पढ़ना तो आता था नहीं, फिर भी एक दिन बाप का चश्मा लेकर पढ़ने लगा। उसकी यह कल्पना थी कि केवल आँख से पढ़ा नहीं जाता। सारांश, यह सारा विवेक, सारी अक्ल हमें होनी चाहिए कि किस तरह किस औजार का उपयोग हो।

लोग पूछते हैं कि आप ट्रेक्टर का उपयोग क्यों नहीं करते? हमारा कहना है कि उसमें दो बड़ी कमियाँ हैं। हम खेत में ज्वार बोते हैं, तो कड़बी और ज्वार, दोनों मिलते हैं। आपका ट्रेक्टर कड़बी खाता नहीं और खाद देता नहीं, पर मेरा बैल दोनों काम करता है। आपके ट्रेक्टर को 'मोबिल ऑइल' देना पड़ता है और खाद के लिए सिंदरी की शरण जानी पड़ती है। इसके अलावा ट्रेक्टर हिन्दुस्तान में होता नहीं। उसके लिए दाम भी ज्यादा देने पड़ते हैं। अमेरिकन लोग बुद्धिमान् हैं, इसलिए ट्रेक्टर का उपयोग करते हैं और हम बेवकूफ हैं, इसलिए मरते हैं। अमेरिका में हर मनुष्य के पीछे बारह एकड़ जमीन है, तो यहाँ हर मनुष्य के पीछे मुश्किल से आधी एकड़। अभी हम पूर्व और पश्चिम

गोदावरी जिलों में घूम आये। वहाँ प्रतिमील पन्द्रह हजार जनसंख्या है। ऐसी जगह हाथ से ही खेती होनी चाहिए। सारांश, जहाँ बहुत खेती है, वहाँ ट्रैक्टर का उपयोग हो और जहाँ थोड़ी खेती है, वहाँ बैल का उपयोग हो।

एक बात और! अमेरिकावाले ट्रैक्टर का उपयोग करते हैं, तो वे यह भी कहते हैं कि हम गाय को पीयेंगे और बैल को खायेंगे। पर आप बैलों को खाने को राजी नहीं। इधर आपने गोरक्षण की मूर्खता भी की है और उधर ट्रैक्टर भी चाहते हैं। ट्रैक्टर के उपयोग के साथ बैलों को खाने का भी मुहूर्त (प्रारम्भ) आपको करना होगा, नहीं तो बड़ी आपत्ति आ जायगी। ट्रैक्टर और बैल, दोनों के लिए आपको खर्च करना होगा। इसलिए अमेरिका के औजार हमारे यहाँ वहीं चल सकते हैं, जहाँ जंगल हों।

यंत्र हमारे हाथ में हो

हम ट्रैक्टर से प्रेम रखते हैं, द्वेष नहीं। हम किसी यंत्र को इतना समर्थ नहीं मानते कि उससे द्वेष करना पड़े। यंत्र नाचीज है। लेकिन उसका जहाँ उपयोग करना चाहिए, वहीं कीजिये। एक देश में जो यंत्र तारक है, वही दूसरे देश में मारक साबित हो सकता है। एक ही यंत्र एक देश में, एक काल में तारक, तो दूसरे काल में मारक भी हो सकता है। इस पर विचार कर यदि हम साधनों का उपयोग करें, तो ठीक है। उनका उपयोग सृष्टि की सेवा में करना चाहिए।

हमें अन्न खूब बढ़ाना चाहिए। यह मैं आधुनिक शास्त्र नहीं बता रहा हूँ। उपनिषद् में कहा गया है: 'यया कया च विधया अन्नं बहु प्राप्नुयात्'—जिस किसी विधि से हो, अन्न खूब बढ़ाओ। प्लानिंग करनेवालों के लिए हम कोरा कागज दे देते हैं। जिस किसी भी विधि से हो, अन्न बढ़ाओ, यह आदेश हमारे गुरु का है। हम यंत्र से डरते नहीं। हम तो यही चाहते हैं कि यंत्र हमारे हाथ में रहे, हम यंत्र के हाथ में नहीं।

श्रम-विभाजन

आजकल लोगों ने एक तत्त्वज्ञान निकाला है, जिसे वे 'श्रम-विभाजन' कहते हैं। उनका कहना है कि एक ही मनुष्य दस-बीस काम करेगा, तो उसकी गति

और क्षमता न बढ़ेगी। इसलिए एक मनुष्य को जिंदगीभर एक ही काम करना चाहिए, तभी वह कुशल होगा। हम जेल में थे, तो एक बड़ा कुशल कारीगर हमारे साथ था। जो रोटियाँ हमें वहाँ मिलती थीं, वे तौलकर मिलती थीं। कारीगर से कहा गया था कि हर रोटी दस तोले की तुली हुई होनी चाहिए। यह काम उसने डेढ़-दो साल किया। वह गुँदा हुआ आटा हाथ में लेता और उसकी गोल लोई तोड़ तराजू में डालता जाता। तराजू की तरफ देखे बगैर ही वह ऐसा कर लेता था; क्योंकि उसके हाथ को वैसी आदत ही हो गयी थी। वह मुँह से 'विष्णु सहस्रनाम' जपता था। मैंने उससे पूछा कि "तुम 'सहस्रनाम' क्यों जपते हो?" उसने कहा कि "मुझे दस साल की सजा है। वह उसकी कृपा से कुछ कम हो जायगी।" मैंने पूछा कि "तुम तराजू की तरफ देखते क्यों नहीं?" उसने कहा: "हाथ को अभ्यास हो गया है। कानून है, इसलिए तराजू में डालता हूँ।"

इसलिए हम चाहते हैं कि मनुष्य यन्त्र के हाथ में न रहे। अगर वह यन्त्र के हाथ में रहता है, तो जीवन नीरस हो जायगा। एक तरफ बेचारों से आठ-आठ घण्टे मजदूरी कराते हैं और दूसरी तरफ रात में उन्हें सिनेमा दिखाते हैं। कहते हैं कि इससे तुम्हें आनन्द आयेगा। दिन में जितनी तकलीफ होती है, उतना आनन्द रात को 'सप्लाई' किया जाता है। हम कहते हैं कि चौबीसों घंटे आनन्द चाहिए; क्योंकि दिनभर तकलीफ सहना आत्मा के धर्म के खिलाफ है। आत्मा का जो धर्म है, वह सत्-चित्-आनन्द है।

सृष्टि से सबका सम्बन्ध हो

अतः हम चाहते हैं कि हरएक का सम्बन्ध सृष्टि के साथ होना चाहिए। यही आदर्श समाज-रचना है। हर आदमी चार घण्टे खेती करेगा और स्वच्छ हवा, सूर्यनारायण का प्रकाश, भू-माता की सेवा और पक्षियों के संगीत का आनंद लेगा, तो स्फूर्ति बढ़ेगी। उससे ब्रह्मचर्य की साधना भी आसान होगी। इसलिए किसी भी मनुष्य को खेती से वंचित रखना गुनाह है। जिस तरह मन्दिर में जाने से किसीको इनकार करना पाप या अधर्म है, उसी तरह किसीको खेती न दें,

तो वह भी पाप है। खेती में परमेश्वर की सेवा का आनन्द मिलता है। 'कृषिमित् कृषस्व वित्ते रमस्व बहु मन्यमानाः।' वेद भगवान् ने आज्ञा दी है कि केवल कृषि करनी चाहिए और सृष्टि से जो मिलता है, उसे 'बहु' मानना चाहिए। इसलिए खेती करना हरएक का धर्म है, यह ठीक तरह से समझ लेने की जरूरत है।

हर व्यक्ति खेती करे

हमने कई काम आठ-आठ घंटे किये हैं। बुनकर तथा और भी कई तरह के काम गति पाने और शोध करने के लिए किये हैं। किन्तु कोई अगर कहे कि तू आठ घंटे एक ही काम कर, तो हम इनकार करेंगे। आठ घंटे बैठने की जिम्मेवारी हम नहीं उठाना चाहते। चार घंटे खेती में काम और चार घंटे दूसरा काम, इस तरह होना चाहिए। हमारी योजना यह है कि हरएक धंधेवाला खेती करे। वह खेती भी करे और धंधा भी; यह आदर्श समाज की बात है। आज जो खेती नहीं जानते, वे अपने पास जमीन रखते हैं। हम कहते हैं कि उद्योग-विहीन भूमिहीनों को, जो खेती करना चाहते और बरतना जानते हैं, जमीन देनी चाहिए। हमारी योजना है कि हरएक व्यक्ति को खेती में हिस्सा लेना चाहिए। हम ऐसी कल्पना करते हैं कि हमारा प्रधानमंत्री भी चार घंटे खेती और चार घंटे दूसरा काम करेगा। हमारी योजना में एक होगा किसान ब्राह्मण, एक होगा किसान मजदूर, एक होगा किसान प्रोफेसर, एक होगा किसान बढ़ई, एक होगा किसान बुनकर। यही हमारा आदर्श है। सृष्टि के साथ संबंध रखना हमारा कर्तव्य है।

प्राथमिक धर्म

आठ-आठ घंटे खेती करना जरूरी नहीं, पर कुछ समय इसमें जरूर देना चाहिए। फल, भाजी, तरकारी लगाना हरएक के लिए जरूरी है। इस तरह *खेती को हम 'प्राथमिक धर्म' समझते हैं। यह धर्म सबको मिलना चाहिए।* कुछ लोग कहते हैं कि छोटे-छोटे टुकड़ों से उत्पादन घटता है। हम कहते हैं कि आपने खेती का काम किया नहीं है, हमने वर्षों किया है। हम जानते हैं कि

छोटे-छोटे टुकड़ों से उत्पादन कितना बढ़ता है। इसलिए हरएक मनुष्य को खेती करने का मौका मिलना चाहिए। कुछ लोगों का खयाल है कि खेती करनेवाले आठ-आठ घंटे खेती करें और बाकी लोग दूसरे धंधे करें और वे भी आठ-आठ घंटे करें। इससे कुछ लाभ नहीं होगा। सृष्टि की सेवा से हम किसीको वंचित नहीं रखना चाहते।

आरोग्य का आयोजन

मनुष्य को सबसे ज्यादा जरूरत आकाश की है। आकाश खूब खाना चाहिए, उसका अजीर्ण नहीं होता। दूसरी जरूरत हवा की है। हवा का भी खूब सेवन करना चाहिए, उससे पोषण मिलता है। नंबर तीन में सूर्य-प्रकाश की जरूरत है और नंबर चार में पानी की। मनुष्य को कम-से-कम जरूरत अन्न की है। इसलिए अन्न कम खाना और दूसरे सूक्ष्म भूतों का ज्यादा सेवन करना चाहिए। अन्न कम खाने का अर्थ परिमाण में कम नहीं है। अन्न की योग्यता कम-से-कम हो। इसलिए मानव-जीवन की योजना में हवा, पानी और आकाश खूब मिलना चाहिए। इस तरह सृष्टि से संबंध रखकर यह क्रम ध्यान में लिया जायगा, तो मनुष्य का आरोग्य उत्तम रहेगा। आरोग्य के लिए सृष्टि में इंतजाम है। उसका हमें उपयोग कर लेना चाहिए।

सरकार बड़ी भयानक वस्तु

सरकार ऐसी भयानक वस्तु है कि उससे भयानक दूसरी चीज नहीं। दुनिया में कभी भी इतनी मजबूत सरकार नहीं थी, जितनी आज है। सरकार चलानेवालों का दावा है कि प्रजा का कल्याण करने के लिए ही उन लोगों ने अपने हाथ में सत्ता रखी है। समाज को इतना नियन्त्रित कर दिया है कि कुछ लोगों को सत्ता अपने मुट्ठीभर लोगों ने हाथों में कर रखी है। विभिन्न देशों के प्रतिनिधि अपने ही हाथों में उन-उन देशों का भला-बुरा सोचने का अधिकार रखते और लोग दीन-हीन, लाचार रहते हैं। बेचारे कहते हैं कि इनके बिना हमारा काम कैसे चलेगा ? आज जनता को नाममात्र का वोट का अधिकार दिया गया है। यह वैसा ही अधिकार है, जैसा भेड़ों को गड़ेरिया चुनने का

अधिकार मिला हो। उससे भेदों की स्थिति में कोई फर्क नहीं पड़ता। इस तरह यह नाटक चलता और सरकार में सत्ता का केन्द्रीकरण किया जाता है।

बुद्धि-स्वातन्त्र्य पर प्रहार

रूस में भ ' आज यही हो रहा है। प्रजा को कितना अच्छा खाना दिया जाय, यह बात भी सरकार ही तय करती है। पर यह चीज गौण है। मुख्य चीज है, बुद्धि का स्वातन्त्र्य। सरकार जनता की बुद्धि का भी नियन्त्रण करती है। जो चीज आज तक किसी भी ज्ञानी मनुष्य के हाथ में न थी, वह आज के शिक्षा-विभाग के हाथ में है। ज्ञानी मनुष्यों ने उपनिषद् लिखे, लेकिन वे ऐसी जबरदस्ती नहीं कर सकते थे कि उन्हींकी पुस्तक आप पढ़ें। पर आज शिक्षा-विभाग का अधिकारी जो किताब तय करता है, सारे विद्यार्थियों को उसीका अध्ययन करना पड़ता और उसीकी परीक्षा देनी पड़ती है। अगर 'फासिस्ट' सरकार हो, तो विद्यार्थियों को 'फासिस्ट' विचारों की किताबें मिलेंगी। पूँजीवादी सरकार में पूँजीवादी विचारों की किताबें विद्यार्थियों को पढ़नी होंगी। कम्युनिस्टों की सरकार होगी, तो उनके विचारों का अध्ययन विद्यार्थियों को करना होगा। सारांश, जैसी सरकार होगी, वैसी विद्या विद्यार्थियों को दी जायगी। जिन्हें स्वातन्त्र्य का ज्यादा-से-ज्यादा अधिकार है, उनके दिमागों में बने-बनाये विचार ठूँसे जायँगे!

स्वातन्त्र्य का अधिकार सबसे ज्यादा विद्यार्थियों को है। वे कह सकते हैं कि ज्ञान में कोई जबरदस्ती नहीं चल सकती, हम जो ठीक समझेंगे, वही पढ़ेंगे। प्राचीनकाल के ऋषि कहते थे : 'यानि अस्माकं सुचरितानि तानि त्वयोपास्यानि, नो इतराणि'—हमारी जो अच्छी चीजें हों, उनका अनुकरण करो, हमारी जो चीजें बुरी हों, उनका नहीं। लेकिन इन दिनों तो अनुशासन को गुणों का राजा माना जाता है। आजकल लोग कहते हैं कि विद्यार्थियों में अनुशासन कम हो गया है। हमें तो आश्चर्य होता है कि इतनी रद्दी तालीम में भी विद्यार्थी अनुशासन का पालन क्यों करते हैं? मुझे याद है कि मेरे कॉलेज के दिनों में एक प्रोफेसर थे, जिनका व्याख्यान मुझे पसंद नहीं था। मुझे लगता था कि इनके व्याख्यान से मेरा कल्याण

नहीं हो सकता, तो उसे मैं क्यों सुनूँ? और इसलिए मैं क्लास के बाहर चला जाता था।

रद्दी शिक्षा

आज विद्यार्थियों को जो साहित्य पढ़ाया जाता है, वह उनके किसी काम का नहीं होता। संस्कृत पढ़ाते हैं, तो उसमें भी शृङ्गारिक साहित्य ही पढ़ाते हैं; न गीता सिखाते हैं, न उपनिषद्। उधर विद्यार्थी सिनेमा देखते हैं। हिन्दुस्तान की राजधानी दिल्ली जैसे शहर में बहनों ने सरकार से प्रार्थना की कि 'हमारे बच्चों को बचाइये, सिनेमा से उनके शील और चारित्र्य पर बुरा असर हो रहा है; इसलिए सिनेमा बंद करिये।' ऐसी माँग बहनों को करनी पड़े, यह लज्जा की बात है। यह सब जहाँ हो रहा हो, वहाँ विद्यार्थी अच्छे कैसे रहेंगे?

लोग कहते हैं कि इसी शिक्षा से तो महात्मा गांधी और तिलक पैदा हुए, फिर इसके खिलाफ क्यों बोलते हो? हम कहते हैं कि तिलक और महात्मा गांधी इस शिक्षण के बावजूद पैदा हुए, इस शिक्षण से नहीं। ऐसा वे खुद कहते हैं, फिर भी उनके नाम पर दुहाई दी जाती है और यह रद्दी तालीम दी जाती है। हमें बड़ा आश्चर्य होता है कि इतनी रद्दी शिक्षा दी जाने पर भी विद्यार्थी इतने शांत कैसे रहते हैं! साढ़े चार साल का हमारा अनुभव है कि हमारी सभा में जितने ज्यादा विद्यार्थी आते हैं, उतनी ही ज्यादा शांति रहती है।

ऐसे अनुशासन से देश का क्या कल्याण?

अनुशासन श्रेष्ठ गुण नहीं है, क्योंकि उसमें एक मनुष्य की आज्ञा के अनुसार सबको चलना पड़ता है। हुक्म होता है कि हमला करो, तो लोग हमला कर देते हैं। क्या इसीको 'सद्गुण' कहते हो? हमारे ऋषि-मुनि कहते थे कि परमेश्वर के हुक्म से चलना चाहिए। नानक ने कहा था: 'हुक्म रजाई चलणा नानक लिखिया नाय।' लेकिन ये लोग आज परमेश्वर के बदले सरकार का हुक्म मानने की बात करते हैं। इनका श्रेष्ठ उपनिषद्-वाक्य है:

"Yours not to question why,
Yours but to do and die"

यही उनका तरीका है : पिता को 'शूट' करो (गोली से उड़ा दो), ऐसा अगर हुक्म है, तो पुत्र पिता को 'शूट' करता है। इसीका नाम है 'डिसिप्लिन' (अनुशासन)। पर ऐसी डिसिप्लिन से देश का क्या कल्याण होगा ? आज सरकार देश के सारे विद्यार्थियों को इसी तरह की शिक्षा दे रही है।

सरकार का अन्त करें

किन्तु हम कहते हैं कि दुनिया में तब तक शान्ति नहीं होगी, जब तक इन सरकारों से हम मुक्ति नहीं पायेंगे। कम्युनिस्ट चाहते हैं कि आखिर सरकार का क्षय हो, पर आज वह परिपुष्ट होनी चाहिए। यानी क्षय है उधार, पुष्टि है नगद। किन्तु आज की हालत में सरकार को मजबूत बनाने की बात आती है, तो गुलामी के सिवा उससे कुछ नहीं निकलता। इसलिए आज से ही सरकार का क्षय होना चाहिए, यह सर्वोदय का विचार है।

सारांश, जहाँ तक व्यक्तियों का ताल्लुक है, हरएक को मन तथा इन्द्रियों पर काबू रखने का ज्ञान होना चाहिए। समाज में एक-दूसरे के हितों के साथ एक-दूसरे के हितों का विरोध नहीं है, यह समझकर समाज-रचना करनी होगी। सरकार की बिलकुल जरूरत नहीं है, यह समझकर उसके क्षय का आरम्भ आज से ही करना होगा।

विजयवाड़ा
१६-१८ दिसम्बर '५५

बड़ी खुशी की बात है कि दुनिया में जिधर देखो, उधर कशमकश चल रही है। जिस किसी देश में देख, अशान्ति की आग सुलग रही है। किन्तु असंतोष में बड़ी भारी चिन्तन प्रेरणा होती है। जहाँ असंतोष है, वहाँ जीवन प्रकट होता है। पत्थर पर बारिश होती है, तो उसे परवाह नहीं होती। कोई उसे फोड़कर टुकड़े करे, तो भी उसे परवाह नहीं। उसके जीवन में कोई असंतोष, अशान्ति या दुःख नहीं। आपसे अगर कोई पूछे कि आप कभी पत्थर बनना पसन्द करेंगे ? आप कहेंगे, क्या तुम कभी पत्थर हुए ? तुम्हें कैसे मालूम कि पत्थर के जीवन में असंतोष, अशान्ति नहीं है ? अवश्य ही आपके ऐसे सवाल का मेरे पास उत्तर नहीं; लेकिन इतना कह सकता हूँ कि सुख भी नहीं और दुःख भी नहीं, ऐसी अवस्था हमें पसन्द नहीं है।

व्यापक चिन्तन

लोग कहते हैं कि दुनिया में आज जितना दुःख, अशान्ति और असंतोष है, उतना पहले कभी नहीं रहा। संभव है, यह सही हो। लेकिन यह भी सही है कि आज जितना व्यापक चिंतन दुनिया में होता है, उतना पहले कभी नहीं हुआ। मानव-समाज कैसे बना, इसके बारे में आज बच्चा-बच्चा चिंतन करता है। कोई 'केपिटल' जैसी बड़ी-बड़ी किताब पढ़ता है, तो कोई महाभारत। कोई सर्वोदय-विचार का अध्ययन करता है, तो कोई समाजवादी विचार का। दुनिया में मुख्य चीज क्या है, विश्वशांति कैसे हो, राज्यसंस्था कैसे खतम हो, ये भी चर्चाएँ चलती हैं। सारी दुनिया को मिलाकर एक साम्राज्य बनाना चाहिए, ऐसे व्यापक विचार का चिंतन और मंथन छोटे-छोटे बच्चे भी करते हैं।

जिस विचार के बारे में पहले जमाने के बड़े-बड़े तत्त्वज्ञानी भी कोई निश्चित निर्णय नहीं ले सकते थे, ऐसे निर्णय भी आज हमारे बच्चों के पास हैं। महाभारत की कहानी है। द्रौपदी भरी सभा में खींचकर लायी गयी थी। वह पूछती

है कि क्या द्यूत के लिए स्त्री को दाँव पर लगाया जा सकता है ? क्या स्त्री पर पुरुष की मालकियत है ? हमारे बच्चे कहेंगे कि यह तो कोई गहन सवाल नहीं है। परन्तु इस सवाल का जवाब भीष्म, द्रोण के पास भी नहीं था : 'भीष्म, द्रोण, विदुर भये विस्मित।' भीष्म, द्रोण परम ज्ञानी थे, पर इस सवाल का जवाब न दे सके कि स्त्री पुरुष की व्यक्तिगत सम्पत्ति है या नहीं ? इसका निर्णय करना उन्हें मुश्किल मालूम हुआ।

इस तरह जब हम सोचते हैं, तब ध्यान में आता है कि हमारे जमाने में कितना व्यापक चिंतन होता है। पुराने जमाने में कितनी छोटी-छोटी समस्याओं पर विचार किया जाता था, फिर भी उस जमाने के लोग किसी निर्णय पर नहीं आ पाते थे। इस तरह सोचें, तो ध्यान में आयेगा कि हम कितने भाग्यशाली हैं।

उस जमाने में द्यूत खेलना 'धर्म' माना जाता था। आज हमारे जमाने का बच्चा भी कहता है कि क्या द्यूत खेलना धर्म है ? उस जमाने के लोग कहते थे कि 'अगर कोई खेलने के लिए बुलाये, तो न जाना क्षत्रिय के लिए अधर्म है।' धर्मराज का आह्वान किया गया, तो उस परम धर्मनिष्ठ राजा ने धर्म के लिए उसका स्वीकार किया। हम उस महाज्ञानी का उपहास नहीं करना चाहते। उनका एक जमाना था, उनकी समस्याएँ थीं। आज हमें ज्यादा ज्ञान है और ज्यादा दीखता है, तो उसका कारण यही है कि हम उनके कंधे पर खड़े हैं। पिता के कंधे पर बच्चा बैठता है, तो वह बहुत दूर तक देखता है। भीष्म, द्रोण जिसका निर्णय नहीं कर सकते थे, उसका निर्णय हम कर सकते हैं, इसका अर्थ यह नहीं कि हमें ज्यादा ज्ञान है, बल्कि इसका अर्थ यही है कि आज का समाज विचार में बहुत आगे बढ़ा है।

संघर्ष नहीं, मन्थन

आज की समस्याएँ विशाल और जागतिक हो जाती हैं। आज भूगोल सिखाते हैं, तो एक ही गोले में सारी दुनिया के नक्शे चित्रित रहते हैं। पर पुराने जमाने के बादशाह को पता नहीं था कि दुनिया में कितने देश हैं। इसलिए

आज जो कशमकश चल रही है, यह दुःख की बात नहीं। यह संघर्ष वास्तव में मंथन है। दो लकड़ियों को घिसने से अग्नि पैदा होती है, जो दोनों को भस्म कर सकती है। वैसे ही संघर्ष का परिणाम विनाश में होता है। लेकिन मंथन से तो मक्खन पैदा होता है। कुछ लोग हमसे पूछते हैं कि क्या आप 'संघर्षवाद' मानते हैं? हम कहते हैं, 'नहीं'; तो फिर पूछते हैं कि क्या आप 'जैसे थे (स्टेटस्-को) वाद' मानते हैं? हम कहते हैं कि हम संघर्षवादी नहीं, मंथनवादी हैं। विचार की कशमकश चलती है, तो निर्णयरूपी मक्खन निकलता है। इस तरह दुनिया निर्णय के नजदीक आती है।

अहिंसा के मार्ग से शान्ति

बुलगानिन हिन्दुस्तान में घूमकर चले गये। उन्हें खुशी नहीं होती थी, अगर कोई उन्हें 'मार्शल' बुलगानिन कहता। वे मार्शल तो हैं, मगर उन्हें 'मार्शल' कहलाना अच्छा नहीं लगता। 'मार्शल' कहलाना शर्म की बात हो गयी, यह बहुत बड़ी चीज है। याने दुनिया की सबसे बड़ी हिंसा की ताकत जिनके पास है, वे शान्ति चाहते हैं। अब तक शान्ति की घोषणा निरीह ब्राह्मण करते थे, पर आज दुनिया की सबसे बड़ी ताकतवाले लोग भी शान्ति का जप कर रहे हैं। महात्मा गांधी की मृत्यु पर शोक-प्रदर्शन हो रहा था। उस समय मेकआर्थर ने कहा कि 'दुनिया को अगर शान्ति हासिल करनी है, तो उसे महात्मा गांधी के मार्ग पर आज नहीं, तो कल चलना पड़ेगा।' इतना बहादुर मेकआर्थर गांधीजी की मृत्यु पर इस तरह बोलता है, आखिर इसका मतलब क्या है? अतः आज हमारे मन में यह निश्चिंतता हो गयी है कि आज नहीं तो कल, दुनिया को अहिंसा का मार्ग अपनाना ही होगा।

आज नहीं तो कल

आज हमें कोई भूदान में जमीन नहीं देता, तो हम कहते हैं कि वह इसीलिए नहीं देता कि कल देनेवाला है। अगर कोई आज देता है, तो हमें खुशी होती है कि वह हमारा आज का दाता है। जो नहीं देता, वह हमारा कल का दाता है। हमें दोनों बातों में खुशी है। इसी तरह अगर आज कोई शान्ति की बात करता

है, तो वह आज का शान्तिवादी है। पर आज जो अशान्ति की बात करता है, वह कल का शान्तिवादी है। चाहते दोनों शान्ति हैं। हम जानते हैं कि आज जो हमारे साथ नहीं हैं, वे कल हमारे साथ जरूर आयेंगे।

हिंसा का व्यापक रूप

पुराने जमाने में कभी कोई समस्या खड़ी होती, तो लोग कुश्ती करके उसे हल कर लेते थे। फलाने राज्य पर भीम का हक है या जरासंध का, तो कुश्ती हो जाती और जो जीतता, उसीका राज्य माना जाता। पर भीम और जरासंध की इस कुश्ती में जनता को कोई तकलीफ न होती थी, वह सिर्फ उसे देखती थी। इसी तरह अगर इन दिनों हिटलर और स्टालिन की कुश्ती हो जाती, तो क्या नुकसान होता? अगर इतनी आसानी से समस्या हल हो सकती है, तो उसमें थोड़ी हिंसा हो, तो भी उससे प्रजा को दुःख नहीं होता। पहले के जमाने में कुश्ती में लोगों को आनन्द भी आता था। ठंड में अगर थोड़ी-सी गर्माहट मिले, तो अच्छा लगता है या नहीं? कुश्ती के बाद युद्ध का जमाना आया। पलासी की लड़ाई के छोटे मैदान में इधर हिन्दुस्तान की सेना थी, उधर अंग्रेजों की सेना। उस लड़ाई में कुछ संहार हो गया, लेकिन वह सीमित था। उसमें स्त्रियाँ, बच्चे, बूढ़े, बीमार और नागरिक जनता शामिल नहीं थी।

लेकिन इन दिनों हिंसा छोटी नहीं रही, उसने व्यापक और प्रचण्ड अग्नि का रूप ले लिया है। उससे लड़नेवाले और गैर लड़नेवाले, सभीको तकलीफ होती है। इन दिनों एक देश दूसरे देश के विरुद्ध खड़ा हो जाता है और भीषण लड़ाई हो जाती है। कल अगर जाहिर हो कि रूस और अमेरिका में लड़ाई होनेवाली है, तो रूस के पक्ष में दस-बीस राष्ट्र खड़े हो जायँगे और अमेरिका के पक्ष में भी दस-बीस राष्ट्र खड़े हो जायँगे और भीषण लड़ाई छिड़ जायगी। फिर यहाँ के पुरुषों के साथ वहाँ के पुरुषों का, यहाँ की स्त्रियों के साथ वहाँ की स्त्रियों का, यहाँ के बैलों के साथ वहाँ के बैलों का विरोध होगा। यहाँ के गधों के साथ वहाँ के गधों का विरोध होगा, यहाँ के पेड़ों के साथ वहाँ के पेड़ों का विरोध होगा और यहाँ की मिलों के साथ वहाँ की मिलों का विरोध होगा।

अगर बम गिरेंगे, तो उसमें गधे, घोड़े, मिलें, स्त्रियाँ, सबका नाश होगा। अमेरिका के गधों को मालूम भी नहीं कि रूस के गधों के साथ उनका विरोध है। आज कहा जाता है कि देश के कुल लोग देश के लिए मर मिटें। तो फिर बचेगा क्या ? क्या पत्थरों के लिए मरना है ?

लोभ, भय और स्वार्थ की प्रेरणा

यह आपत्ति आज दुनिया के सामने खड़ी है। उसके भय से आज लोग 'शान्ति'-'शान्ति' का जप कर रहे हैं। पुराने जमाने में ब्राह्मण भी शान्ति का जप करते थे, लेकिन उसका कारण था। वे सोचते थे कि अगर दुनिया में शान्ति रहेगी, तो हमें लोग लड्डू देंगे। किन्तु आज ये लोग भय-प्रेरणा से शांति का जप कर रहे हैं। हम कहना चाहते हैं कि केवल भय के कारण 'शान्ति'-'शान्ति' जपने से दुनिया में शान्ति हरगिज न होगी। दुनिया में शान्ति तभी होगी, जब शान्ति की स्वतन्त्र कीमत होगी। इन दिनों कुछ लोग कहते हैं कि हमें शान्ति की जरूरत है। चीन कहता है, हमें शान्ति की जरूरत है। रूस भी यही कहता है। हिन्दुस्तान तो कहता ही है कि हमें शान्ति की जरूरत है, क्योंकि हमारे देश को बहुत विकसित करना है, आर्थिक समता स्थापित करनी है।

एक था किसान! उसने बीज बोया, पर बारिश नहीं हो रही थी। उसे पानी की जरूरत थी। उसने भगवान् से प्रार्थना की, 'भगवन्! मुझे पानी की सख्त जरूरत है।' फिर बारिश आयी, फसल आयी। तब किसान कहने लगा, 'अब बारिश की जरूरत नहीं है।' इसी तरह देश विकसित होने पर शांति की जरूरत नहीं है। जिसे फसल के लिए पानी की जरूरत है, उसकी वह जरूरत निरपेक्ष नहीं, सापेक्ष है। जिसे प्यास के लिए पानी की जरूरत है, उसे कायम के लिए पानी की जरूरत रहेगी। हम इन बड़े-बड़े लोगों से पूछना चाहते हैं कि आपको पानी फसल के लिए चाहिए या प्यास के लिए ? आपको पानी की प्यास है या गरज ?

सर्वोदय कब होगा ?

आज बहुत-से देशों को शांति की गरज है, पर वह भय के ही कारण। क्योंकि अगर युद्ध छिड़ जाय, तो अशांति होगी और ये लोग सर्वनाश नहीं

चाहते। इसलिए वे एक तो भय-प्रेरणा से शांति चाहते हैं और दूसरे, गरज की प्रेरणा से। हम कहते हैं कि किसी भी कारण शांति का जप करने से शांति नहीं मिलेगी। पुराने काल में ब्राह्मण शांति का जप करते थे, पर आज सत्तावाले भी कर रहे हैं। अब जमाना आयेगा कि सारे समाज को शांति की प्यास लगेगी। सारा समाज सोचेगा और समझेगा कि शांति में ही शक्ति और समस्या का हल है। जब सारा समाज न भय और न लोभ के, बल्कि प्यास के लिए शांति चाहेगा, तभी 'सर्वोदय' होगा।

समस्याओं का स्वागत

इसलिए जब समस्याएँ खड़ी हो जातीं या कहीं बड़ा युद्ध छिड़ने की बात चलती है, तब उसका मैं स्वागत करता हूँ, क्योंकि उसके बाद सारी दुनिया शांति की तरफ आ पहुँचेगी। आज दुनिया के सामने इतना ही सवाल है कि हम युद्ध चाहते हैं या शांति? अब शांति की प्रेरणा के लिए युद्धों की जरूरत नहीं। अगर है, तो एक ही युद्ध होगा और अगर नहीं, तब तो शांति ही होगी। अगर एक बड़ा भारी युद्ध हो जाय, तो इसके बाद दुनिया शांति की तरफ जरूर होगी। इस वास्ते हम बड़े मजे में यात्रा करते हैं और जितनी अशांति और असंतोष बढ़ता है, उतनी ही हमें गाढ़ निद्रा आती है। हम समझते हैं कि ये सब लोग आखिर हमारे रास्ते पर आयेंगे, बशर्ते हम अपना दिमाग कायम रखें। भारत अपना दिमाग कायम रखता है, तो वह दुनिया को शांति दिखाने-वाला साबित होगा।

भूदान-यज्ञ की प्रगति

भूदान-यज्ञ कैसे चला? एक था कछुआ और एक था खरगोश। चली दोनों की शर्त कि कौन पहले पहुँचता है? खरगोश दौड़ने लगा। काफी आगे निकल गया। फिर उसने देखा कि कछुआ धीरे-धीरे चल रहा है और बहुत दूर है। उसे नींद आयी और वह सो गया। वह गाढ़ निद्रा में पड़ा रहा। इतने में कछुआ धीरे-धीरे अपने स्थान पर पहुँच गया। उधर लोग बहुत जोर से दौड़ रहे हैं और इधर भूदान-यज्ञ का कछुआ अपनी गति से चल रहा है।

लोग पूछते हैं कि उधर बड़ी-बड़ी मशीनें और बड़े-बड़े कारखाने चल रहे हैं। इनके सामने आपका यह बछुआ कैसे आगे बढ़ेगा ? हम कहना चाहते हैं कि जिन हाथों ने ये औजार बनाये, वे ही इन औजारों को खतम करेंगे।

अमेरिका को संदेश

हमारी यात्रा में कभी-कभी विदेशी लोग शामिल होते हैं। एक अमेरिकन भाई आये थे। वे जाते समय हमसे कहने लगे कि 'अमेरिका के लिए आप कुछ संदेश दीजिये।' हमने कहा : 'इतनी धृष्टता हममें नहीं है कि हम अमेरिका को संदेश दें। हम सिर्फ सेवा करना जानते हैं और वही कर रहे हैं।' किन्तु उन्होंने कहा कि 'मैं जा रहा हूँ, तो हमारे देश के लोग मुझसे पूछेंगे कि तुमने वहाँ क्या सुना, बाबा ने क्या कहा, तो मैं क्या जवाब दूँगा !' तो मुझे लगा, कुछ कह देना चाहिए। इसलिए मैंने कहा : 'मैं सिर्फ अमेरिका के लिए ही नहीं, बल्कि अमेरिका और रूस, दोनों के लिए कहना चाहता हूँ कि आप दोनों जो बड़े-बड़े शस्त्रास्त्र, जहाज वगैरा बनाते हैं, उसे जारी ही रखिये। नहीं तो आपके देश में बेरोजगारी का सवाल खड़ा होगा। किन्तु मैं आपसे एक और बात कहना चाहता हूँ। आप बड़े-बड़े शस्त्र-संभार बढ़ाते हैं और जब युद्ध होता है, तब रूस अमेरिका के और अमेरिका रूस के जहाज खतम करता है। यह नहीं करना चाहिए। रूस भी ईसाई है और अमेरिका भी। २५ दिसम्बर को 'क्रिसमस' का दिन (बड़ा दिन) आता है। उसी दिन आप अपने-अपने हाथों से अपने-अपने शस्त्रास्त्र, जहाज वगैरा समुद्र में डुबा दीजिये। रूस अपने जहाज डुबा दे और अमेरिका अपने ! हमारे आप डुबायें और आपके हम, इससे तो यही बेहतर है कि स्वावलंबन से हम अपने-अपने जहाज डुबा दें। इससे ईसा की शांति का पालन होगा, बेकारी नहीं बढ़ेगी और न कोई तकलीफ भी होगी। उस कार्यक्रम को देखने के लिए बच्चे भी आयेंगे। उन सबको चार-पाँच दिन छुट्टी दे दीजिये और एक जनवरी से फिर कारखाने शुरू कर दीजिये।'

यह सुनकर वह भाई हँसने लगा। हमने कहा कि तुम हँसो, लेकिन यह हमारा गंभीर संदेश है। क्योंकि आप ही लोग कहते हैं कि युद्ध से काम मिलता

है। अगर युद्ध बन्द हो जाते हैं, तो समस्या खड़ी हो जाती है कि इतने लोगों को काम कैसे देंगे!

रिक्शा भी उद्योग

हम कहते हैं कि रिक्शा बंद होना चाहिए, तो लोग पूछते हैं कि इन सब लोगों को क्या काम देंगे? याने, रिक्शा भी एक उद्योग मिल गया। उसमें हट्टे-कट्टे लोग भी बैठते हैं। हम कहते हैं कि कभी-कभी उल्टा भी करो, जिससे भान होगा कि खींचनेवालों को कितनी तकलीफ होती है। यह बात इन लोगों के ध्यान में आती है, फिर भी यह सब चलता है और समस्या पैदा होती है।

छोटे झगड़ों का भय

मैं नहीं कहता कि केवल इसी कारण शस्त्र बढ़ रहे हैं। मैं यही कहना चाहता हूँ कि इन दिनों इतनी समस्याएँ खड़ी होती हैं, इसका कारण यह है कि हम ठीक तरह से नहीं सोचते। हमें छोटे-छोटे झगड़ों का जितना भय है, उतना हाइड्रोजन और एटम बम का नहीं। ये बम बनते तो हैं दूसरे देश में, लेकिन उनका जप होता है हिन्दुस्तान में। जब मैं बिहार में घूमता था, तो वैद्य-नाथधाम पहुँचा। वहाँ यात्री लोग 'बम बोलो भोलानाथ', 'बम बोलो भोलानाथ' कहते थे। तब हमारे ध्यान में आया कि बम बनानेवाले भोलानाथ होते हैं। ऐसे भोले हम न बनें और अपना दिमाग कायम रखें।

बड़ी-बड़ी आगें छोटी-छोटी चिनगारी से लगती हैं। इसलिए हमें चिंता करनी चाहिए कि छोटे-छोटे झगड़े कैसे मिटें। अगर ये मिट जायँ, तो फिर चिंता नहीं। इसीलिए मैंने कह दिया कि 'होगी तो एक ही लड़ाई होगी।' ये लोग हमें डराते हैं कि युद्ध से नाश होगा। हम कहते हैं कि इसमें डरने की क्या बात है? हम भी मरेंगे और आप भी। आप भी मरनेवाले हैं और मैं भी, तो दुःख क्या करना है! मुझे तो बड़ा आनंद होगा। मैं कहूँगा कि भूदान-यात्रा की तकलीफ नहीं रहेगी, सारी मानव-जाति मुक्त होगी। इसलिए आपको कोई जागतिक युद्ध का डर दिखाता है, तो आप बिल्कुल मत डरिये। यही कहिये कि हम इसे निरी मूर्खता समझते हैं।

सत्याग्रह का नया रास्ता

हमें विश्व-युद्ध की चिंता न करनी चाहिए। उसकी चिंता विश्व-युद्ध स्वयं करेगा। हमें चिंता करनी चाहिए कि बंबई में झगड़े न हों, बल्लारी में झगड़े न हों, देश में झगड़े न हों, गाँव में झगड़े न हों। लेकिन एक बात और है। झगड़े न हों, यह बात तो ठीक है, लेकिन देश में दुःख है, इसी वास्ते झगड़े होते हैं। लोगों को खाना नहीं मिलता और उसीमें से झगड़े खड़े होते हैं। झगड़ा नहीं करना, इतना ही काफी नहीं है। महात्मा गांधी ने हमें एक नया रास्ता बताया था और वह है सत्याग्रह का। सत्याग्रह में बड़ी भारी शक्ति है। उससे अशांति भी नहीं रहेगी और झगड़े भी न होंगे।

अच्छे साधन जरूरी

पहले लोग शांति का जप करते थे, याने वे 'स्टेटस्-को' चाहते थे। वे 'स्टेटस्-को' रहना पसंद करते थे, पर अशांति नहीं चाहते थे। पर अब एक नया पक्ष निकला है, जो न तो 'स्टेटस्-को' चाहता है और न अशांति।

एक प्यासे को बड़ी प्यास लगी। उसे कहीं स्वच्छ पानी नहीं मिला। उसके लिए वह खूब घूमा, इधर-उधर ढूँढ़ा। आखिर एक गंदा नाला मिला और उसने उसका पानी पी लिया। अब आप उसके सामने पानी का व्याख्यान दें, तो वह कहेगा कि मैं जानता हूँ कि स्वच्छ पानी पीना चाहिए, पर प्यास बड़े जोर से लगी और स्वच्छ पानी कहीं नहीं मिला, इसलिए मैंने गंदा पानी पी लिया। वैसे ही हिंसा से मसला हल हो, यह कोई नहीं चाहता। किन्तु राह नहीं मिलती और भय के कारण लोग हिंसा कर लेते हैं। स्वच्छ पानी पीना चाहिए, यह सबको मालूम है। सब जानते हैं कि अच्छे साधनों का उपयोग करना चाहिए। इसलिए सवाल इतना ही है कि अच्छे साधन मिलने की सूरत निकलनी चाहिए।

उत्पादन और सम-विभाजन

कम्युनिस्टों में मेरे बहुत अच्छे मित्र हैं। उनके लिए मुझे अभिमान भी है। वे पहले मेरे लिए शंका रखते थे, लेकिन अब उन्होंने समझ लिया है कि बाबा

हृदय-परिवर्तन करना चाहता है और उनका दोस्त है। इस वास्ते उनसे कभी-कभी मेरी चर्चा होती है। वे कहते हैं कि 'हिन्दुस्तान में उत्पादन कम है, जीवन का स्तर नीचे गिरा है।' मैं कहता हूँ, 'इसके लिए परिश्रम करना होगा और उत्पादन बढ़ाना होगा।' परन्तु आज कुछ लोगों को खाने को कुछ भी नहीं मिलता और कुछ ऐसे हैं, जिन्हें बहुत मिलता है और दोनों के ही कारण डॉक्टरों का धंधा खूब चलता है। इसीलिए आज जो पढ़ता है, वह मेडिकल कॉलेज में जाता है। हमें सोचना चाहिए कि क्या मेडिकल कॉलेज के लिए समस्या कायम रखनी है? उत्पादन के साथ सम-विभाजन भी होना चाहिए। कुछ लोग सिर्फ उत्पादन पर जोर देते हैं, मगर एक बात पर जोर देना एकांगी होता है। बड़े-बड़े लोग भी वितरण की बात तो करते हैं, लेकिन कभी-कभी यह भी कह देते हैं कि उत्पादन ज्यादा कहाँ है? हम नम्रता से उन्हें बताना चाहते हैं कि यह बात हमारे ध्यान में नहीं आती। हम यही कहना चाहते हैं कि उत्पादन और वितरण साथ-साथ चलना चाहिए।

सहयोग आवश्यक

एक कुटुम्ब में चार आदमी हैं, और उत्पादन सिर्फ तीन करते हैं, फिर भी वे ऐसा नहीं सोचते कि सिर्फ तीन आदमी ही खायें, बल्कि वे चारों मिलकर खाते हैं। इसलिए उत्पादन बढ़ाने और वितरण करने का काम साथ-साथ चलना चाहिए। उसमें से एक ही बात चलेगी, तो कशमकश होगी, संघर्ष चलेगा। मान लीजिये कि हमारे देश में अठारह सेर ताकत है—साधारण जनता की ताकत आठ सेर और सम्पत्तिवालों की ताकत दस सेर है। कुल मिलाकर उत्पादन के लिए अठारह सेर शक्ति लगनी चाहिए। परन्तु उत्पादन और विभाजन हम साथ-साथ नहीं करते, इसलिए दोनों में झगड़ा होता है और परिणामस्वरूप केवल दो सेर ताकत का लाभ होता है। हम पूछना चाहते हैं कि दस और आठ मिलाकर उत्पादन करेंगे, तो समस्या हल होगी या नहीं? इसका मतलब यही है कि दस और आठ का सहयोग होना चाहिए। हम अपनी शक्ति सहयोग में ही लगायें।

सत्य + प्रेम = सत्याग्रह

लोग पूछते हैं कि आपको सहयोगी समाज बनाना है या सत्याग्रही ? बाबा कहता है कि भूदान-यज्ञ सत्याग्रह का सर्वश्रेष्ठ उपाय है। बाबा गाँव-गाँव जाता है, भूमि की मालकियत गलत है—ऐसा जप करता है। व्यापक प्रचार करता जा रहा है, चाहे धूप हो, बारिश हो, वह घूमता ही जा रहा है। यही तो 'सत्याग्रह' है।

'सत्याग्रह' के माने यही है कि सामनेवाले के प्रति प्रेम होना चाहिए। उसका द्वेष करना गलत है। अगर चित्त में द्वेष है, तो शस्त्र से लड़ना बेहतर है। इसलिए पहले यह जरूरी है कि हम अपने चित्त से द्वेष हटायें। तभी हमारे सत्याग्रह में बल आयेगा। इसीलिए महात्मा गांधी ने कहा था कि सत्याग्रह में एक पद अध्याहृत है। 'सत्याग्रह' मध्यमपदलोपी समास है। 'सत्याग्रह' याने 'सत्य के लिए प्रेम द्वारा आग्रह'। अगर हम सत्य और प्रेम, दोनों को इकट्ठा करेंगे, तो समाज आगे बढ़ेगा, उत्पादन भी बढ़ेगा और समस्या भी हल होगी।

विजयवाड़ा
१६-१२-'५५

डच भाई के सात प्रश्नों के उत्तर : १४ :

हमारी इस भूदान-यात्रा की ओर कुल हिन्दुस्तान का ध्यान खींच गया और धीरे-धीरे दूसरे देशों की दृष्टि भी इस ओर लगी। विशेषतः दूसरे देशों के चिन्तनशील लोगों को इस यज्ञ से कुछ आशा बँध गयी है। कभी-कभी यूरोप, अमेरिका, जापान के लोग हमारी इस यात्रा में घूमते हैं। वे देखना चाहते हैं कि हिन्दुस्तान में यह कैसे चल रहा है ? भूदान-यज्ञ लोगों के हृदय में प्रवेश कर सामाजिक क्रान्ति करने की बात है। हृदय-परिवर्तन के जरिये व्यक्ति का जीवन बदलेगा और समाज-रचना में भी फर्क आयेगा, यह इस आन्दोलन की प्रक्रिया है। इसलिए यह एक ऐसी बात है, जो सारी दुनिया का ध्यान खींचती है। अभी हमारे साथ एक जापानी भाई घूम रहे थे और एक नवयुवक हॉलैण्ड के भी हैं, जिन्होंने हमारे सामने कुछ सवाल रखे हैं।

विश्वशान्ति के लिए भूदान

आजकल विश्वशान्ति का विचार मेरे मन में बहुत आया करता है। मेरी मान्यता है कि भूदान-यज्ञ पूरी तौर से चलेगा, तो उसका विश्वशान्ति पर बहुत अच्छा असर पड़ेगा। इन चार सालों में भूदान की कुछ बातें सबके सामने आ गयी हैं, अब तो काम ही करने का है। पहले हम कहते थे कि थोड़ा-थोड़ा दान गरीबों के लिए दीजिये, तो कुछ लोग देने लगे। फिर हमने माँग की कि गाँव में जितने काश्तकार हैं, सभी कुछ-न-कुछ दें, तो वह भी मिल गया। फिर हमने कहा कि कुल काश्तकारों से ही दान काफी नहीं, छठा हिस्सा मिलना चाहिए। वैसे भी लोग गाँवों में निकले। इसके बाद हमने एक बड़ा भारी कदम उठाया। हमने कहा कि गाँव में भूमिहीन कोई न रहे—इतना ही काफी नहीं, कोई मालिक भी न रहे। तो, ऐसे ८५० से ज्यादा गाँव निकले, जिन्होंने पूरी-की-पूरी जमीन दे दी। उड़ीसा के कोरापुट जिले में बहुत ज्यादा ग्रामदान मिले। कुछ बिहार, उत्तरप्रदेश और बंगाल में मिले। मध्यप्रदेश, तमिलनाड में, जहाँ कुछ भी आशा न थी, भी मिले। अभी गुजरात में भी एक ग्रामदान मिला। इस तरह भूदान-यज्ञ में जितनी राहें खुल सकती थीं, सभी खुल गयीं। विचारधारा की व्यापकता प्रकट हो गयी है। अब सब मिलकर जोरों से काम में लग जायँ। सब राहें खुल जाने से हमारा मानसिक चिन्तन और ध्यान ज्यादा-तर विश्वशान्ति की ओर खींचता है।

इसका यह मतलब नहीं कि हम भारत की समस्या पर ध्यान देना नहीं चाहते। अगर घर की समस्या ही हल न करेंगे, तो विश्वशान्ति कैसे करेंगे? किन्तु इसके लिए यह जरूरी नहीं कि घर की पूरी-की-पूरी समस्या हल हो, तभी विश्वशान्ति के लिए विचार करें। जहाँ एक राह खुल जाती है, वहाँ विश्वशांति के लिए मदद पहुँच जाती है। मन में बार-बार यह सवाल पैदा होता है कि विश्वशान्ति के लिए भारतीय लोग क्या मदद पहुँचा सकते हैं? निःसन्देह उत्तर मिलता है कि भूदान के द्वारा हम विश्वशान्ति को मदद पहुँचा सकते हैं। किन्तु उसके लिए भूदान देना ही काफी नहीं, "विश्वशांतये भूदानम्" विश्वशान्ति

के लिए हम भूदान दे रहे हैं—ऐसा मानसिक संकल्प होना चाहिए। अगर हमने अपने दामाद के लिए भूदान दिया, तो उसका संसार अच्छा चलेगा और यह भूदान उतना ही कार्य करेगा। हमने अपने गाँव के गरीबों के लिए भूदान दिया, तो उसका उतना ही परिणाम होगा। भूमि-समस्या हल करने के लिए भूदान दिया, तो उतना ही उसका परिणाम होगा।

दान एक पवित्र क्रिया है, पर उसके साथ जितना ऊँचा उद्देश्य जोड़ा जायगा, उससे उतना ही ऊँचा परिणाम आयेगा। भूदान देनेवालों, लेनेवालों और उसका प्रचार करनेवालों के मन में यह संकल्प होना चाहिए कि भूदान से विश्वशान्ति की स्थापना हो सकती है। सत्कर्म के विविध परिणाम और फल होते हैं। उसके साथ जैसा संकल्प जोड़ा जायगा, वैसा फल मिलेगा। यहाँ भूदान के साथ विश्वशान्ति का संकल्प जोड़ा जाय, तो दुनिया पर उसका परिणाम होगा। इन दिनों हमारा चिन्तन, मनन और संकल्प सतत विश्वशान्ति के लिए ही चलता है।

आन्दोलन दुनिया में फैलेगा

उस भाई का पहला सवाल यह है कि क्या आप चाहेंगे कि यह आन्दोलन आपके देश के बाहर फैले? इसके उत्तर में हम कहना चाहते हैं कि यह आन्दोलन जब शुरू हुआ, तो हिन्दुस्तान के निमित्त से शुरू हुआ; पर उसने सारी दुनिया का ध्यान खींच लिया। हम अवश्य चाहते हैं कि इसका मूल उद्देश्य दुनिया में फैले। इस काम के लिए भगवान् किसे निमित्त बनायेगा, यह हम नहीं जानते। किंतु इतना अवश्य जानते हैं कि यह आन्दोलन दुनिया में जरूर फैलनेवाला है।

दूसरा प्रश्न यह था कि यूरोप के कई देशों में भूमि-समस्या नहीं है। और वहाँ की सामाजिक परिस्थिति भी यहाँ की परिस्थिति की तुलना में कुछ अच्छी है। इसलिए ऐसा दीखता है कि वहाँ भूदान के लिए कोई मौका नहीं। लेकिन वहाँ भी ग्रामों की रचना बिलकुल ही यांत्रिक तौर पर की जा रही है। ग्राम बड़े उद्योगों के काबू में जा रहे हैं। तो क्या आपके तरीके से ये भी मसले हल होंगे?

उद्योगों का उचित आयोजन

हम कहना चाहते हैं कि यह चीज भी भूदान के साथ जुड़ी है। भूदान-यज्ञ में भूमि का बँटवारा एक अंग है और ग्रामोद्योग दूसरा। हम चाहते हैं कि गाँव के लोग अपने उद्योगों के आधार पर अपना जीवन चलायें। इसका मतलब यह नहीं कि वे ही पुराने औजार चलेंगे। समाज की परिस्थिति के अनुसार जितने औजार प्राप्त हो सकें और उनमें जितना संशोधन हो सके, उतना करके ग्रामीण सादगी से अपना जीवन चलायें। जहाँ हम सादगी की बात करते हैं, वहाँ कुछ लोग समझते हैं कि यह ऐश्वर्य और उत्पादन-वृद्धि न चाहता होगा। आज ही हमने अखबार में पढ़ा है कि पणिक्कर साहब ने कहा है कि 'सादा जीवन व्यक्ति के लिए ठीक है, पर समाज के लिए गलत है।' हम जाहिर करना चाहते हैं कि हम सब प्रकार की अभिवृद्धि चाहते हैं, लेकिन उसके साथ तीन बातें और भी चाहते हैं :

(१) हर मनुष्य का सृष्टि के साथ संबंध बना रहे। इन दिनों कुछ लोग फैक्टरी में आठ-दस घंटे काम करते हैं। उन्हें खेत में काम करने, सृष्टि के साथ एकरूप होने का मौका नहीं मिलता। इसीलिए हफ्ते में एक दिन आनन्द के लिए उन्हें छुट्टी दी जाती है या वे रात को सिनेमा देखकर कृत्रिम आनंद हासिल करते हैं। किन्तु हम चाहते हैं कि मनुष्य के जीवन का सबसे श्रेष्ठ, प्रकृति के साथ एकरूप होने का आनन्द बना रहे। (२) खेती के साथ जो भी उद्योग जोड़े जायँ, उनमें किसीका शोषण न हो, किसी भी प्रकार की ऊँच-नीचता या विषमता न रहे। और (३) जो उत्पादन हो, उसका सम्यक् विभाजन होना चाहिए। इस तरह सृष्टि के साथ सतत जीवित सम्बन्ध, शोषणरहितता और सम्यक्-विभाजन, तीनों बातें कायम रखकर हम गाँवों को समृद्ध बनाना चाहते हैं। मनुष्य के लिए अत्यंत सादा जीवन चाहनेवाले हमारे शास्त्रों ने आज्ञा दी है कि "अन्नम् बहु कुर्वीत"—अन्न खूब बढ़ाओ। हम यह नहीं चाहते कि 'किसी भी प्रकार जीने' को जीवन कहा जाय। हम तो खूब ऐश्वर्य चाहते हैं। हम मानते हैं कि यह चीज दुनिया के सब देशों में, खासकर यूरोप और अमेरिका में भी लागू हो सकती है।

चीन को 'यू० एन० ओ०' में स्थान मिले

तीसरा सवाल यह था कि आज दुनिया में जो कशमकश चल रही है, वह किस तरह कम होगी ? इसके लिए दो उपाय हैं : (१) सब राष्ट्रों के प्रतिनिधि मिलकर कुछ काम करें। अभी भी सब राष्ट्रों की मिली-जुली एक संस्था यू० एन० ओ० बनी है। खुशी की बात है कि उसमें अभी और सोलह राष्ट्र लिये गये हैं। लेकिन चीन जैसे बड़े देश को वहाँ अभी तक स्थान नहीं दिया जा रहा है, इसे हम केवल हठ समझते हैं। इसमें या तो नाहक डर है, अपनी कल्पना की बात है या आक्रमण की कोई दृष्टि है। अगर कोई आक्रमण की नीयत रखता है, तो विश्वशान्ति नहीं हो सकती। हम नहीं मानते कि भय के लिए कोई कारण हो, क्योंकि भय से भय बढ़ता है। इसलिए विश्वासपूर्वक चीन जैसे देश को वहाँ स्थान देना चाहिए। चीन में जब क्रान्ति हुई थी, तब बिलकुल आरम्भ मे मैंने जाहिर व्याख्यान में कहा था कि चीन को कबूल करना चाहिए। उस समय तो हिन्दुस्तान सरकार ने भी अपना निर्णय जाहिर नहीं कर दिया था।

मेरे उस व्याख्यान पर कुछ गांधीवादियों ने भी टीका की थी कि जिस देश में हिंसक तरीके से राष्ट्रक्रान्ति हुई है, उसे आप कैसे कबूल करते हैं ? लेकिन हमें सोचना चाहिए कि दुनिया के देशों ने अभी अहिंसा का व्रत नहीं लिया है। हम जरूर चाहते हैं कि दुनिया में अहिंसा फैले, किन्तु जब तक वह नहीं होता, तब तक किसी देश के राज्य को कबूल ही न करना गलत है। इसलिए हमारी राय में चीन को यू० एन० ओ० में स्थान देने में जितनी देर हो रही है, उतनी ही शान्ति खतरे में है। विश्वास के बिना विश्वशान्ति नहीं हो सकती। ये लोग यू० एन० ओ० में आमने-सामने बैठकर एक-दूसरे पर विश्वास न रखें, तो कैसे चलेगा ? जब रूस जाहिर करता है कि हम अपने शस्त्रास्त्र कम करने और अणुबम छोड़ने के लिए राजी हैं, तो उस पर विश्वास रखना और दोनों को मिलकर यह काम करना चाहिए। हमें यह बताते हुए खुशी हो रही है कि पोप ने भी यही सुझाव पेश किया है। इस तरह यह काम सभी देशों के प्रतिनिधियों को मिलकर करने का है।

हमेशा प्रस्तुत रहना चाहिए। उसे पहले अपने देश की समस्याएँ और अशान्ति मिटानी होगी, तभी वह दूसरों की सेवा करने की योग्यता हासिल कर सकेगा।

देश पर गांधीजी के प्रभाव के चार लक्षण

छठा सवाल बड़ा सुन्दर है। उस भाई ने पूछा कि आज के भारत पर महात्मा गांधीजी का प्रभाव आप किस तरह देखते हैं? इसके जवाब में मैं एक बात कह देना चाहता हूँ कि महापुरुषों का प्रभाव चिरकाल में होता है। बुद्ध भगवान् का परिणाम आज ढाई हजार साल के बाद दुनिया को मालूम हो रहा है। इस तरह महापुरुषों का प्रभाव केवल दो-चार साल में नहीं नापा जा सकता, क्योंकि वह अत्यन्त दूर और व्यापक होता है। फिर भी हमें यह देखकर बहुत आशा हुई है कि भारत में दिन-ब-दिन गांधीजी के विचार का परिणाम बढ़ रहा है। हम उसके ४ लक्षण देख रहे हैं :

(१) भूदान-यज्ञ का विचार निकला और लोगों को वह जँच गया। हम समझते हैं कि यह गांधीजी के विचार के प्रभाव का लक्षण है। हम कबूल करते हैं कि भारत के चित्त पर यह जो प्रभाव है और उसे दान तथा प्रेम का जो आकर्षण मालूम होता है, वह भारत की कुल सभ्यता के कारण है। इसलिए उसे केवल गांधीजी का प्रभाव नहीं कहा जा सकता। वैसे देखा जाय, तो गांधीजी खुद ही हिन्दुस्तान की सभ्यता के पैदाइश हैं। अगर हम यहाँ की सभ्यता को अलग कर दें, तो गांधीजी पैदा ही न होते।

(२) दूसरा लक्षण यह है कि हिन्दुस्तान के कारण सारी दुनिया में कुछ प्रेमभाव बढ़ रहा है। स्पष्ट शब्दों में कह सकते हैं कि द्वेषभाव जरा कम हो रहा है। भारत ने अपना जो भी वजन हो, उसे दुनिया की शान्ति और आजादी के पक्ष में डाला और वह किसी भी हिंसक पक्ष में नहीं दाखिल होना चाहता, यद्यपि इसमें भी भारत की ही संस्कृति का प्रभाव कहा जायगा।

(३) तीसरा लक्षण यह है कि धीरे-धीरे हिन्दुस्तान की सरकार को ग्रामोद्योग का महत्त्व जँचने लगा है। हम इनकार नहीं कर सकते कि आज हमारे जो

भाई सरकार में हैं, उन पर गांधीजी के प्रभाव के साथ-साथ पश्चिम के अर्थ-शास्त्र का भी प्रभाव है। इसलिए वे गांधीजी के ग्रामोद्योग के विचारों के साथ पूरी तरह से सहमत नहीं हुए हैं। किन्तु हिन्दुस्तान की परिस्थिति का ही ऐसा दबाव है और सर्वोदय-विचार भी धीरे-धीरे जनता में फैल रहा है, जिससे सरकार भी धीरे-धीरे ग्रामोद्योग अपनाने लगी है। हम कबूल करते हैं कि यह गांधीजी के शुद्ध प्रभाव का लक्षण नहीं कहा जायगा, क्योंकि इसमें परिस्थिति का दबाव है। लेकिन गांधीजी के विचार भी ऐसे हैं, जो हिन्दुस्तान की परिस्थिति में पैदा हुए और उसकी परिस्थिति के अनुकूल हैं। इसका यह अर्थ नहीं कि दुनिया की परिस्थिति को ये त्याज्य होंगे। गांधीजी ने सर्वोदय का जो अर्थशास्त्र बनाया, वह सारी दुनिया को लागू होता है; पर भारत के लिए वह अत्यन्त अपरिहार्य है। उसके बिना यहाँ के गरीबों को पूरा खाना नहीं मिल सकता। इसलिए दूसरी पंचवर्षीय योजना में ग्रामोद्योग की जो बात आयी है, उसमें गांधीजी के प्रभाव की झलक दिखाई देती है।

(४) गांधीजी के प्रभाव का सबसे बड़ा लक्षण हम इस बात में देख रहे हैं कि दूसरा किसी भी प्रकार का प्रलोभन न होते हुए भी आज भूदान-यज्ञ में हजारों कार्यकर्ता काया-वाचा-मनसा लगे हैं। इस आंदोलन को जितने त्यागी कार्यकर्ता मिले, उतने मिलने की हम आशा नहीं करते थे। कोरापुट में हमें खूब ग्रामदान मिला। जिन्होंने वह दिया, उनमें भारतीय संस्कृति और गांधीजी का प्रभाव तो दीखता ही है। किंतु हमारे मन पर वहाँ दूसरी ही बात का असर हुआ। वहाँ बारिश के चार महीने कई भाई-बहनें जंगलों में सतत गाँव-गाँव घूमकर भूदान का काम करते रहे। बीच-बीच में मलेरिया से बीमार पड़ते, लेकिन जरा अच्छे होते ही पुनः काम में लग जाते। वह एक अजीब दृश्य था। सिवा इसके कि उन्हें एक धर्मार्थ का आनन्द था, दूसरी और कोई भौतिक-प्राप्ति न होनेवाली थी। हम समझते हैं कि यह गांधीजी का प्रभाव है। यह ठीक है कि किसी एक व्यक्ति के प्रभाव की बात कैसे की जा सकती है? हमसे पूछा जाता है, तो हम कहते हैं कि यह भगवान् की इच्छा का परिणाम है। आखिर गांधीजी गये, तो रामजी का नाम लेकर ही गये। इसलिए हम इसे रामजी का ही प्रभाव मानते हैं।

जन-शक्ति का कार्य

हमें देश के अंदर भी बहुत कुछ करना होगा। हरएक देश की समस्याएँ सरकारी शक्ति से नहीं, बल्कि जनशक्ति से हल हो सकती हैं—यह दिखाना होगा। मैं सरकारी शक्ति और जनशक्ति में जो फर्क करता हूँ, वह महत्त्व का है। अवश्य ही आपने सरकार चुनी है, इसलिए सरकार जो काम करेगी, वह आप ही करते हैं—ऐसा समझा जायगा। फिर भी उसे 'जनशक्ति' नहीं कहा जा सकता। यहाँ 'नागार्जुन-सागर' का एक बड़ा सुंदर काम आरंभ हुआ है, जिसे आपकी आज्ञांकित सरकार ने किया है; इसलिए वह आपका ही काम है। फिर भी हम उसे जनशक्ति नहीं कहते। अगर आप मिल-जुलकर गाँव-गाँव में कुएँ खोदने का काम उठायें, तो वह जनशक्ति का काम होगा। फिर उसमें सरकार कुछ मदद करे, तो भी वह जनशक्ति का ही काम माना जायगा। सरकार ने कानून से अस्पृश्यता मिटा दी, तो हम उसे जनशक्ति का काम नहीं मानते; यद्यपि लोगों में फैले विचार के परिणामस्वरूप वह किया गया। जब हम आपस-आपस के भेद मिटायेंगे, तभी वह जनशक्ति का काम माना जायगा। सारांश, सरकारी शक्ति से भिन्न जनशक्ति से, जो कि अहिंसात्मक होती है, देश के मसले हल हो सकते हैं—यह सिद्ध करना होगा। इस तरह देश के बाहर देशों के प्रतिनिधियों द्वारा और देश के अंदर जनशक्ति से करने के, दोनों काम जब होंगे, तभी विश्वशान्ति होगी।

बड़े राष्ट्रों के प्रभाव में न आयें

चौथा सवाल यह था कि मध्य एशिया में यहूदी और अरबवालों का झगड़ा क्या अहिंसा के जरिये हल हो सकेगा? इसमें किसीको कोई शक नहीं कि यह झगड़ा अहिंसा से हल हो सकता है। खासकर जब कि अरब और यहूदी, दोनों एक बड़ी संस्कृति के वारिस हैं, दोनों जंगली नहीं और दोनों के पास एक अच्छी धर्म-पुस्तक पड़ी है, तब ऐसे सभ्य और सुसंस्कृत समाज में अहिंसा का परिणाम अवश्य हो सकेगा। हम तो यह भी मानते हैं कि जंगली लोगों में भी अहिंसा काम कर सकती है। बात इतनी ही है कि अरब और यहूदियों को दूसरों के प्रभाव में नहीं आना

चाहिए। आजकल होता यह है कि कहीं भी दो राष्ट्रों के बीच समस्या पैदा हुई, तो वे दूसरे भिन्न-भिन्न राष्ट्रों के साथ जुड़ जाते हैं। हमने अपनी आँखों देखा है कि पाकिस्तान देखते-देखते अमेरिका की छाया में आ गया। अगर इसी तरह हम भी किसी देश की छाया में आ जायें, तो भारत और पाकिस्तान के झगड़े मिटने के बजाय बढ़ते ही जायेंगे। इसलिए हम समझते हैं कि पं० नेहरू की यह बुद्धिमत्ता है कि वे दूसरे किसी देश की छाया में जाना पसन्द नहीं करते। अरब और यहूदी भी दूसरे देशों की छाया को हटाकर काम करें, तो वहाँ अहिंसा से काम हो सकता है।

भारत की नम्र भूमिका

पाँचवाँ प्रश्न यह था कि आज भारत एक ऐसा देश है, जिसका दुनिया में शान्ति की दृष्टि से कुछ वजन है। तो क्या वह यहूदी और अरबों की समस्या हल करने में कुछ मदद दे सकता है और क्या आप भी इसमें कुछ वजन डाल सकते हैं? हम समझते हैं कि भारत की भूमिका बहुत नम्र है और अहिंसा की शक्ति नम्र ही हो सकती है। इसीलिए वह ऊँची होती है। शास्त्रों ने कहा है कि "नम्रत्वेन उन्नमन्तः" जो नम्र होता है, वही ऊँचे चढ़ता है। अगर हिन्दुस्तान इस प्रकार की भूमिका लेगा कि हम दुनिया की समस्याएँ हल करनेवाले और जहाँ कहीं भी झगड़े हों, उन्हें मिटानेवाले हैं, तो हिन्दुस्तान का पतन होगा और दूसरे लोगों को भी मदद न मिलेगी। यद्यपि आज भारत में अहिंसा-वृत्ति है, फिर भी इसने अपनी सारी समस्याएँ अहिंसा से हल की हों, ऐसी बात नहीं। इसलिए भारत की यह मर्यादा और कर्तव्य है कि वह अपनी सारी ताकत यहीं की समस्याएँ अहिंसा से हल करने में लगाये। अगर बाहरी देश भारत की सेवा माँगें, तो उन्हें मदद देने के लिए हमेशा प्रस्तुत रहे, वह इतना ही कर सकता है। किन्तु अगर भारत अपना यह अधिकार समझेगा कि दुनिया के देशों के बीच हम ही ऐसे पैदा हुए हैं, जो सबके झगड़े हल करनेवाले हैं, तो वह बहुत भयानक परिस्थिति हो जायगी। वह अहंकार भी होगा, जिससे दुनिया की रक्षा होने के बजाय हानि ही पहुँचेगी और भय पैदा होगा। लेकिन दूसरा कोई उसकी सेवा माँगे, तो उसे

हमारा कुल सरकारों के साथ झगड़ा

आखिर उस भाई ने एक बड़ा मजेदार सवाल पूछा कि आपकी ग्रामराज्य की ओर विकेन्द्रीकरण की बातें चलती हैं, तो क्या आपका इस विषय पर सरकार से झगड़ा होगा या नहीं ? इसका उत्तर हम यह देते हैं कि झगड़ा हो भी सकता है और नहीं भी हो सकता। अगर झगड़ा न हुआ, तो वह प्रेम का परिणाम होगा—और झगड़ा हुआ भी, तो वह प्रेम का ही होगा। अगर सरकार की योजना गलत निकली, उसके साथ हमारा मेल न हुआ और हमें गाँव गाँव जाकर यह समझाने का मौका आया कि सरकार की योजना गलत है, तो उस हालत में जरूर झगड़ा हो सकता है। परन्तु हमारा यह झगड़ा प्रेम का रहेगा। हम सरकार का परिवर्तन करना चाहते हैं।

भूदान के काम में पहले कई प्रकार की शंकाएँ थीं। इससे नैतिक भावना तैयार होती है, यह अच्छा है। किन्तु इसमें जो छोटे-छोटे दान दिये जाते हैं, उनसे कई समस्याएँ पैदा हो गयी हैं—ऐसा विचार सरकार और दूसरे भी लोगों में चलता है। परन्तु जब से भूदान की परिणति ग्रामदान में हुई, तब से दिल्ली पर भी इसका अच्छा परिणाम हुआ है। हम समझते हैं कि भूदान ग्रामदान की दिशा में जोर करेगा, तो हम आज की सरकार का जल्द-से-जल्द परिवर्तन करने में समर्थ होंगे और प्रेम से ही झगड़ा टल जायगा। परंतु ऐसा न हुआ और झगड़े का मौका आया, तो भी हमें उसका कोई डर नहीं मालूम होता, क्योंकि हमारा तरीका प्रेम का है। इसलिए हमारे सामने यह समस्या उपस्थित ही नहीं होती।

लेकिन सरकार का हमारे साथ झगड़ा न हो, तो भी हमारा उसके साथ झगड़ा है ही। हम इस प्रकार की केन्द्रित सरकार ही नहीं चाहते। लेकिन यह तो जनता में इस प्रकार की ताकत पैदा करने पर निर्भर है। अगर हम वह ताकत तैयार करेंगे, तो सरकार को उस दिशा में जाना लाजिमी है, क्योंकि आखिर यह लोकमत की सरकार है। लेकिन तत्त्वतः देखा जाय, तो हम कबूल करते हैं कि इस बारे में हमारा कुल सरकारों के साथ झगड़ा है, तो हमारी भी सरकार के साथ है।

कंचिक चर्चा
२६-११-'५५

हैदराबाद राज्य

[२८-१२-'५५ से ६-३-'५६ तक]

भारत में मालकियत न रहेगी

हम जाहिर करना चाहते हैं कि भारत में मालकियत हरगिज टिक नहीं सकती, क्योंकि यहाँ उस पर दोनों ओर से हमले हो रहे हैं। भारतीय आत्मा को व्यापक मानते हैं और जो लोग आत्मा को मानते हैं, वे मालकियत नहीं टिका सकते। इस तरह यहाँ एक ओर से मालकियत पर इस आध्यात्मिक विद्या का प्रहार हो रहा है, तो दूसरी ओर से वैज्ञानिक युग का प्रहार और प्रसार हो रहा है। कारण आज सारे विश्व में यह भावना निर्माण हुई है कि हरएक मनुष्य को समान अधिकार मिलना चाहिए। इस प्रकार इधर विज्ञान-युग का, तो उधर आध्यात्मिक विद्या का दोहरा प्रहार हो रहा है। अगर एक ही बाजू से प्रहार होता, तो कम्बख्त मालकियत टिक सकती!

हिन्दुस्तान में अध्याम-विद्या पहले से ही है। अवश्य ही यहाँ के सब लोग मालकियत छोड़ नहीं पाते, पर जिन्होंने उसे छोड़ दिया, ऐसे फकीरों को प्रणाम कर यह अवश्य कहते कि आप पवित्र-पूज्य और हम आपकी चरण-रज हैं, हम निर्बल होने से हमसे मालकियत नहीं छूट पाती, पर आपका आशीर्वाद हम पर अवश्य होना चाहिए। सारांश, आत्मविद्या मालकियत छोड़ने को ही कहती थी, पर मोह के कारण वे उससे चिपके हुए रहते थे। किन्तु अब तो दूसरी बाजू से भी हमला हो रहा है। सारी जनता जाग रही है। सबका समानाधिकार मान्य किया जा चुका है। हरएक को एक-एक वोट का अधिकार है। वैसे तो आज वोट का नाटक ही चलता है, पर जैसे-जैसे जनता जग जायगी, वैसे ही-वैसे यह माँग बढ़ेगी। तब कोई भी सम्पत्ति और जमीन की मालकियत पसन्द न करेगा। आज विज्ञान भी भारत में तेजी से आ रहा है और आत्मज्ञान तो पहले से है ही। जहाँ आत्मज्ञान और विज्ञान, दोनों मिलकर दोनों ओर से प्रहार करेंगे, वहाँ मालकियत टिक ही कैसे पायेगी? इसलिए जो अपनी मालकियत जल्दी मिटा देगा, वही बुद्धिमान् साबित होगा।

एक बार हम एक किले पर चढ़ रहे थे। चढ़ते-चढ़ते एक ऐसी बीहड़ जगह पर आ गये कि आगे बढ़ना मुश्किल हो गया। पीठ और सिर पर सामान लदा था, नीचे उतरना भी मुश्किल था। ऊपर जाने का एक ही चारा था कि हम सारा सामान फेंक दें। हमने कुछ सामान गठरी बाँध फेंक दिया। वह गठरी लुढ़कती नीचे उतर गयी। हम उसे देखते और आवाज सुनते रहे। हमें वह आवाज अच्छी लगी, क्योंकि हम बच जो गये थे। आज भी यही सवाल है, 'हम अपनी गठरी बचाना चाहते हैं या खुद को ?' जो अपनी गठरी फेंक देंगे—मालकियत छोड़ देंगे, वे बच जायँगे और बुद्धिमान् साबित होंगे। उनकी जयजयकार होगी। उनकी मालकियत तो न रहेगी, पर नेतृत्व रहेगा। अब आपको यही तय करना है कि आप मालकियत से चिपके रहते हैं या उसे पटक देते हैं ?

येर्र पालेम
२८-१२-'५५

आध्यात्मिक ज्ञान का उपयोग सर्व-सुलभ : १६ :

हम गाँव-गाँव जाकर कहना चाहते हैं कि आपके गाँव में जैसे आप हैं, वैसे दूसरे भी भाई हैं। भगवान् ने आपके गाँव में जो नियामतें दी हैं, सारी सबके लिए हैं। इसलिए अपनी निज की मालकियत को बात छोड़ो और ऐसी वृत्ति रखो कि जितनी चीजें हमारे पास हैं, सबका भोग सबको मिले। कुछ लोगों को हमारी यह बात जँचती है। वे अपनी ताकत के अनुसार जमीन और सम्पत्ति का हिस्सा देने को राजी हो जाते हैं। कुछ लोग तो अपनी मालकियत भी छोड़ देते हैं, जैसे कि आज तक करीब ८५० गाँववालों ने अपनी पूरी-की-पूरी मालकियत छोड़ दी। उन्होंने समझ लिया कि हम और हमारे पड़ोसी अलग-अलग नहीं, एकरूप हैं, भले ही वे अलग दीख पड़ते हों।

माता और पिता अपने को अपने परिवार तक व्यापक मानते हैं। इसलिए उनके पास जो भी बुद्धि, सम्पत्ति और सेवाएँ होती हैं, सब-की-सब वे अपने बच्चों

को समर्पित करते हैं। उन्हें यह कहना नहीं पड़ता कि "बच्चों के लिए त्याग करना चाहिए या उनसे अलग मालकियत न रखनी चाहिए।" वे पहचानते हैं कि यह हमारा ही विस्तार है। संस्कृत में संतान को "तनय" कहते हैं। "तनय" का अर्थ होता है, "इस तनु का विस्तार।"

यह सच है कि इस तरह सभी अपने भाई-बहन, माता-पिता और लड़कों को एक परिवार के होने से एक समझते हों, सो बात नहीं। कुछ समझते हैं, तो कुछ नहीं भी समझते। जो नहीं समझते, वे आपस-आपस में लड़ते-झगड़ते हैं। राम-लक्ष्मण भाई-भाई थे, जिनका प्रेम सभी को मालूम है और वालि-सुग्रीव भी भाई-भाई रहे, जिनका परस्पर का द्वेष भी सबको मालूम ही है। फिर भी यह एक माया है, जिसके कारण बहुत-से परिवारवाले ऐसा समझते हैं। वे भी ज्ञानपूर्वक समझते हैं, सो नहीं। एक शेरनी भी चन्द महीनों तक अपने बच्चे पर प्यार करती और उसे दूध पिलाती है। किन्तु थोड़े ही दिनों के बाद उसे अलग कर देती है। बाद में वे एक-दूसरे पर गुर्राते भी होंगे। लेकिन थोड़े दिनों के लिए ही क्यों न हो, उन्हें अपने बच्चे के साथ एकता मालूम होती ही है। वह कोई ज्ञान नहीं, माया है। इस माया के कारण ही क्यों न हो, हम अपने परिवार के साथ एकरूप हैं। किन्तु अगर लोगों को ऐसा माया से नहीं, बल्कि ज्ञान से मालूम हो जाय, तो हम समझते हैं कि वे आज परिवार तक ही सीमित अपने प्रेम का विस्तार करने के लिए तैयार हो जायँगे।

महात्माओं के अनुभव का उपयोग सबके लिए

आप कहेंगे कि 'बाबा ने यह तो बहुत बड़ी बात बतायी। यह तो ज्ञानी, संत और महात्मा लोग ही समझ सकते हैं।' किन्तु यह ठीक नहीं। इसे एक मिसाल से समझिये! विज्ञान द्वारा आविष्कृत चीजें सभी लोग नहीं समझते। पहले कुछ वैज्ञानिक ही समझते हैं और उसके बाद सब उनका उपयोग कर सकते हैं, जो विज्ञान को नहीं जानते। लाउडस्पीकर किस तरह काम करता है, यह वैज्ञानिक ही जानता है, मैं नहीं जानता। फिर भी मैं उसका उपयोग करता हूँ। उपयोग करनेवालों को उस विज्ञान के अनुभव की जरूरत नहीं रहती।

ठीक इसी तरह मनुष्य-जीवन के आध्यात्मिक क्षेत्र में भी हुआ करता है। अवश्य ही यह सही है कि 'हम सारे एक हैं' इस तरह का ध्यान, विचार और चिन्तन आरम्भ में महात्माओं को ही प्राप्त होता है, फिर भी उसका उपयोग सारे लोग कर सकते हैं।

मैं एक दूसरी मिसाल देता हूँ। मरने के बाद आत्मा की क्या गति होती है? यह हम कोई भी नहीं जानते। लेकिन महात्माओं ने इस पर कुछ चिन्तन किया और उन्हें कुछ अनुभव भी हुआ है। चाहे उन अनुभवों में पूरी एकरूपता न हो, कुछ भिन्नता है, फिर भी उन्होंने निर्णय दिया कि आत्मा की समाप्ति देह की समाप्ति के साथ नहीं होती। मरने के बाद भी उसकी कुछ प्रगति जारी रहती है। अब यह चिन्तन और अनुभव हम सबको नहीं हो सकता। फिर भी कोई मरता है, तो हम उसका श्राद्ध करते ही हैं। उसे भक्तिपूर्वक कुछ समर्पण करते ही हैं। किसीकी भी समाधि देखकर मुसलमान खड़ा रहता और 'खुदा उसको शान्ति बख्शे' इस प्रकार की प्रार्थना करके ही आगे बढ़ता है। इस तरह परलोक की बात हम कुछ भी नहीं जानते, फिर भी जिन्होंने जाना, उनके पीछे अपने जीवन में उनका प्रयोग करते और श्रद्धा भी रखते हैं। आज लाखों-करोड़ों हिन्दू-मुसलमानों को पूछा जाय कि मरने के बाद की बात तुम जानते हो? तो कोई भी नहीं कहेगा कि 'हम जानते हैं।' कोई नहीं बता सकेगा कि मरणोत्तर आत्मा की क्या गति होती है। लेकिन एक श्रद्धा सबको है और सभी पूर्ण विश्वास रखते हैं। उस विश्वास का हमारे जीवन पर असर होता है। कितने ही धर्म-कार्य हम उसी विश्वास से करते हैं। हम अपना कितना ही समय इसमें देते हैं, कितनी ही सम्पत्ति, पैसा खर्च करते और कितने ही आयोजन इसके लिए किये जाते हैं।

कहने का तात्पर्य यही है कि वैज्ञानिक को जो ज्ञान होता है, वह हरएक को नहीं होता, फिर भी उसका उपयोग हर कोई कर सकता है। हर मनुष्य टेलीग्राम भेज सकता है, टेलीफोन कर सकता है, लाउडस्पीकर पर बोल सकता है। ये सारी चीजें किस तरह चलती हैं, यह हरएक को मालूम नहीं होता। बिजली का उपयोग हरएक घर में होता है। बटन दबाते ही वह खुल जाती और दबाते ही

बन्द हो जाती है। मैं जब जेल में था, तो मैंने एक बिजली का दीपक देखा था। उसमें एक चाभी थी, जिसे दबाने से लाइट खुलती और बुझती भी थी। एक ही क्रिया से जलाना और बुझाना, दोनों काम होते थे। मैंने पहले कभी ऐसा नहीं देखा। ताला खोलने के लिए भी चाभी एक प्रकार से घुमानी होती है और बन्द करने के लिए दूसरे प्रकार से। लेकिन उसमें एक ही क्रिया थी। मैं उसका विज्ञान नहीं जानता था, फिर भी वह क्रिया मैंने जान ली। सारांश, जैसे ज्ञान वैज्ञानिकों को ही होता है, परन्तु उसका उपयोग सारा समाज बड़े विश्वास के साथ कर सकता है; वैसे ही हम सारे एक हैं, यह ज्ञान निःसन्देह महापुरुषों को ही होता है, परन्तु उसका उपयोग हम सारे कर सकते हैं। हम लोगों को वही उपयोग सिखा रहे हैं।

आत्मा की एकरूपता का भान

मैं आपसे कह रहा हूँ कि आप एक गाँव में पड़ोसियों के साथ रहते हैं, तो उन्हें एकरूप समझें। जो भी सुख-दुःख भोगना है, वह सब मिलकर भोगना है, ऐसा निश्चय कीजिये। छोटे बच्चे भी अपने हृदय में कुछ बातें आती हैं, तो बिना कहे नहीं रह पाते। मन में खुशी की बात आते ही फौरन दूसरे लड़के को दिखा देने पर उन्हें खुशी होती है, उनकी आत्मा फैल जाती है। वे कहते हैं कि बड़े आनन्द की बात मालूम हुई है, तो उसे अपने पास ही क्यों रखें! समाज-शास्त्री यही बात दूसरे शब्दों में कहते हैं। वे कहते हैं कि 'मनुष्य सामाजिक प्राणी है। याने मनुष्य अकेला ही रहे, तो उसे आनन्द न आयेगा।' पर यह तो बड़ी ऊपर-ऊपर की भाषा हुई। मनुष्य को सिर्फ दूसरे मनुष्यों के ही साथ रहने में आनन्द नहीं आता। उसे बिल्ली, घोड़ा, कुत्ता और अन्य पशुओं के साथ रहने में भी आनन्द आता है। यह भी हमें महात्माओं ने सिखाया है। गाय या कुत्ते से हमारी दोस्ती पहले से ही नहीं थी। जैसे शेर आदि जंगल के प्राणी हैं, वैसे ये भी थे। मनुष्य इनकी शिकार भी करते थे। तो महात्माओं ने सोचा कि उनका और हमारा एक ही रूप है, तो उससे प्रेम बने, ऐसी कोई युक्ति ढूँढ़नी चाहिए। हजारों वर्षों तक प्रयोग किये गये, तब ये गाय, कुत्ते, घोड़े आदि हमारे

दोस्त बने। इसलिए मानव में दूसरे के साथ सुख-दुःख भोगने की वृत्ति इस-लिए नहीं कि वह केवल सामाजिक प्राणी है, बल्कि इसलिए है कि वह आत्मा की एकरूपता की वृत्ति है। इसलिए सब समूह में इकट्ठा होकर प्रार्थना करते हैं, तो उससे बड़ी ताकत बनती है। आपमें से कोई अकेला मौन रखने की कोशिश करे, तो रख नहीं सकता। लेकिन हम सबने मिलकर रखना तय किया, तो बच्चों ने भी मौन रखा। बच्चे अगर तय करें कि आपस-आपस में लड़ेंगे, तो कुल बच्चे आपस-आपस में लड़ना शुरू कर देंगे। इस प्रवृत्ति से आत्मा की एकरूपता का ही सूचन होता है।

हम अकेले मौन ध्यान करें, इससे बेहतर है कि एकत्र होकर मौन चिंतन करें। हम अकेले-अकेले भोग लें, इससे बेहतर है कि सारे गाँववाले भोग लें। इसीलिए कभी-कभी सहस्र-भोजन या ज्ञाति-भोजन होता है, तो कितना आनन्द आता है! हमने एक गाँव में ग्राम-भोजन देखा। हर घर से भोजन के लिए चीजें दी गयी थीं। हमने पूछा कि ग्राम-भोजन तो रोज होता ही है—हरएक गाँव में, हरएक घर में। इस तरह हरएक घर से चीजें इकट्ठी कर रसोई बनाने में क्या आनन्द आया? तो जवाब मिला कि 'हम सब भोजन के लिए इकट्ठे हो गये, इसलिए हमें आनन्द है।' इसका अर्थ यह हुआ कि जहाँ-जहाँ आत्मा की व्याप-कता का भान होने का मौका आता है, वहाँ-वहाँ आनन्द मिलता है। इसीलिए हम समझते हैं कि ये भाई-बहन एक हैं, यद्यपि इनकी अलग-अलग जातियाँ दीखती हैं। परमेश्वर ने जो चीजें हमें दी हैं, उन्हें सबको बाँटकर खाना चाहिए। बहुत सारी चीजें जमीन में से मिलती हैं। खाना, कपड़ा, दूध, मिट्टी से ही मिलता है। घर तो मिट्टी से बनता ही है। इसीलिए हम कहते हैं कि परमेश्वर ने दी हुई चीजों को बाँटना ही है, तो पहले मिट्टी बाँटनी चाहिए।

छोटे नहीं, बड़े मालिक बनाना हमारा लक्ष्य

आप कहेंगे कि बाबा ने आज हमें बड़ा आत्मज्ञान दिया! लेकिन यह केवल आत्मज्ञान की नहीं, व्यवहार की भी बात है। जैसे पहले देहात अलग-अलग रहते थे, वैसे आज नहीं रह सकते। आज तो कुल समाज एक बन गया है।

विज्ञान फैल जाने से मनुष्य-मनुष्य के सम्बन्ध नजदीक आ गये हैं। इसलिए जो गाँव पूरा एक परिवार बनायेगा, वही टिक पायेगा। जिस गाँव के लोग अपने अलग-अलग परिवार बनायेंगे, कोई किसीको न पूछेगा, तो वह गाँव टिक नहीं सकता। इसलिए आज यह सामाजिक आवश्यकता पैदा हो गयी है कि सारा गाँव एक बने और आत्मा की व्यापकता के आनन्द के लिए तो उसकी जरूरत है ही। इसलिए हमारी माँग है कि जमीन सबकी होनी चाहिए। जमीन की मालकियत ही गलत है। फिर भी अगर मालकियत चाहते हो, तो आपको छोटी मालकियत नहीं मिल सकती, बड़ी मिल सकती है। इस गाँव में दो हजार एकड़ जमीन है, तो आप उस दो हजार एकड़ जमीन के मालिक हो सकते हैं, पर २-४ एकड़ के नहीं। आज आप छोटे मालिक हैं, पर कल बड़े मालिक हो जायँगे। मान लीजिये, एक घर में ५ लोग और २५ एकड़ जमीन है, तो परिवार का हर सदस्य कहेगा कि हमारी २५ एकड़ जमीन है। लेकिन इसके आगे हम चाहते हैं कि '२५ एकड़ का' ही नहीं, '२ हजार एकड़ का' ऐसा उसके मुँह से निकले। गाँव में कोई भूमिहीन न रहे, कोई छोटा मालिक न रहे, सभी बड़े मालिक बन जायँ, तभी भारत की ताकत प्रकट होगी। यह ताकत भारत में पड़ी है और इसीलिए लोग समझते और दान देते हैं। नहीं तो कौन दान देता? जब कि एक-एक एकड़ के लिए झगड़ा होता और लोग अदालत में जाते हैं, आज ५ लाख लोगों ने ४० लाख एकड़ जमीन दान में दी! यह हिंदुस्तान में ही बन सकता है, क्योंकि यहाँ ऋषियों का ज्ञान फैला हुआ है। हरएक को उसका ज्ञान नहीं होता, लेकिन उसका उपयोग हर कोई कर सकता है।

पुल्लुर
१३-१-'५६

भू-दान-यज्ञ का महत्त्व इसलिए नहीं है कि उससे भूमि का मसला हल होता है, बल्कि इसीलिए है कि इससे शान्ति का उपाय हासिल होता है। शान्ति के लिए यह जरूरी है कि सरकारों के हाथों में आग लगाने की शक्ति न हो। इसके लिए लोगों को अपने मसले अपनी शक्ति से हल कर सरकार को अपने हाथ में रखना चाहिए। आप पूछ सकते हैं कि आज भी सरकार हमारे हाथों में है, क्योंकि हम जिन्हें वोट देते हैं, वे ही राज्य चलाते हैं। लेकिन हम आपसे इससे बहुत ज्यादा चाहते हैं। हम चाहते हैं कि आप एक एक काम खुद करने लग जायँ, जिससे सरकार का उतना काम कम हो। इसीलिए हम भूमिवानों से कहते हैं कि आप भूमि-समस्या को हाथ में लेकर गाँव के कुल भूमिहीनों को जमीन देने का निश्चय कीजिये। गाँव की एक सभा बुलाइये और हिसाब कर सबके लिए पर्याप्त भूमि प्राप्त कीजिये। इस तरह सबकी रजामन्दी से यह मसला हल हो जाय, तो सरकार को उसे मान्य करना ही पड़ेगा। इस तरह जन शक्ति प्रकट होती है, तो सरकार की शक्ति क्षीण हो जाती है। फिर आज की सरकारों के हाथ में आग लगाने की जो शक्ति है, वह भी नहीं रहेगी।

कहा जाता है कि दुनिया के चार बड़ों के हाथ में आज यह शक्ति है। वे चार बड़े क्या कोई सात-आठ फुट लम्बे आदमी हैं या दुनिया के सर्वश्रेष्ठ महात्मा हैं? बुद्ध भगवान् के जमाने में एक ही बुद्ध थे, तो क्या आज चार बुद्ध हो गये? ईसामसीह के जमाने में एक ईसा थे, कृष्ण भगवान् के जमाने में एक कृष्ण थे, तो क्या आज भगवत्कृपा से चार-चार ईसा या कृष्ण हो गये? ऐसे चार बड़ों के हाथ में दुनिया को आग लगाने की शक्ति हो, यह उचित नहीं। हम इस तरह की शक्ति किसीके भी हाथ में देना नहीं चाहते। हम तो यहाँ तक कहते हैं कि दुनिया का कल्याण करने की शक्ति भी किसीके हाथ में न रहे। किन्तु यह तो तब होगा, जब गाँव-गाँव के लोग समझ जायँगे कि हमें

अपने-अपने गाँव का कारोबार चलाना है और जब वैसी योग्यता उनमें आयेगी। भू-दान-यज्ञ से हम यही आशा करते हैं कि गाँव-गाँव में यह शक्ति पैदा होगी।

भूमिवान् भूदान का काम उठाकर नेता बनें

हमने कई बार कहा है कि बड़े लोग नाहक अपने हाथ जमीन और सम्पत्ति रखकर नेतृत्व क्यों खो रहे हैं? हम देख रहे हैं कि जमीन तो उनके हाथों से जा रही है। चाहते हैं कि वे सामने आकर कहें कि बाबा, भू-दान का काम आपका नहीं, हमारा है। हम उनके हाथों में यह काम सौंपने के लिए राजी हैं और 'दाता-संघ' बनाकर यही कर रहे हैं। हम दाताओं से कहते हैं कि बाबा की तरफ से आपको गाँव-गाँव जाकर जमीन माँगने का अधिकार मिला है। हम चाहते हैं कि जनता की शक्ति जाग्रत हो, अच्छे लोगों की शक्ति बने और वे जनसेवा के काम में लग जायें। हम जमीनवालों, सम्पत्तिवालों और पढ़े-लिखे लोगों की गिनती अच्छे लोगों में करते हैं। वे अगर बाबा का काम अपना समझकर उठा लेंगे, तो यह उनके नेतृत्व में आ जायगा। जो चीज उन्होंने पकड़ रखी है, उसे छोड़ेंगे, तो दूसरी बड़ी चीज हाथ में आयेगी। पेट भरने के लिए मिल जाय, तो काफी है, पेटी भरने के लिए क्यों चाहिए? पेटी भरने से तो चोरों को सुविधा हो जायगी। जमीन देने से आपको लोगों का प्रेम हासिल होगा। फिर आज का खाना आज मिल जाय, तो कल का खाना आप कल पैदा कर सकेंगे। २५ सालों के बाद यह चीज काम आयेगी, यह समझकर इसे पकड़े रहने से बेहतर है कि जनता के उपयोग के लिए इसका दान कर दिया जाय।

आज आपके हाथों में नेतृत्व नहीं है, फिर भी हम आपकी गिनती अच्छे लोगों में करते हैं। लेकिन कल अगर बाबा के मुँह से यह निकल जाय कि 'जमीनवाले, संपत्तिवाले और पढ़े-लिखे लोग बुरे हैं', तो दूसरों के हाथ में नेतृत्व चला जायगा और कशमकश शुरू हो जायगी। जमीनवाले कमजोर तो नहीं होते, इसलिए उनके खिलाफ कोई उठ खड़े हो जायें, तो लड़ाई लाजिमी है। पर इससे न भूमिहीनों का भला होगा और न भूमिवानों का ही। इसीलिए

हम चाहते हैं कि जिन्हें भगवान् ने जमीन, संपत्ति या तालीम दी है, वे सामने आयें, तो उन्हें बाबा की मदद मिलेगी याने नैतिक बल मिलेगा। उसके दो परिणाम होंगे : (१) जनशक्ति बढ़ेगी और सरकार का एक-एक काम लोगों के हाथ में आता जायगा और (२) गलत लोगों के हाथों में नेतृत्व जाने से रुकेगा। किन्तु अगर आप (जमीनवाले आदि) लोग ही गलत हों, तो फिर हम लाचार हैं। फिर तो खूनी क्रान्ति अटल है। लेकिन हम विश्वास से काम कर रहे हैं। हमारा विश्वास है कि हिन्दुस्तान के हृदय में अच्छाई है। अभी तक हमें निराश होने का कोई कारण नहीं मिला।

क्रांति का सस्ता सौदा

अब तक सारे देश में ५ लाख लोगों ने ४० लाख एकड़ का दान दिया है। लेकिन यह तो 'सिंधु में बिंदु' जैसा ही हुआ। अभी बहुत करना बाकी है। बिहारवालों ने २४ लाख एकड़ जमीन दी या उड़ीसावालों ने ८५० ग्राम दान दिये, तो उससे यहाँ के लोगों को क्या लाभ होगा? उड़ीसा में खूब बारिश होने पर तेलंगाना के लोग खुश कैसे होंगे? सारांश, कुल देश के सब गाँवों में यह काम होना चाहिए, तभी सबका समाधान होगा। इसलिए विश्वशांति और नैतिक उत्थान के हित में हम यहाँ के भूमिवानों से प्रार्थना करते हैं कि वे उठ खड़े हों और कहें कि 'यह काम बाबा का नहीं, हमारा है।' आज बाबा माँगता भी बहुत थोड़ा है, याने सिर्फ छठा हिस्सा। हम पूछना चाहते हैं कि क्या दुनिया में किसी भी क्रान्ति का इतना सस्ता सौदा हुआ है? हिंदुस्तान की ३० करोड़ जेरकाश्त जमीन का छठा हिस्सा याने ५ करोड़ ही हमने माँगा है। अगर साल-डेढ़ साल में इतना हो जाता है, तो हिंदुस्तान के लोगों से परस्पर प्रेम-संबंध बढ़ता है। प्रेमभाव बढ़ने से आगे जनशक्ति से जनता का संगठन करना आसान होगा। फिर उसीके आधार पर ग्राम लोगों की ताकत बन सकती और सरकार की शक्ति विकेन्द्रित हो सकती है। यह सारी शांतिमय क्रांति की प्रक्रिया है। हम कल्पना ही नहीं कर सकते कि इससे सस्ता और कोई क्रांति का कार्यक्रम हो सकता है।

हम भूमिवानों से कहते हैं कि क्रांति का इससे सस्ता, कम तकलीफवाला तरीका आप ही हमें बता दें, तो उसे हम स्वीकार करने के लिए तैयार हैं। पर अगर दूसरा कोई तरीका न हो, तो इस तरीके को अपनाकर उठा लीजिये। अगर कोई यह कहे कि आज की स्थिति में क्रांति की, बदल की कोई जरूरत नहीं, तो फिर उनसे हम कुछ नहीं कह सकते। हमारा विश्वास है कि देश में एक शख्स भी ऐसा नहीं होगा, जो कहेगा कि देश की आज की स्थिति में बदल नहीं करना चाहिए। हाँ, यह हो सकता है कि किसीको मोह के कारण देने की हिम्मत न होती हो। किंतु हम कहना चाहते हैं कि आज आप इतना भी त्याग करने को तैयार नहीं होते—साल-डेढ़ साल में छठा हिस्सा देकर सब भूमिहीनों को भूमि नहीं देते—तो आगे आपको लाचारी से बहुत ज्यादा त्याग करना पड़ेगा। फिर बहुत ज्यादा तकलीफ और दुःख होगा। अंग्रेजी में कहावत है कि फटनेवाला कपड़ा मौके पर सी लें, तो एक ही तागे में काम चल जाता और कपड़ा भी काफी टिकता है। हम चाहते हैं कि हमारे हृदय में जो आग है, उसका आपको भी दर्शन हो। हमारा दावा है कि हमारे हृदय में गरीबों के लिए जितनी सहानुभूति है, उतनी ही सहानुभूति अमीरों के लिए भी है। हमारा यह भी दावा है कि इस आन्दोलन से गरीबों को जितना लाभ होगा, अमीरों को उससे कम लाभ न होगा। जमीन के मालिक जितने जल्दी इस बात को समझेंगे, उतना उनका ही भला होगा, गरीबों का भला होगा और देश का भला होगा। खुशी की बात है कि कुछ जमींदार इसे समझे हैं और भूदान के काम में लगे हैं। किंतु इतना ही पर्याप्त नहीं है।

भारतीय हृदय पर श्रद्धा

हम बिल्कुल निराश नहीं हैं और कार्यकर्ताओं को भी निराश न होना चाहिए। हम इसलिए निराश नहीं होते कि इसमें ईश्वर की इच्छा है और ईश्वर ही इसे करनेवाला है। किंतु हम जाहिर करना चाहते हैं कि इस विज्ञान के जमाने में कोई भी अच्छा तरीका अगर शीघ्र काम करनेवाला हो, तभी वह 'तरीका' कहलाया जायगा। आज हम जिस गति से काम कर रहे हैं, उसी गति से

इसे सौ साल में पूरा करें, तो यह कोई काम नहीं। ५ साल पहले जब हम तेलंगाना में घूमते थे, तो जितनी जमीन मिलती थी, उससे चार गुना अधिक आज मिल रही है। फिर भी इतने से हमारा समाधान नहीं होता। होना यह चाहिए कि तेलंगाना के लोग एक साल में कुल जमीन का छठा हिस्सा बाँट दें और कार्यकर्ता जी-जान से उसमें लगें। जिस तरह जयप्रकाशजी ने यह पहचानकर कि 'क्रांति की अगर कोई सूरत हो सकती है, तो इसी तरह से हो सकती है', जीवन-दान दिया, उसी तरह कार्यकर्ता निकलें। इसमें सिर्फ भू-दान के लिए नहीं, बल्कि सर्वोदय-मंदिर की स्थापना के लिए जीवन-दान देना है। भूदान उसकी बुनियाद है। इसमें हम सबका सहयोग चाहते हैं। हम नम्रतापूर्वक भूमिवानों से कहना चाहते हैं कि आप सामने आइये और नेतृत्व लीजिये, इसीसे आपकी इज्जत रहेगी। हम कहना चाहते हैं कि जिन जमीनवालों ने भू-दान दिया है, उनकी इज्जत बढ़ी है और उन्होंने लोगों का प्रेम और आदर हासिल किया है। लेकिन इससे आपको सिर्फ इज्जत ही नहीं, आत्म-समाधान भी हासिल होगा। आप आज जमीन रखकर क्या करेंगे, जब कि खुदकाश्त नहीं करते? जो पढ़ना नहीं जानता, वह अपने पास पुस्तक कब तक रख सकेगा? आखिर मनुष्य को यह शरीर भी छोड़कर जाना पड़ता है। हम दावा करते हैं कि आज भूमिहीन लोग शान्ति से राह देख रहे हैं कि बाबा उन्हें जमीन दिलायेगा। हम यह भी दावा करते हैं कि इस आन्दोलन से भूमिवाले काफी बचे हैं। और हम यह भी चाहते हैं कि वे बचे रहें, क्योंकि हम उन्हें अच्छे लोग मानते हैं। लेकिन सच्ची उदारता प्रकट होगी, तो पूरा रक्षण होगा। चन्द लोगों के औदार्य से सब लोग न बचेंगे, सभी को औदार्य प्रकट करना होगा। गंगा और और गोदावरी के समान जब उदारता का अखण्ड प्रवाह बहेगा, तभी भारत में शक्ति प्रकट होगी।

यहाँ के सम्राट् सर्वस्व त्यागकर गंगा किनारे तपस्या करने जाते थे। यहाँ के राजा अपनी सारी सम्पत्ति दान देकर हाथ में भिक्षा-पात्र लेकर निकलते थे। ऐसे त्यागियों की यह भूमि है। सारी दुनिया की नजरें इसकी तरफ लगी हैं, यद्यपि काम बहुत थोड़ा हुआ है। हिन्दुस्तान के गरीबों को जमीन मिलती है, तो उससे

दुनियावालों को क्या लाभ होगा ? फिर भी उनकी आँखें इस काम की तरफ इसीलिए लगी हैं कि इससे शान्ति की शक्ति प्रकट होगी। फिर उस शक्ति से दुनिया के मसले हल हो सकेंगे।

ग्रामवाले अपनी शक्ति पहचानें

जब यहाँ के विद्यार्थियों ने मुझसे पूछा कि 'विशाल आन्ध्र होना चाहिए या तेलंगाना ?', तो हमने कहा : 'कुबेर से मुलाकात हुई, तो दो पैसे की तरकारी माँगी ! यात्रा से सवाल पूछना ही है, तो विश्वशान्ति कैसे होगी, देश में शान्तिमय क्रान्ति कैसे होगी, धर्म-चक्र-प्रवर्तन कैसे होगा, जनता के हाथ में सत्ता कैसे आयेगी ? ऐसे सवाल पूछने चाहिए।' वे पहचानते ही नहीं कि उन्हें दुनिया के नागरिक होने का मौका मिला है, तो इन छोटी-छोटी चीजों के बारे में न सोचना चाहिए। अभी पण्डित नेहरू ने कहा था कि 'हमें प्रधानमन्त्री-पद से जरा मुक्त कीजिये। हम अध्ययन-चिन्तन करना चाहते हैं', तो सब लोग घबड़ा उठे और कहने लगे : 'आपके बिना हमारा कैसे चलेगा ?' लेकिन अगर गाँव-गाँव में ग्राम-राज्य बना होता, तो पचासों गाँव के लोग आगे आकर उनसे कहते कि 'ठीक है, आप आराम कीजिये, हम राज्य चलायेंगे।' किन्तु आज हममें राज-कारोबार चलाने की शक्ति नहीं है। वह शक्ति तब आयेगी, जब गाँव-गाँव के लोग ग्राम-शक्ति से, ग्राम-बुद्धि से और ग्रामवालों के सहयोग से अपने मसले हल करेंगे। फिर देश की योजना मे जहाँ कोई मुश्किल पैदा होगी, वहाँ नन्दाजी (नियोजन-मन्त्री) गाँववालों से पूछने आयेंगे और गाँववालों ने अपने मसले जिस तरीके से हल किये होंगे, उसी नमूने से वे देश का मसला हल करेंगे। इस तरह ग्राम-ग्राम में सरकार के सलाहगार होने चाहिए।

. प्राचीन काल में यही होता था। हैदरअली, शिवाजी, मुहम्मद पैगम्बर, कबीर अनपढ़ ही थे। जब पैगम्बर के लोगों ने कहा कि आप कोई चमत्कार बताइये, तो उन्होंने कहा : 'मेरे जैसा अनपढ़ मनुष्य आपको बोध दे रहा है, इससे बढ़कर क्या चमत्कार हो सकता है।' महाराष्ट्र के लोग तुकाराम के नाम पर लट्टू हैं और एम० ए० के लिए भी उसके अभंग पढ़ाये जाते हैं। लेकिन

तुकाराम एक-छोटे से गाँव का किसान था। किन्तु उसकी बुद्धि इतनी व्यापक हो गयी थी कि आज भी सारा महाराष्ट्र उसका नाम लेता है। इस तरह की सारी शक्ति हमारे गाँव में पड़ी है। उत्तम नेता, सेनापति और कवि गाँव में पैदा हो सकते हैं। जहाँ पर पेड़ का दर्शन भी नहीं होता और गेहूँ कैसे पैदा होता है, यह भी मालूम नहीं, उस हैदराबाद में रहनेवाले क्या कवि बनेंगे ? कवि तो वे बनेंगे, जिनका सृष्टि के साथ सम्बन्ध हो। जनता में यह जो सारी शक्ति है, उसे हम प्रकट करना चाहते हैं। अगर समझनेवाले इसे समझकर काम में लग जायँगे, तो यह सब हो सकता है और विश्वशान्ति की राह भी खुल सकती है।

महबूबाबाद
१६-१-'५६

'शान्ति की शक्ति को सिद्ध करना है' : १८ :

पाँच साल पहले जब हम तेलंगाना में घूमते थे, तब यहाँ कम्युनिस्टों का बहुत उपद्रव रहा। वे रात में आकर लोगों को सताते थे और दिन में सरकार की सेना के कारण तकलीफ होती थी। इस तरह यहाँ के लोग बहुत दुःखी थे। किन्तु हम जानते थे कि यद्यपि कम्युनिस्टों ने गलत रास्ता अपनाया है, फिर भी उनके मन में गरीबों के प्रति प्रेम है। हम उसी समय से उनसे कहते आ रहे हैं कि 'चोरों की तरह रात को क्यों लूटते हो ? मेरे जैसे दिनदहाड़े प्रेम से लूटना सीखो।' खुशी की बात है कि अब उनके विचार बदल रहे हैं, उन्हें भी विश्व-शान्ति की आवश्यकता महसूस होने लगी है। जब उड़ीसा में उन्होंने विश्वशान्ति के एक पत्रक पर मेरा हस्ताक्षर माँगा, तो मैंने उन्हें समझाया कि 'विश्वशान्ति दस्तखत से न होगी। वह तभी होगी, जब हम उसके लायक काम करेंगे।' हमने उनसे यह भी कहा कि 'आप भूदान के काम में मदद करें, तो उसे बल मिलेगा।'

कच्ची श्रद्धा

सोचने की बात है कि कम्युनिस्टों के विचार क्यों बदले ? बीच में उन्हें बहुत तकलीफ उठानी पड़ी, इसलिए नहीं बदले। वे तो बहादुर हैं, हम उनकी बहुत

कद्र करते हैं। किन्तु हम जानते हैं कि हाइड्रोजन बम के कारण दुनिया में ऐसी परिस्थिति पैदा हुई, जिसने हरएक को विचार करने के लिए मजबूर किया। आज सबको शान्ति की जरूरत महसूस हो रही है और उसके लिए कुछ श्रद्धा भी पैदा हुई है। सिर्फ कम्युनिस्टों की ही नहीं, बल्कि बहुतों की वह श्रद्धा कची है। यह कहना अधिक उचित होगा कि 'उनकी हिंसा पर से तो श्रद्धा उड़ गयी, पर, अभी तक वह अहिंसा और शान्ति पर नहीं बैठी है।' हमें शान्ति के जरिये कोई बड़ा मसला हल कर उसकी शक्ति सिद्ध कर देनी होगी, तभी शान्ति पर उनकी श्रद्धा बैठेगी। भूदान के जरिये उसीका प्रयत्न हो रहा है, यह हमारा नम्र दावा है। आज भूदान के कारण लोगों की आशाएँ बढ़ रही हैं। तो उन्हें विश्वास दिलाने लायक काम करना होगा। हिन्दुस्तान की जनता तब तक चैन नहीं लेगी, जब तक देश के कुल भूमिहीनों को जमीन नहीं मिलेगी। हम शान्ति खोना नहीं चाहते है, पर विश्रान्ति भी लेना नहीं चाहते। शान्ति में ही शक्ति होती है, अशान्ति में नहीं। उसमें शक्ति इसलिए होती है कि मनुष्य विवेक और विचार करता है। सभी सच्ची क्रान्तियाँ विवेक और विचार से ही होती हैं। अतः हम चाहते हैं कि देश के हर गाँव के लोग स्वेच्छा से अपनी जमीन और सम्पत्ति की मालकियत छोड़ दें। सभी कार्यकर्ता हमारे हैं। जो हमारा विचार समझेंगे, वे ही हमारे कार्यकर्ता बनेंगे।

'दाता-संघ' का विस्तार

इन दिनों हम जगह-जगह 'दाता-संघ' भी बना रहे हैं। भू-दान, संपत्ति-दान आदि की तरह यह नया आन्दोलन भी खूब जोर पकड़ेगा। हम जगह-जगह दाताओं का एक संघ बनाकर उन्हें आसपास के गाँवों में जाकर जमीन प्राप्त करने का अधिकार देते हैं। दाताओं की संख्या को वे ही बढ़ायेंगे और आगे चलकर कुल जनता दाता-संघ में आयेगी। फिर एक दिन निश्चित कर दिया जायगा, जब कि हिन्दुस्तान के कुल गाँवों में जमीन का बँटवारा होगा। जिस तरह हिन्दुस्तानभर एक ही निश्चित दिन, दीवाली, होली या ईद मनायी जाती है, उसी तरह बँटवारे का भी उत्सव मनाया जायगा।

विश्वशांति के लिए आन्दोलन

हम इसी तरह की शान्तिमय क्रान्ति लाना चाहते हैं। उससे जमीन का मसला तो हल होगा ही, एक नयी जनशक्ति पैदा होगी। वह बिना तलवार या शस्त्र की शक्ति होगी, पर कारगर रहेगी। यह आन्दोलन केवल भूमि के बँटवारे के लिए नहीं, *विश्वशान्ति की शक्ति निर्माण करने के लिए भी हो रहा है। विश्वशांति* अशक्त या दुर्बल नहीं हो सकती, वह शक्तिशाली ही हो सकती है। अहिंसा हिंसा से यह नहीं कह सकती कि चाहे मसले हल हों या न हों, तू जा और मैं आऊँगी। जब अहिंसा समाज के बड़े-बड़े मसले हल कर लेगी, तभी वह हिंसा से कहेगी कि अब तू जा। इसलिए विश्वशान्ति चन्द राजनीतिज्ञों के हाथ में नहीं, जनता के हाथ में है। जब जनता में शक्ति आयेगी, तभी विश्वशान्ति स्थापन होगी।

श्रद्धा रखकर सहयोग दीजिये

हम चाहते हैं कि कम्युनिस्ट भाई भी, जिनकी श्रद्धा आज हिंसा पर नहीं रही और न अहिंसा पर ही बैठ पायी है, जरा श्रद्धा रखकर इसमें कूद पड़ें। आखिर हिंसा की शक्ति भी सैकड़ों सालों में धीरे-धीरे बनी है, एक दिन में तो नहीं बनी। पहले कुश्ती चलती थी, फिर लाठी आयी, फिर धनुष, तलवार, बन्दूक, बम और आखिर में हाइड्रोजन बम बना! इसी तरह शांति की शक्ति भी जरा कोशिश करते-करते प्रकट होगी। इसलिए जिनकी शांति की शक्ति पर पूरी श्रद्धा नहीं बैठी है, फिर भी जो शांति चाहते हैं, उनसे हम कहना चाहते हैं कि आपकी श्रद्धा नहीं बैठी, इसलिए हम आपको दोष नहीं देते। लेकिन अगर आप वह शक्ति बनाने में योग न देंगे, तो आप पर दोष लागू होगा। हम यह नहीं कह सकते कि हमने अभी तक कोई मसला हल किया है। भू-दान-यज्ञ में अभी तक ऐसी कोई सिद्धि नहीं हुई, जिससे कि संशयवादी को निश्चय हो। लेकिन हमारा दावा है कि सब लोग योग दें, तो वह जरूर होगी। इसीलिए हमारी माँग है कि इस शक्ति को बनाने में आप सब योग दें।

येर्रपुडी
२०-१-'५६

आज की यह सभा अजीब है। हम मानते हैं कि हजारों लोग मौन में बैठे हैं। ऐसी सभा इस गाँव के लोगों ने नहीं देखी होगी। सैकड़ों भाई, बहनें और बच्चे साथ में बैठे हैं। जैसे समुद्र में सब नदियाँ जाती हैं, वैसे ही सभी ध्यान में, मौन में डूब गये हैं।

गांधीजी के आश्रय का परम भाग्य

आज महात्मा गांधी का प्रयाण-दिन है। यह दिन हमारे लिए व्याख्यान का दिन नहीं, अंदर गोता लगाने का दिन है। हम कुछ ऐसी ही भावना से बोल रहे हैं, मानो अंदर से बापू से बातें कर रहे हों। आज की इस सभा में आपके बड़े-बड़े मंत्री और दूसरे सर्वसाधारण लोग धूल में बैठे हैं, यह महात्मा गांधी की महिमा है। पहले किसी युग में यह अनुभव लोगों को नहीं आया। यह उन्हींकी सिखावन है, जिसके कारण हम अपने को सेवक समझते हैं।" हममें से जो बड़े हैं, वे भी अपने को 'सेवक' मानते हैं। शुरू में कुछ गलतियाँ, त्रुटियाँ होती हैं, लेकिन हमारा दावा 'सेवक' का है।

गांधीजी के बारे में कुछ बोलना बहुत ही कठिन है। उसकी कोशिश भी मैं न करूँगा। उनके साथ काम करने, उनके आश्रय में जिन्दगी बिताने का हमें परम सौभाग्य प्राप्त हुआ है। लोगों का खयाल है कि जो बड़े पुरुषों की छाया में रहते हैं, उनका विकास, यानी पूरा विकास नहीं होता। इसकी मिसाल भी दी जाती है। कहा जाता है कि बड़े पेड़ की छाया में जो छोटे पौधे होते हैं, उनका पोषण नहीं होता और वह बढ़ते नहीं। आखिर यह क्यों होता है, यह सोचने की जरूरत है। इसीलिए होता है कि बड़े पेड़ छोटे पौधों का सारा पोषण खा जाते हैं, जो पौधों के लिए जरूरी है। किन्तु यह मिसाल महापुरुषों को लागू नहीं होती। महापुरुषों के लिए तो दूसरी मिसाल है। महापुरुषों के आश्रय में जो रहते हैं, वे वैसे ही होते हैं, जैसे गाय के कोठे में बछड़े। गाय अपने शरीर का दूध बछड़ों

के लिए देती है, जब कि बड़ा पेड़ छोटे पौधों का पोषण खुद चूस लेता है। महात्मा गांधी के बारे में यही अनुभव उन सभी लोगों को आया, जिन्होंने उनका आश्रय किया। उनके आश्रय में जो भी आये, वे अगर बुरे थे, तो भी अच्छे बने। जो अगर छोटे थे, वे बड़े बने। उन्होंने हजारों का महत्त्व बढ़ाया। अपने को वे सबसे छोटा समझते थे।

हम अपना जीवन धन्य समझते हैं कि हमें महात्मा गांधी के आश्रय का मौका मिला। भगवान् शंकराचार्य का वाक्य हमें हमेशा याद आता है। उन्होंने कहा है कि मनुष्य के तीन परमभाग्य होते हैं, प्रथम भाग्य तो यह है कि नरदेह प्राप्त हुआ है। दूसरा भाग्य है, मुमुक्षुत्व (मुक्ति की छटपटाहट) और तीसरा भाग्य है, किसी महापुरुष के आश्रय का लाभ : "मनुष्यत्वं मुमुक्षुत्वं महापुरुष-संश्रयः"। हमें महापुरुष के आश्रय का लाभ हुआ, यह हमारा भाग्य है। अभी हमने ज्ञानी के लक्षण सुने। मुश्किल से ही इस शरीर में ऐसा कोई स्थितप्रज्ञ होगा, जो उस वर्णन के पात्र हो। लेकिन उन लक्षणों के काफी नजदीक पहुँचे महापुरुष को हमने अपनी आँखों देखा है। ये सब लोग, जो आज मंत्री वगैरह बने हैं, उन्हींकी छाया में पले हैं। इसलिए लोग उन्हें कितना भी सम्मान क्यों न दें, फिर भी वे नम्रता नहीं छोड़ सकते।

हमारी हार

जब तक हमें यह स्मरण रहेगा, तब तक हमारी कभी अवनति नहीं हो सकती। इसीलिए आज के दिन हम जरा अपना आत्म-परीक्षण कर लेते हैं। यों तो उसका हमें हमेशा अभ्यास है, पर आज के जैसे दिनों में हमारी वृत्ति बहुत ही अन्तर्मुख हो जाती है। हमारी आत्मा कहती है कि जो राह गांधीजी ने दिखायी, उस पर चलने की हमने सोलह आने कोशिश की। हमने प्रयत्नों की पराकाष्ठा की। पिछले आठ सालों में एक क्षण भी ऐसा नहीं याद है, जब हम असावधान रहे। फिर भी हम जाहिर करना चाहते हैं कि हम यशस्वी नहीं हो रहे हैं—हमारी बहुत बुरी हार हुई है। लोगों के शायद ध्यान में नहीं आ रहा होगा कि हम क्या कह रहे हैं ! बोला तो यह जाता है कि 'बाबा को लाखों एकड़

जमीन मिली है, लाखों लोगों ने दान दिया, सैकड़ों ग्राम-दान मिले। लोगों में आशा उत्पन्न हुई !' यह सब हुआ, इसमें कोई शक नहीं। फिर भी हम कहते हैं कि हम बहुत दुःखी हैं और हम अपनी हार महसूस करते हैं। भू-दान को हमने शांति का एक साधन माना था। पर जिन प्रदेशों में हमें काफी जमीन मिली, वहाँ भी आज अशान्ति का राज है। लोगों में हिंसा फैली है। इतनी कटुता फैली है कि हमें २ साल पहले उसका अंदाजा नहीं था। लाखों एकड़ जमीन बिहार में मिली, लेकिन वहाँ अहिंसा फैल न सकी; हिंसा की भावना मौजूद है। हमको सैकड़ों ग्रामदान उड़ीसा में मिले हैं। लेकिन वहाँ भी छोटी-छोटी बातों के लिए गोलियाँ चलीं। देश के विभिन्न प्रान्तों में ऐसी-ऐसी बुरी घटनाएँ हुई हैं। इसका कारण भी हम जानते हैं। भू-दान का असर ग्रामों पर हुआ, लेकिन हम कबूल करना चाहते हैं कि शहरों पर हम असर नहीं डाल सके। शहरों में आज भी उसी हवा का असर है, जो महायुद्धों से सारी दुनिया में फैली है।

१६४२ के आन्दोलन का परिणाम

आज तो यह भाषानुसार प्रांत-रचना का एक निमित्त हुआ है, लेकिन लोगों के हृदयों में हिंसा पहले से ही भरी है। किसी भी निमित्त से वह बाहर आ जाती है। कहीं विद्यार्थियों का या मजदूरों का सवाल होता है, तो उसमें भी हिंसा होती है। जैसे पानी में कीचड़ होने पर जरा पाँव अन्दर डालते ही वह फौरन बाहर आता है ! हम नहीं समझते कि भाषानुसार प्रान्त बनाने में कोई गलती हो रही है, जिसके कारण यह सब हो रहा है। यह तो हृदय में जो हिंसा के भाव पड़े हैं, वे ही कोई निमित्त पाकर फौरन बाहर आ रहे हैं। लोग ट्रेनों पर हमला करते हैं, टेलीग्राफ की वायर पर हमला करते हैं ! हमारी समझ में नहीं आता कि इससे क्या बनता है ? इस पर हम जरा सोचते हैं, तो मालूम होता है कि यह '४२ के आन्दोलन का ही परिणाम है। बहुतों को यह मालूम नहीं कि अहिंसा के कारण ही हमें स्वराज्य मिला है। बहुतों को मन में लगता है कि हमें स्वराज्य जो मिला, यह '४२ की हुल्लड़बाजी और हिंसा से मिला है। अगर हमें अपनी अन्तरात्मा में अहिंसा की शक्ति का कुछ अनुभव होता, तो स्वराज्य के बाद फौरन बुरे काम

न हो पाते। हिन्दू-मुसलमान-सिखों के बीच जो बहुत बुरे व्यवहार हुए, जिनका उच्चारण करने के लिए शर्म मालूम होती है, वे सब नहीं होते। आज फिर से वही वृत्ति प्रकट हो रही है।

इस तरह आज हमारे देश की राष्ट्रीयता खतरे में है। हमारे नागरिक अपने को भारत के नागरिक नहीं, छोटे-छोटे प्रान्तों और प्रदेशों के नागरिक महसूस करते हैं। आज 'यह गाँव इस प्रान्त में मिलाना या उस प्रान्त में' ऐसे मसले लेकर दंगे होते हैं। भू-दान में लाखों एकड़ जमीन मिली, इसलिए हम भू-दान को यशस्वी मानने को तैयार नहीं। अगर यह अनुभव होता कि भू-दान के परिणामस्वरूप लोगों के हृदय में अहिंसा में विश्वास बैठ गया, तो हम यह प्रयोग यशस्वी समझते। हमारे सब भाई इस बात के लिए जरा चिन्तन करें।

यह बहुत सोचने की बात है। हमने विश्व-शान्ति की आवाज उठायी है। पंडित नेहरू ने उसे सारी दुनिया में बुलन्द किया है। हमने जाहिर किया है कि भू-दान में जो एक-एक दानपत्र मिलता है, वह 'शान्ति का वोट' है। इस तरह हिन्दुस्तान में आज विश्वशान्ति संगठित करने के दो प्रयोग हो रहे हैं। अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में शान्ति स्थापित करने की कोशिश पंडित नेहरू कर रहे हैं और देश के अन्दर शान्ति की शक्ति प्रकट करने की कोशिश भू-दान-यज्ञ के जरिये हो रही है। लेकिन हम समझते हैं कि जो दृश्य आज हम देश में देखते हैं, उससे हम समझते हैं कि ये दोनों प्रयोग अयशस्वी हुए।

स्वराज्य खतरे में

आज मेरा चित्त बहुत व्यथित है, फिर भी जिनका वरदहस्त मेरे सिर पर है, उन्होंने एक तत्त्वज्ञान सिखाया है, जिसके कारण मैं शान्त रहता हूँ और जानता हूँ कि केवल व्यथित होने से यह काम दुरुस्त नहीं होगा। हम सब भाई जाग जायँ। ऐसी गलतफहमी में, ऐसे भ्रम में न रहें कि हमें स्वराज्य हासिल हुआ, तो हम सुरक्षित हो गये। यह स्वराज्य क्षणभंगुर साबित हो सकता है। यह बिलकुल खतरे में है। विश्व शान्ति हमसे नहीं बनेगी, अगर हमारे देश के मसले हम शान्ति से हल न कर पायेंगे। इसलिए सब नेताओं को, सब कार्य-

कर्ताओं को, सब सेवकों को निश्चय करना चाहिए कि हिन्दुस्तान में जो भी मसले हैं, उन्हें हम शान्ति से ही हल करेंगे।

हमें इस बात का भी दुःख है कि लोगों की तरफ से जहाँ हिंसा होती है, वहाँ सरकार की ओर से भी असंयम से काम होता है। अभी हमने पढ़ा, उड़ीसा में गोलियाँ चलायी गयीं। उस जमाव में वहाँ के प्रधान-मन्त्री की पत्नी मालती देवी भी थीं। उन्होंने जाहिर किया कि वह गोली बिना मतलब से चली, उसकी कोई जरूरत न थी। खैर, इस विषय को मैं बढ़ाना नहीं चाहता। यह बहुत दुःखजनक बात है। कुल मिलकर अपराध किसका है, इसका हम विश्लेषण नहीं करते। हमने कह ही दिया है कि यह अपराध भू-दान-यज्ञ का है। इसके लिए हम अपने को ही गुनाहगार समझते हैं। कहीं-न-कहीं हमसे गलती हुई है, त्रुटि हुई है; इसीलिए यह वातावरण फैला, जो नहीं फैलना चाहिए था। हम भगवान् से प्रार्थना करते हैं कि हमारी वाणी में अधिक मृदुता आये, हमारे हृदय में अधिक प्रेम का संचार हो।

भारत में दुनिया की माधुरी का सम्मेलन

हम जानते हैं कि हमारे शहरी भाई सारी दुनिया की हवा के असर में हैं। लेकिन हमारी आकांक्षा यही है कि हम इस देश में ऐसी हवा बनायें, जिसका असर सारी दुनिया पर पड़े। मनु महाराज ने भविष्य लिखा था कि कुल पृथ्वी के लोग इस देश के सज्जनों से नीति की राह सीखेंगे :

'एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः ।
स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवाः ॥'

कितना उज्ज्वल है हिन्दुस्तान का इतिहास ! यहाँ वैदिक संस्कृति फली-फूली ! जैन और बौद्धों ने यहाँ उत्तम-से-उत्तम विचार प्रकट किये। मुसलमानों का राज यहाँ आया, इसलिए लोकशाही का विचार फैला। ईसाई-धर्म के परिणामस्वरूप हिन्दुस्तान में सेवा की वृत्ति और मिठास पैदा हुई। इस तरह दुनियाभर की माधुरी का सम्मेलन यहाँ हुआ और उसीके आधार पर सारी दुनिया हिन्दुस्तान से आशा रखती है। हम भी समझते हैं कि थोड़ा-सा अच्छा काम भू-दान का

जो हुआ, वह उसीके कारण हुआ, इसमें कोई सन्देह नहीं। लेकिन वह नाकाफी साबित हुआ है। इसलिए हम चित्त का संशोधन करना चाहते हैं। हम महात्मा गांधी का स्मरण कर परमेश्वर के सामने प्रतिज्ञा करते हैं कि दिन-ब-दिन हम आत्म-परीक्षण करते रहेंगे।

पक्ष-भेदों से देश-हित की हानि

हम चाहते हैं कि हमारे सभी भाई भेद-भावों को भूल जायँ। पुराने भेद-भाव हमें कुछ तकलीफ नहीं देते। वे तो टूट ही रहे हैं। धर्म के ये झगड़े चलनेवाले नहीं हैं। जाति-भेद टिकनेवाले नहीं हैं। जमाना उनके विरुद्ध है। इसलिए उन पुराने भेदों की हमें चिन्ता नहीं। किंतु आज हिंदुस्तान में जो नये भेद पैदा हो रहे हैं, उन्हींकी हमें चिन्ता है। आज सारा देश दरिद्र, गरीब और अशिक्षित है। इस हालत में जितने भी सेवक हैं, उन सबकी ताकत लोगों की सेवा में लगनी चाहिए। लेकिन वे सेवक एक-दूसरे के साथ मिल-जुलकर नहीं रहे और इसका कारण पार्टीभेद है। हमने पश्चिम से इलेक्शन का एक तरीका लिया, उसके कारण गाँव-गाँव और शहर-शहर में हृदयों के टुकड़े हुए हैं। इससे लोग भिन्न-भिन्न पक्षों में बँट गये हैं और किसी भी अच्छे काम के लिए इकट्ठा नहीं होते। हम समझते हैं कि हमारे देश की सबसे अधिक हानि इसी चीज से हो रही है। अगर हम इन सभी राजनीतिक पार्टियों की लेबुलों को भूल जायँ, तो हिंदुस्तान का भला हो। आज लोगों की शक्तियाँ टकरा रही हैं। उनका योग नहीं हो रहा है। आज भी देश में बहुत शक्ति है। लेकिन ये शक्तियाँ जब परस्पर टकराती हैं, तो उनका क्षय हो जाता है। भिन्न-भिन्न राजनैतिक पार्टियों में जो विरोध हैं, वे तो हैं ही; लेकिन एक राजनैतिक पक्ष के अंदर भी विरोध होते हैं। इन सब भेदों को खतम करने का उपाय यही है कि हम अपना हृदय जरा विशाल बनायें। हम अपनी दृष्टि व्यापक करें और जरा देखें कि दुनिया में क्या हो रहा है! 'ऍटोमिक एज' आ रहा है। स्पष्ट है कि नयी शक्ति निर्माण हो रही है। वह सारी दुनिया का खातमा कर सकती है। अगर हम उसका समुचित उपयोग कर लेते हैं, तो सारी दुनिया को स्वर्ग भी बनाया जा सकता है। नहीं तो साफ है कि मानव-जाति का खातमा हो सकता है

छोटी बातें भूल जाइये

जहाँ सारी मानव-जाति के सिर पर ऐसे खतरे लटके हों, वहाँ हम छोटी-छोटी चीजों में क्या पड़ें ? बेलगाँव का ही किस्सा सुनिये ! वहाँ के लोग कहते हैं कि यहाँ मराठीभाषी लोग अधिक हैं, इसलिए इसकी गिनती कर्नाटक में न होनी चाहिए। हम कबूल करते हैं कि एक भाषा के बहुत-से लोग एक प्रान्त में आ जाते हैं, तो राज्य-कारोबार चलाने के लिए बड़ी सहूलियत होती है। किंतु सोचने की बात है कि क्या निचोड़कर सभी एक भाषा-भाषी लोग एक प्रान्त में लाये जायें; तो कल्याण होगा ? कुछ थोड़े-से लोग दूसरे प्रान्त मे भी रहते हैं, तो दोनों प्रान्तों में प्रेम बढ़ता है। दोनों भाषाओं का अध्ययन चलता है। और सीमा-प्रदेश के लोग तो दोनों भाषाएँ जानते ही हैं, चाहे उनकी मातृभाषा कोई भी हो। फिर ऐसी छोटी-छोटी चीजों का आग्रह क्यों रखा जाता है ? यही हमारी समझ में नहीं आता।

सारी दुनिया मे जो शक्तियाँ काम कर रही हैं, उन्हींका यह असर है। हमारी समझ में नहीं आ रहा है कि कुल दुनिया कितने खतरे में है। आखिर इसका भान उन्हें कैसे नहीं होता ? कश्मीर का वह मसला वैसा ही चल रहा है। यह गोवा का प्रश्न भी हल ही नहीं हुआ है। यह फारमोसा भी चल रहा है। अभी कोरिया शान्त ही नहीं हुआ है। हिन्दचीन सुलग ही रहा है। मध्यपूर्व (मिडिल-ईस्ट) के झगड़े कायम ही हैं। अगर इन सबको हम नहीं रोकते, तो हम खतरे में हैं और दुनिया भी खतरे में है। ऐसी हालत में हमारी जो बात थी, वह हमने लोगों के सामने रखी और फिर जो फैसला हुआ, उसे मान लिया, तो हम बुद्धिमान् साबित होंगे।

आज तो छोटे-छोटे चुनावों के लिए भी आपस-आपस में कितना मत्सर चलता है। हमें ५-७ प्रान्तों का अनुभव है। हर जगह सभी पार्टियों के लोग हमे अपनी-अपनी बातें बता देते हैं। जैसे गंगा मे जो भी आता है, वह अपना कपड़ा धो डालता है, इसी तरह हर कोई हमारे पास अपना दिल खोल देता है। इसलिए हमें सब बातें मालूम हैं। हमारे सामने यही सवाल है कि ये सारे

छोटे-छोटे मसले कैसे दूर होंगे? अगर लोगों को इस बात का भान हो जाय कि दुनिया पर क्या खतरा है, तो उन्हें व्यापक बुद्धि आयेगी और फिर अपने देश के मसले शांति के तरीके से हल करने की युक्तियाँ भी सूझेंगी।

शहरों में काम चले

आज हम जिस स्थान में आये हैं, उसकी विशेष महिमा है। यह भू-दान-यज्ञ-गंगा की 'गंगोत्री' है। तेलंगाना के लिए यह अभिमान की बात हो सकती है और खुशी की बात तो है ही कि यह गंगोत्री तेलंगाना में है। अगर तेलंगाना के सभी पक्षों के कार्यकर्ता पक्ष-भेदों को भूल इस काम में जुड़ जायँ, तो २-४ महीने में यह काम पूरा कर सकते हैं। हमने कोई बड़ी माँग तो नहीं की है? एक सीधी-सी बात लोगों के सामने रखी है। अक्सर एक परिवार में ५ आदमी होते हैं, तो हमें छठा भाई, दरिद्रनारायण का प्रतिनिधि, समझकर छठा हिस्सा दे दें। इससे हिंदुस्तान में शांतिमय क्रान्ति होगी। हम नहीं समझते कि क्रान्ति का इससे सस्ता सौदा और कोई हो सकता है। यह तब तक नहीं होगा, जब तक कि शहरों में परिवर्तन न हो। बहुत से मालिक शहरों में रहते हैं। इसीलिए हमने कहा कि हमें काफी दान मिला है, काफी हृदय-परिवर्तन हुए हैं; लेकिन वह देहात में हुआ, शहरों में नहीं। इसलिए जरा हमारे भाई शहरों को भी ध्यान में लें। वहाँ भी काम करें, उनके हृदय में प्रवेश करें, तो एक बड़ा काम हो सकेगा।

दीपक निराश नहीं होता

हम निराश नहीं हैं और न निराश होने का कोई कारण ही है। बल्कि हमारा स्वभाव ही निराशा के विरुद्ध है। बाहर जितना अन्धकार बढ़ता है, उतना ही हमारा उत्साह बढ़ता है। अन्धकार को देख हमें खुशी होती है कि हमारा छोटा-सा दीपक भी मार्ग-दर्शन करेगा। इसलिए हम निराश नहीं हैं। किन्तु जो करने का काम है, उसका विश्लेषण हमने करके रख दिया है। इस गाँव के लोगों ने भी काफी अच्छा काम किया है। सम्भव है कि यह एक यात्रा का स्थान बने। हिन्दुस्तानभर के लोग यहाँ देखने को आयें, तो उनके लायक यहाँ काम भी तो होना चाहिए।

गांधीजी की आत्मा देख रही है

महात्मा गांधी की आत्मा हमारी तरफ देख रही है। वह सन्तुष्ट होगी।' हम नहीं जानते कि वह दुनिया के किस कोने में पड़ी है। जो मुक्त पुरुष होते हैं, उनकी आत्मा ईश्वर में लीन हो जाती है। इसलिए उनकी आत्मा ईश्वर में लीन हो गयी हो, तो भी ईश्वर ही हमारी तरफ देख रहा है। इसलिए ईश्वर के अन्दर से उनकी आत्मा हमारी तरफ देख रही है। अगर ईश्वर में लीन न हुई हो और वासना के कारण और कहीं रहती हो, तो भी वह हमारी ओर देख ही रही है। हम सतत महसूस कर रहे हैं कि ईश्वर हमारे साथ है। वह चाहता है कि भारत विश्व को शान्ति की राह दिखाये। यद्यपि आज बुराइयाँ प्रकट हो रही हैं, फिर भी हम समझते हैं कि यह काम हो सकेगा। कई कारणों से हम शहरों में नहीं जा सके। वहाँ जाना पड़ेगा और काम करना होगा। साहित्य घर-घर पहुँचाना होगा। बहुत-से लोग कहते हैं कि 'बाहरी हवा यहाँ आने से कौन रोक पायेगा? देशों के बीच दीवालें खड़ी नहीं हो सकतीं।' हम उनसे कहते हैं कि हम उसे रोकना नहीं चाहते। आने दो, बाहर की हवा भी यहाँ आये। लेकिन हम यह भी कहते हैं कि यहाँ की हवा बाहर जाने से भी कोई रोक नहीं सकता। हम ऐसी हिम्मत रखते हैं कि भारत की हवा सारी दुनिया में फैलेगी। बाहर से यहाँ कौन-सी हवा आ रही है? वह तो अन्धकार है। अन्धकार प्रकाश पर हमला नहीं करता, बल्कि प्रकाश ही अन्धकार पर हमला करता है। प्रकाश के सामने अन्धकार टिक नहीं सकता है।

भारत की जिम्मेवारी

हमें दो बातें ध्यान में रखनी चाहिए: (१) भारत में नयी जाग्रति है, भारत की आजादी भी एक विशेष तरीके से हासिल हुई है। चाहे वह हमारा प्रयत्न टूटा-फूटा क्यों न हो, फिर भी एक विशेष प्रयत्न था। और (२) भारत में दो प्रवाहों का संगम हुआ है। यहाँ आत्म-ज्ञान का प्रवाह पहले से है ही और दूसरा विज्ञान का प्रवाह भी आकर मिल रहा है। पश्चिम में तो एक विज्ञान का ही प्रवाह दोख रहा है, लेकिन यहाँ दोनों हैं। इसलिए हम समझते हैं कि आत्म-ज्ञान और विज्ञान के योग से भारत यशस्वी होगा।

मन के ऊपर उठना आवश्यक

आज ये दोनों मिलकर चित्त पर हमला कर रहे हैं। विज्ञान मन को महत्त्व नहीं देता। वह प्रत्यक्ष स्थिति (सृष्टि) को, 'ऑब्जेक्टिव ट्रुथ' को महत्त्व देता है। आत्म-ज्ञान भी मन को महत्त्व नहीं देता। वह कहता है कि मन तो विकारों से भरा है। हम उसके साक्षी हैं—उससे अलग हैं। जैसे हम इस घड़ी से अलग हैं और इसमें कोई दोष हो, तो देखकर दुरुस्त कर सकते हैं, वैसे ही हमारे मन में अगर कोई त्रुटि हो, तो उसे भी देखकर दुरुस्त कर सकते हैं। हमें मन के वश न होना चाहिए, मन का साक्षी बनकर बरतना चाहिए, यही आत्म-ज्ञान की सिखावन है। आज विज्ञान भी यही कहता है कि बाहर की वस्तु का, स्थिति का विचार करो। मानसिक भावना, कल्पना की ओर मत देखो। इस तरह आज विज्ञान और आत्म-ज्ञान, दोनों के ही हमले मन पर हो रहे हैं। इसलिए जो मन के ऊपर उठेंगे, वे ही दुनिया को जीतेंगे।

आज मानसिक भूमिका में रहकर काम करने के दिन लद गये। मान-अपमान, राग-द्वेष आदि सब मन के होते हैं और उन्हींके आधार पर राजनीति आदि का काम चलता है। पर इसके आगे वह चल न पायेगा। अब विज्ञान और आत्म-ज्ञान को देखकर ही काम करना और मन को शून्य बनाना होगा। यह सब प्रक्रिया भारत में होगी, ऐसा हमारा विश्वास है। आज यूरोप और अमेरिका का दिमाग थक गया है। वे खूब शास्त्रास्त्र-संभार पैदा कर चुके हैं। उससे कुछ बनता नहीं है। लेकिन उसके बिना काम कैसे चलेगा, यह भी ध्यान में नहीं आ रहा है। इस समय यूरोप और अमेरिका की बड़ी दयनीय स्थिति हुई है। हिंसा पर से उनका विश्वास उड़ गया है और अभी अहिंसा पर बैठा नहीं है। वे बहुत सोच-सोचकर थक गये हैं। इस वक्त जो लोग अपने दिमाग स्थिर रखेंगे, वे ही बच सकेंगे और दुनिया को भी बचायेंगे।

पाश्चात्यों ने ये जो विभिन्न पार्टियाँ बनायी हैं, सारी मानसिक भूमिका पर खड़ी हैं। हिन्दुस्तान में हम देख रहे हैं कि उसके प्रयोग से कोई अच्छाई नहीं है। इसलिए यह चीज जायगी और हिन्दुस्तान की अपनी चीज आयेगी।

हिन्दुस्तान में विज्ञान और आत्म-ज्ञान का संयोग हो रहा है, इसलिए हमारे मन में विश्वास है कि भगवान् भारत के जरिये दुनिया में शान्ति की स्थापना करना चाहता है। हमें स्वराज्य हासिल हो चुका है, तो अब क्या करना चाहिए ? लोग एक गीत गाया करते हैं। "विश्व-विजय करके दिखलायें, तब होवे प्रण पूर्ण हमारा।" क्या हम विश्व को गुलाम बनाना चाहते हैं ? नहीं, हम दुनिया पर राज्य चलाना नहीं चाहते, बल्कि भारत का जो विचार है, उसे फैलाना चाहते हैं। स्वराज्य का उपयोग इसलिए नहीं करना चाहिए कि बेलगाँव किस प्रान्त में रहेगा। बल्कि इस बात के लिए करना चाहिए कि हम किस तरह रूस और अमेरिका को मित्र बना सकते हैं। किस तरह शेरों को और गायों को एक झरने पर पानी पिला सकते हैं। इतना बड़ा विशाल कार्य हमें करना है।

पोचमपल्ली
२०-१-'५६

गलत और सही मूल्यमापन : २० :

करीब पाँच साल हुए, हम एक ही चीज को दुहराते चले जा रहे हैं। भक्त राम-नाम लिया करते हैं, उसका जप किया करते हैं, तो उसकी उन्हें थकान नहीं आती। बल्कि उस जप से उनकी थकान उतरती है। वही हाल हमारा हो रहा है। बाबा रोज बोलता जाता है, फिर भी उसे नया-नया सूझता जाता है। बाबा की हालत एक जीवित वृक्ष-जैसी है, जिसे नित्य-निरन्तर नव-पल्लव फूटते रहते हैं।

इन्द्रधनुष की-सी प्रान्तरचना

इन दिनों में हमने एक अजीब तमाशा देखा। एक छोटी-सी बात लोगों को बड़ी दीख रही है और उसके लिए उनमें असन्तोष पैदा हुआ है। अगर चीजों का ठीक भान न रहा, कद्रें मालूम नहीं हुईं, तो यही परिणाम होता है कि मन और दिमाग सीमित रह जाता है। हर चीज की अपनी एक कीमत होती है, पर साथ ही कुछ सीमा भी होती है। उससे बाहर वह चली जाय, तो उसकी कीमत भी खतम हो जाती है। यह एक उसूल है कि 'जनता की जबान में राज्य-

कारोबार चलना चाहिए।' हम नहीं समझते कि हिन्दुस्तान में कोई भी शख्स ऐसा हो, जो इस उसूल को कबूल न करता हो। लेकिन उसके लिए यह जरूरी नहीं कि एक भाषा के लोग निचोड़कर एक ही प्रान्त में लाये जायँ। दूसरे प्रान्त में भी उस भाषा के कुछ थोड़े लोग रह जायँ, तो उसमें कोई नुकसान नहीं। जो लोग *सीमा-प्रदेश में रहते हैं, वे अक्सर दोनों भाषाएँ जानते हैं, चाहे उनकी मातृ-*भाषा कोई भी एक हो।

इन्द्रधनुष में इतने अलग-अलग रंग नहीं होते, जितने नक्शे पर भिन्न-भिन्न प्रदेशों में दिखाई देते हैं। बल्कि एक रंग कहाँ खतम होता है और दूसरा कहाँ से निकलता है, इसका भी पता नहीं चलता। इसी तरह एक भाषा के कुछ लोग दूसरे प्रान्त में और उस भाषा के इस प्रान्त में हों, तो कोई भी नुकसान नहीं, बल्कि बहुत फायदा ही होता है। एक भाषा के प्रतिनिधि दूसरी भाषा के प्रान्त में रह जाते हैं, तो संस्कारों के सम्मेलन के लिए मदद होती है। वे लोग अपनी भाषा की महिमा दूसरी भाषा मे पहुँचाते हैं और वहाँ की महिमा अपनी भाषा मे लाते हैं। इस तरह दोनों भाषाएँ बिलकुल नजदीक आ जाती हैं। साधारणतः 'एक भाषा के बहुत-से लोग एक प्रान्त में आ जायँ', इससे ज्यादा आग्रह हम रखते हैं, तो उस चीज की कीमत घटाते हैं। फिर भाषा का विकास करने का मौका नहीं मिलता। अड़ोस-पड़ोस की भाषाओं का एक-दूसरे पर असर होता है, तो लाभ ही होता है। अतः यह जरूरी नहीं कि एक-दूसरे के प्रभाव से बचने की कोशिश की जाय। हमारी भाषाएँ इतनी विकसित हैं कि इस प्रकार का डर रखने की कोई जरूरत नहीं।

लोग समझते हैं कि हिन्दुस्तान में हर भाषावाले अपनी अलग जमात बना बैठेंगे, अपना अलग चूल्हा पकायेंगे, दूसरे के हाथ का न खायेंगे, दूसरे को न छुएँगे, दूसरी जातिवालों के साथ शादियाँ न करेंगे, तो लोग समझते हैं कि हम सुरक्षित रहेंगे। लेकिन इसमें हम बहुत खोते हैं। अगर हम अपनी हवा का एक अणु भी बाहर न जाय, इसकी कोशिश करें, तो बाहर की अनन्त हवा से हम महरूम रह जायेंगे। मैंने "महरूम" और "मरहूम" शब्द के उच्चारण में कुछ गड़बड़ की। लेकिन यह ठीक ही हुआ, क्योंकि मैं कहना चाहता हूँ कि हम एक-

दूसरे पर असर करने से डरते हैं, तो वास्तव में मरते हैं। हम तो समझ नहीं पाते कि आखिर भाषा के लिए यह सारा कोलाहल क्यों मच रहा है। किसान भी इस चीज को नहीं समझ सकता। क्योंकि उसका खेत तो अपनी जगह नहीं छोड़ता, चाहे उसकी गिनती इस प्रान्त में हो या उस प्रान्त में। यह कोई बुद्धिमानी का लक्षण नहीं है कि हिन्दुस्तान के बुनियादी सवालों का महत्त्व भी ढँक जाने तक हम दूसरे सवालों को महत्त्व दें। इसलिए इन सब सवालों की उपेक्षा कर राम-नाम की रटन ही जारी रखी है।

भारत की असलियत जनता

लोग हमसे पूछते ही नहीं कि तुम्हारी मातृभाषा क्या है। वे जानना ही नहीं चाहते कि यह किस खास प्रान्त का मनुष्य है। अगर हम भाषा के जरिये अपना हृदय बन्द कर दें, तो अखिल भारतीय सेवकत्व और अखिल भारतीय नेतृत्व ही मिट जायगा, भले ही अखिल भारतीय प्रभुत्व (सरकार) रहे। इन दिनों चर्चा चल रही है, 'विशाल आन्ध्र प्रभुत्व' बने या 'तेलंगाना प्रभुत्व' बने। इसमें हमें कोई दिलचस्पी नहीं। हमें तो दिलचस्पी इसीमें है कि यह 'प्रभुत्वमु' ही मिटे और 'सेवकत्वमु' रहे। एक सभा में हमने विनोद में कहा था कि 'बल्लारी की गिनती कहाँ करनी चाहिए, यह आपके सामने एक बड़ी समस्या है, तो दोनों प्रान्तों के प्रधान-मन्त्रियों की कुश्ती होने दो। उसमें जो हारे, उसका प्रान्त हार जायगा। पहले हमारे पूर्वज ऐसा ही करते थे। भीम और जरासंध की कुश्ती हुई और उसमें जो जीता, उसका देश जीता। उसमें किसीको कोई तकलीफ नहीं हुई, बल्कि लोगों को तो कुश्ती देखने का मजा आया।'

किन्तु इन दिनों जो लोग ये सारी बातें उठाते हैं, वे तो घर में बैठते हैं और दंगाफसाद करनेवाले गरीब होते हैं, जिनके जरिये काम किया जाता है। बम्बई में दंगा होने पर अवश्य ही हमें दुःख बहुत हुआ, फिर भी कोई आश्चर्य नहीं हुआ। कारण वहाँ किसी भी निमित्त से दंगा करना हो, तो कर सकते हैं। जिस शहर में ५ लाख लोग 'फुटपाथ' (पटरियों) पर जिन्दगी बिताते हों, वहाँ दंगा करना कोई कठिन नहीं।

ये सारी बातें शहरों में होती हैं। वहाँ महायुद्ध की बुरी हवा का असर हुआ है। इसलिए हमें गाँववालों को समझाना चाहिए कि इन शहरी झगड़ों से आपका कोई ताल्लुक नहीं है। इन सबका जवाब देनेवाले अगर कोई हैं, तो वे हैं देहातवाले। खबरें बनती हैं देहातों में, लेकिन अखबारों में छपती हैं, शहरों की ही खबरें। गेहूँ और चावल देहात में बनता है, जो देश की बड़ी भारी घटना है। लेकिन उसकी खबर अखबार में नहीं आती। यह नहीं होता कि फलाने गाँव में सुंदर खेत बना है, तो उसकी फोटो खींची जाय और बड़े-से-बड़े टाइप में उसकी खबर छापी जाय। जब यह होगा, तभी भारत की असलियत प्रकट होगी। आज भारत में कोई पुरुषार्थ ही नजर नहीं आता। किसी भी अखबार के पहले पन्ने पर दूसरे देशों की ही खबरें आती हैं, भारत की नहीं, क्योंकि हम महसूस ही नहीं करते कि हम अपने देश में कोई पुरुषार्थ कर रहे हैं। हम यह नहीं कहते कि हम दुनिया की खबरों के प्रति उदासीन रहें, या शहरों की बातों में अहमियत नहीं होती, पर यह कहना चाहते हैं कि हिंदुस्तान की असलियत है, यहाँ की जनता।

कुल देश 'राजद्रोही'

हिन्दुस्तान की सारी दौलत और ताकत देहात में है। इन्हीं देहातों ने हिन्दुस्तान को बचाया है। कई राज्य आये और गये, पर किसान अपना काम करते ही रहे। दुनिया में कई राजा हो गये। आज उन सबकी नामावली स्कूल के बच्चों को कंठ कराते हैं, लेकिन देहात के लोग उसे जानते तक नहीं। आप उन्हें अज्ञानी और मूर्ख कहते हैं, लेकिन वे सोचते हैं कि ये राजा तो मर चुके, अब उनकी याद क्यों रखी जाय? हिन्दुस्तान की जनता से पूछा जाय कि यहाँ कौन राजा हुए? तो वह आज तक सिवा राजा राम के और किसी राजा का नाम नहीं जानती। बीच में अंग्रेजों के जमाने में 'राजद्रोह' के मामले चलाये गये। उस समय हमने कहा था कि हिन्दुस्तान में कौन राजद्रोही नहीं है? यहाँ के कुल लोग राजद्रोही हैं, क्योंकि ये सिवा राजा राम के दूसरे किसी राजा को मानते ही नहीं। वे राजा को प्रजा या सेवक मानते हैं। राजा रामचन्द्र ने

प्रजा के लिए सीता का त्याग किया था, क्योंकि वे अपने को प्रजा का सेवक समझते थे।

हिन्दुस्तान की जनता नदी के समान बहती है। हमने देखा कि पचासों साम्राज्य आये और गये, लेकिन हमारा जीवन चलता ही रहा। उस जीवन पर जिन चीजों का असर है, उन्हें किसी भी सरकार ने नहीं बनाया। किसी भी सरकारी कानून से नमाज नहीं पढ़ा जाता और न प्रार्थना ही होती है। किसी भी सरकारी कानून से विवाह-विधि नहीं होती और न लोग उत्पादन करते हैं। किसी भी सरकारी कानून से लोग जन्म नहीं पाते और न किसी सरकारी कानून से लोग मरते ही हैं। तो फिर सरकारी कानून कहाँ आता और करता क्या है? मान लीजिये कि कुछ समय के लिए हम सरकार और उसके कानून को रुखसत दे दें, तो कौन-सी कठिनाई पैदा होगी? खेतों में काम करनेवाले तो काम करते ही रहेंगे। भूख लगती है, तो किसी कानून से नहीं लगती; इसलिए भूख लगने पर मनुष्य काम करेगा ही। जिनको शादियाँ करनी हैं, वे करेंगे ही। जिन्हें मरना है, वे बिना इजाजत के मरते ही हैं और जन्म पानेवाले बिना इजाजत के जन्म पाते ही हैं। व्यापार करनेवाले इधर-से-उधर माल ले जाकर व्यापार करेंगे ही। सिर्फ "अव्यापारेषु व्यापार" नहीं होगा।

अव्यवस्था के सर्जक व्यवस्थापक

हमारी बेजवाड़ा की सभा में हजारों श्रोताओं ने ५ मिनट तक मौन रखा और अत्यंत शांति से व्याख्यान सुना। लेकिन उस सभा में कोई व्यवस्थापक नहीं था। चंद लोगों को आश्चर्य लगा कि बाबा की सभा में इतनी शांति कैसे रहती है, उसका क्या जादू है। हमने कहा: 'जादू यही है कि वहाँ व्यवस्थापक नहीं थे। फिर अव्यवस्था कैसे हो? दुनियाभर की अव्यवस्था इन्हीं व्यवस्थापकों के कारण होती है। पुरोहित मिट जायँ, तो धर्म खतम न होगा। वे तो अधर्म चढ़ाते हैं, इसलिए उनके अभाव में धर्म बढ़ेगा ही। पुलिस न रहेगी, तो क्या शराब बढ़ेगी और शांति न रहेगी? अनुभव तो यही है कि जहाँ शराब-बंदी है, वहाँ पुलिस के कारण ही शराब बढ़ती है। वकील न रहेंगे, तो क्या दुनिया

ज्यादा झूठ बोलेगी ? बल्कि यही दीखता है कि वकील ही लोगों को झूठ बोलना सिखाते हैं। वकीलों की वकालत खतम हो जायगी, तो क्या झगड़े बढ़ेंगे ? इन दिनों कुछ लोग कहते हैं कि पुराना नीति-शास्त्र दकियानूसी है, जो कहता है कि हमेशा सत्य बोलना चाहिए। नया नीतिशास्त्र कहता है कि मनुष्य को कुछ जगहों पर सत्य बोलना चाहिए और कुछ जगहों पर असत्य। फिर वे कहते हैं कि राजनीति, वकालत और व्यापार में असत्य बोलना पड़ेगा। ये ही सारी दुनिया के व्यवस्थापक हैं, जिनके कारण सत्य में अपवाद निकालने पड़ते हैं। पर कोई यह नहीं कहता कि खेती में असत्य बोलना पड़ता है। इसीलिए हम इन व्यवस्थापकों से कहते हैं कि आप खेती में लग जायँगे, तो दुनिया में सत्य बढ़ेगा।

जब वकालत मिटेगी

भू-दान-यज्ञ को हम तभी यशस्वी समझेंगे, जब वकीलों की वकालत मिटेगी। यह होना चाहिए कि देहात के लोग झगड़ा ही नहीं करते। और अगर कहीं झगड़ा हुआ भी, तो वे गाँव में ही फैसला कर लेते हैं, शहर की अदालतों में नहीं जाते। फिर वकील बाबा के पास आकर कहेंगे कि 'आपने सारी दुनिया का भला किया, लेकिन हमारा तो अकल्याण ही कर दिया ! हमारा धन्धा मिट गया।' तो, हम उनसे कहेंगे : 'आपके लिए हमारे मन में दया है। भूमिहीन के नाते हम आपको ५ एकड़ जमीन देने के लिए राजी हैं, बशर्ते कि आप काश्त करने के लिए राजी हों। जब हमारी तरफ से वकीलों में जमीन बँटेगी, तभी हम समझेंगे कि भू-दान-यज्ञ को सफलता हासिल हुई। यह सब हमें करना है।

हम जब बिहार में दरभंगा आदि स्थानों में घूम रहे थे, तब वहाँ के वकीलों ने हमें सुनाया कि हम बेकार बन रहे हैं, क्योंकि भू-दान-यज्ञ के कारण लोगों में विश्वास हो गया है कि हमें जमीन मिलेगी। अब जमीन की कीमत आधी गिर गयी है और परिणाम यह हो रहा है कि हमारे पास बहुत थोड़े लोग झगड़े लेकर आते हैं। यह तो सालभर पहले की बात है। लेकिन बीच के काल में वकीलों को यश मिला, क्योंकि सरकार ने कानून बनाने की धमकी दी, याने कानून बनायेंगे ऐसा कहा। तो, लोगों को लगा कि न मालूम क्या कानून बनने

जा रहा है। इसलिए उन्होंने किसानों को बेदखल करना शुरू किया। तब से पुनः वकीलों की दरकार है। यहाँ पर हम वकीलों के खिलाफ कोई बात नहीं कर रहे हैं। हम जानते हैं कि स्वराज्य के आन्दोलनों में वकीलों का भी उत्तम-से-उत्तम हिस्सा रहा है। लेकिन हम इतना ही कहना चाहते हैं कि हिन्दुस्तान में एक बड़ी बेकार जमात है, जिसके हाथ में सारा इन्तजाम है और दुनिया में कलह पैदा करना ही उनका धंधा है। हम इन सबका उत्तर जन-शक्ति से ही दे सकते हैं।

जनता स्वरक्षित बने

भू-दान-यज्ञ से जमीन का बँटवारा होगा, यह इसका कम-से-कम लाभ है। इससे बड़ी चीज तो यह बनेगी कि जनता अपनी ताकत महसूस करेगी। आज जनता को हर बात में सरकार की तरफ ताकने की जो आदत लगी है, उससे वह मुक्त होगी और उसे विश्वास आयेगा कि वह भी कुछ कर सकती है। हिन्दुस्तान जाग्रत होगा, तब सत्ता विकेन्द्रित होगी और बड़े लोगों की वह शक्ति खतम होगी, जिसके जरिये वे दुनिया को आग लगा सकते हैं। दुनिया का भला-बुरा करने की ताकत चंद लोगों के हाथों में देने में बड़ा खतरा है। यह तो पुराने राजाओं के जैसी हालत हो गयी। अकबर राजा था, तो लोग सुखी थे, उसका लोक-कल्याणकारी राज्य (वेल-फेयर स्टेट) था। और औरंगजेब आ गया, तो लोग दुःखी हुए। आज भी मुख्यमंत्री अच्छा रहा, तो कारोबार ठीक चलता है। हम कबूल करते हैं कि आज की हालत में एकदम से यह स्थिति बदलना सम्भव नहीं। फिर भी हमें शीघ्र-से-शीघ्र वह परिस्थिति लानी चाहिए, जिसमें जनता सुरक्षित नहीं, स्वरक्षित बने।

भूदान से शासन-विसर्जन की राह खुली

भूमिवान् लोग भूमिहीनों को जमीन देने का काम उठा लें, तो सरकार का एक काम क्षीण होगा। आजकल बहुत-से विचारक सोचते हैं कि सरकार की शक्ति क्षीण होनी चाहिए, लेकिन किसीको राह नहीं दीख रही है। हम समझते हैं कि भू-दान-यज्ञ के जरिये यह राह खुल गयी है। जब लोग इकट्ठा होकर जमीन का मसला स्वयं हल कर लेंगे, तो सरकार का उतना काम लोगों के

हाथ में आ जायगा। सरकार को भी उससे खुशी होगी, अगर वह अहिंसा पर चलना चाहती हो। जनता रक्ष्य है और सरकार रक्षक, यह परिस्थिति मिटनी चाहिए। जनता अपना रक्षण खुद करे। सरकार सिर्फ विभिन्न प्रांतों का संयोजन करे, परदेश के साथ संबंध रखे, बाकी कुल कार्य जनता ही करे। वैसे आज भी साठ-सत्तर फीसदी कार्य जनता ही करती है। किन्तु भू-दान-यज्ञ के जरिये सरकार की शक्ति क्षीण होने में मदद मिलेगी।

लोग हमसे पूछते हैं कि 'बाबा, यह काम कब पूरा होगा और कब आप मुकाम पर पहुँचेंगे?' हम कहते हैं कि हमने यहाँ से दिल्ली तक एक रास्ता बना दिया है, लेकिन आप उस पर चलेंगे ही नहीं, तो कैसे पहुँचेंगे? हम तो मानते हैं कि जैसे कुल हिंदुस्तान में एक निश्चित दिन में होली या दीवाली होती है, वैसे ही हिंदुस्तान के कुल देहातों में एक दिन तय कर जमीन का बँटवारा हो सकता है। लेकिन जैसे होली और दीवाली हरएक के पास पहुँची है और हरएक के मन में उसके लिए प्रेम है, वैसे ही इसके लिए भी होना चाहिए। उतना हम करेंगे, तो सब गाँवों में एक ही दिन में जमीन का बँटवारा हो जायगा।

अंधे धृतराष्ट्र

इस विशाल दृष्टि से आप भू-दान की तरफ देखिये, तो फिर आपके ध्यान में आयेगा कि बाबा क्यों ५ सालों से वही चीज दुहरा रहा है। फिर भी उसे थकान नहीं आती, बल्कि रामनाम के जप के समान उसका उत्साह बढ़ता ही जाता है। फिर आप भी रामनाम लेना शुरू करेंगे और गाँव-गाँव जाकर जमीन हासिल करेंगे। बच्चा-बच्चा भू-दान की बात करेगा और अपने माँ-बाप से जमीन लायेगा। नये जमाने का काम नये लोगों से होता है। कभी-कभी नयी चीज को पुरानों में से अच्छे लोग भी नहीं पहचानते। परशुराम भी नारायण का ही अवतार था और राम भी। लेकिन परशुराम ने राम को नहीं पहचाना और उसके खिलाफ युद्ध शुरू कर दिया। फिर जब उसने राम का प्रताप देखा, तो झुक गया। इसी तरह आप जब बच्चों का प्रताप देखेंगे, तब झुक जायँगे। इसीलिए विश्वामित्र ने दशरथ से कहा था कि मुझे यज्ञ-रक्षा के लिए न तेरी जरूरत है, न तेरी सेना की।

मुझे तो राम और लक्ष्मण, दो लड़के ही चाहिए। यश की रक्षा तुमसे नहीं, इन लड़कों से ही होगी। तू तो स्टेटस-को (Status quo) रखेगा।

ये जो धृतराष्ट्र होते हैं—राष्ट्र का धारण करनेवाले, वे अंधे होते हैं। उनका एक दायरा होता है, उसीमें वे सोचते हैं। वे कहते हैं कि जमीन का बँटवारा होगा, तो जमीन सबके लिए पूरी नहीं मिलेगी और हिंदुस्तान में अशांति पैदा होगी। कुछ लोग यह भी कहते हैं कि 'बाबा बड़ा खतरनाक काम कर रहा है। लोग जग जायँगे और फिर उन्हें जमीन न मिलेगी, तो असंतोष पैदा होगा। आज जो संतोषमूलक राज्य चल रहा है, वह न रहेगा।' हम इस आक्षेप को कबूल करते हैं। हम जरूर असंतोष पैदा करना चाहते हैं। व्यास भगवान् ने लिखा है : 'असंतोषः श्रियो मूलम्।' असंतोष पैदा करने का काम दशरथ से नहीं बनता। उस काम के लिए राम और लक्ष्मण चाहिए। इसलिए बच्चों पर राम का काम करने की जिम्मेवारी है। हमारा अनुभव है कि बच्चों की जमात एक आवाज में कहती है कि सबको जमीन मिलनी चाहिए।

सहनगर
४-२-'५६

आज गांधीजी का श्राद्ध-दिन है। उनके प्रयाण को आठ साल हो गये। जब हम महापुरुषों और पूर्वजों का श्राद्ध करते हैं, तो सोचते हैं कि उन्होंने हमारे लिए जो काम रखा, उसे हम कैसे पूरा करें और उन्होंने जो विचार दिया, उसे आगे कैसे बढ़ायें ? यह काम हम श्रद्धा से करते हैं, इसीलिए उसे "श्राद्ध" कहते हैं। श्रद्धा याने पूर्वजों की जो अच्छा या लेने लायक हिस्सा होता है, उसे हम मजबूत पकड़ रखें।

श्राद्ध याने श्रद्धापूर्वक चिन्तन

कुछ लोगों का खयाल है कि जहाँ श्रद्धा होती है, वहाँ विवेक नहीं होता। लेकिन हमारे ऋषियों ने इससे बिलकुल ऊँची बात बतायी है। स्मृति में छोटे बालक नचिकेता का जिक्र है कि "श्रद्धा आविवेश सोऽमन्यत।"—उसमें श्रद्धा का प्रवेश हुआ, तो उसने सोचना शुरू किया। इससे स्पष्ट है कि श्रद्धा से मनुष्य को चिन्तन करने की प्रेरणा मिलती है। श्राद्ध में श्रद्धापूर्वक चिन्तन होना चाहिए। हमारी संस्कृति और सभ्यता में कुछ अच्छी चीजें भी चली आयी हैं और कुछ खराब चीज भी, जिन्हें 'संस्कृति' नाम देना भी गलत है। उन्हें संस्कृति और विकृति का मिश्रण ही समझना चाहिए। हमें दोष या बुरी बातें छोड़नी होती और अच्छी बातों या गुणों का ही स्मरण करना होता है। दोष शरीर के साथ होते हैं और गुण आत्मा के साथ। जब शरीर मर जाता है, तो उसके साथ उसके दोष भी खतम होते हैं। आत्मा कायम रहता है, इसलिए गुण भी कायम रहते हैं। अतः श्राद्ध के दिन हमारा कर्तव्य है कि अपने पूर्वजों से हमें जो सद्विचार मिले हों, उनका चिन्तन करें और उन्हें आगे बढ़ायें।

समाज-जीवन में पैठी भावनाएँ

महात्मा गांधी एक सत्पुरुष थे, यह सारी दुनिया मानती है। लेकिन सत्पुरुष होने के अलावा वे एक नव-विचार-प्रवर्तक भी थे। याने उन्होंने एक नया जीवन-

विचार दिया। ऐसा नव-विचार सभी सत्पुरुषों के जरिये प्रकट नहीं होता। जो सत्पुरुष एक विशेष परिस्थिति में उत्पन्न होते हैं, उन्हींके मन में यह नव-विचार प्रकट होता है। सब सत्पुरुषों का हृदय एकरूप होता है, लेकिन हरएक की बुद्धि और प्रतिभा अलग-अलग होती है। जिसकी प्रतिभा की जिस समय अत्यन्त आवश्यकता होती है, वे 'युग-प्रवर्तक' हो जाते हैं। महात्मा गांधी ऐसे ही युग-प्रवर्तक सत्पुरुष थे। इसीलिए उन्होंने हमें जो नव-विचार दिये हैं, उन्हें हम अच्छी तरह समझ लें। कुछ तो ऐसी बातें होती हैं, जो अच्छी होती और कितनों ही द्वारा दुहराई जाती हैं। वे बातें हमारे जीवन में किसी-न-किसी तरह से आ ही जाती हैं, लेकिन लोग पहचानते नहीं।

मान लीजिये, हमने सुना कि आज किसीका खून हुआ, तो क्यों हुआ? यह सुने बिना हमें बुरा लगेगा। वह क्यों हुआ? क्या हेतु था? हेतु ठीक था या बे-ठीक? आदि पीछे से सुनते हैं। लेकिन खून हुआ, इतना सुनना ही बुरा लगता है। याने मानव के जरिये मानव की हत्या होना बिलकुल गलत है, यह भावना मनुष्य के हृदय में स्थिर है। अनेक सत्पुरुषों ने यह निष्ठा हम लोगों में निर्माण की है। याने यह विचार ही नहीं रहा, बल्कि इन्द्रिय, मन और बुद्धि में भी पैठ गया। इसीको 'भावना' कहते हैं। शराब पीना बिलकुल गलत है, यह भावना हिन्दुस्तान में है। खून याने महापातक है, यह भावना भी दृढ़ है। व्यभिचार कभी अच्छा हो सकता है, यह खयाल भी हिन्दुस्तानी लोग न कर सके। इस तरह से कुछ भावनाएँ समाज में स्थिर हो गयी हैं, यह पूर्वजों और सत्पुरुषों की हम पर कृपा है। इसके अलावा कुछ नये विचार होते हैं, जिनकी खास समय में आवश्यकता होती है। और वे पैदा होते हैं, तो वे युग-प्रवर्तक हो जाते हैं।

सख्य-भक्ति का युग

पुराने समय में मालकियत का बँटवारा हुआ था। कुछ लोग मालिक थे, तो कुछ लोग सेवक। उस समय दास्य-भक्ति का प्रचार हुआ। याने स्वामी प्रेम पूर्वक अपने सेवकों का पोषण करें और सेवक अपने स्वामी की प्रेमपूर्वक सेवा

करें, यही उन लोगों की निष्ठा गिनी जाती थी। समाज भी अच्छा चलता था और उसे कोई असंतोष भी नहीं था। उत्तम स्वामी और उत्तम सेवक का आदर्श समाज के सामने रखा जाता था। इस तरह समाज में स्वामित्व और सेवकत्व का बँटवारा हो गया था। उसमें कोई दोष था, ऐसा मैं नहीं कहता। जिस समय मे वह हुआ, उस समय वह दोष नहीं होगा। लेकिन आज वह चीज नहीं रह सकती। आज समाज कुछ ऊपर उठ गया है। मैंने कई बार कहा है कि आज के समाज को 'दास्य-भक्ति' के बदले 'सख्य-भक्ति' की आवश्यकता है। याने स्वामित्व-सेवकत्व भाव अच्छे अर्थ में भी आज समाज को रुचिकर नहीं होगा। जितना सख्य-भक्ति का भाव अधिक होगा, उतना ही आज के समाज को वह उपयोगी होगा।

जब ऐसी आवश्यकता पैदा होती है, तब गुणों के विषय में भी एक नया सबक समाज के सामने आता है। पहले गुणों का भी बँटवारा हुआ था। ब्राह्मण मे शान्ति, क्षत्रिय में तेज और शौर्य, वैश्य में दक्षता और शूद्र में नम्रता और सेवा-वृत्ति जरूर होनी चाहिए, ऐसा माना जाता था। किन्तु इस समय का समाज सोचता है कि यह कैसा विचित्र बँटवारा है। क्या नम्रता और सेवा की ब्राह्मण को जरूरत नहीं? क्या शान्ति के बिना शूद्र का चलेगा? क्या ब्राह्मण डरपोक होगा, तो चलेगा? और क्षत्रिय सेवा से इनकार करे, तो ठीक होगा? इस तरह सोचने पर ध्यान में आता है कि गुणों का यह बँटवारा गलत है। इसके मानी यह नहीं कि कुछ लोगों में कुछ गुण नहीं होते और दूसरों में दूसरे गुण नहीं होते। किन्तु हम यही कहना चाहते हैं कि मानव का तब तक पूर्ण विकास नहीं होगा, जब तक गुणों की व्यवस्था रहेगी और कुछ गुण कुछ वर्ग के लिए विभाजित रहेंगे।

गुणों का विभाजन गलत

कुछ लोग समझते थे कि पूर्ण सत्य और पूर्ण अहिंसा साधु-संन्यासी के लिए ही है। व्यवहार में पूर्ण सत्य नहीं चल सकता, मिश्र सत्य ही चलेगा। और यदि अहिंसा भी चलेगी, तो मिश्र अहिंसा चलेगी। याने संन्यासी के गुणोंसे दूसरों को नुकसान और दूसरे के गुणों से संन्यासी की हानि होगी, ऐसा माना

जाता था। हरएक का धर्म अलग-अलग माना जाता था। संन्यासी का धर्म था कि उस पर कोई प्रहार करे, तो भी क्षमा देनी चाहिए। गृहस्थ का धर्म था कि कोई प्रहार करे, तो बराबर का जवाब दे। अगर गृहस्थ वैसा नहीं करता, तो स्वधर्म-हानि होती है और संन्यासी क्षमा नहीं करता, तो उसकी भी स्वधर्म-हानि होती है। इस तरह गुणों में भी पूँजीवाद आ गया था। आज की हालत में हम इस तरह गुणों का विभाजन नहीं चाहते हैं।

सद्गुणों की सामाजिक उपयोगिता

युग बदल गया और उसके निमित्त महात्मा गांधी बने। उन्होंने समझाया कि सत्य, अहिंसा, प्रेम आदि गुण जितने संन्यासी को लागू होते हैं, उतने ही गृहस्थों और सबको भी लागू होते हैं और भिक्षा पर अवलम्बित रहना कोई धर्म हो ही नहीं सकता। भिक्षा का अर्थ है, अपनी सारी सेवा समाज को अर्पण करना और समाज जो कुछ भी दे, वह खुशी से ले लेना। यह गुण गृहस्थ को भी लागू होते हैं। आधुनिक भाषा में कहा जाय, तो गांधीजी ने समझा कि सद्गुण सामाजिक उपयोगिता के लिए होते हैं। उसके परिणामस्वरूप कुल जीवन-दृष्टि बदल जाती है। इस युग में अगर कोई स्वामी अच्छी तरह सेवक का पालन करे और उसे उत्तम खाना पीना दे, तो भी हमारा समाधान नहीं होगा। हम कहते हैं कि उसे खाना-पीना तो अच्छा मिल गया, लेकिन उसका पूर्ण विकास कहाँ हुआ? वैसे ही यह स्वामी केवल स्वामित्व भाव से, दया-बुद्धि से सेवक का पालन-पोषण करता है, तो उससे कुछ गुणों का विकास होगा, लेकिन उसका पूर्ण विकास कैसे होगा? इसीलिए स्वामी जब तक स्वामी और सेवक नहीं बनता और सेवक जब तक सेवक और स्वामी नहीं बनता, तब तक दोनों का पूर्ण विकास नहीं होगा। भर्ता पत्नी का उत्तम पालन-पोषण करता है और भार्या पति की आज्ञाकारिणी है, तो दोनों के कर्तव्य दोनों ने पूरे किये और दोनों को परीक्षा में १०० मार्क मिले, ऐसा हम नहीं कहेंगे। यही कहेंगे कि इतना करने पर दोनों को ५०-५० मार्क मिले। अगर वे १०० मार्क चाहते हों, तो पति को पत्नी बनना होगा और पत्नी को पति। याने स्त्री को स्त्री और पुरुष, दोनों बनना होगा और पुरुष को भी स्त्री और पुरुष, दोनों। तभी उन्हें १०० मार्क मिलेंगे।

ऋषियों का बीजरूप दर्शन, फलरूप नहीं

यह बिलकुल ही नयी दृष्टि है। किन्तु इसका तात्पर्य यह नहीं कि इस दृष्टि के अनुकूल कोई भी वचन प्राचीन ग्रन्थों में नहीं मिलते। क्योंकि जो अन्तर्मुख ऋषि होते हैं, जिनको दर्शन होता है, उन्हें ऐसे शब्दों में ज्ञान मिलता है, जिससे यह नया-नया अर्थ निकल सकता है। ऋषियों को फलरूप नहीं, बीजरूप दर्शन होता है। और बीज में क्या-क्या नहीं रहता? बीज का जहाँ विकास होता है, वहाँ हरी-भरी पत्ती, काष्ठांश और मीठे-मीठे फल पैदा होते हैं। वह फल, पत्ती, काष्ठांश आदि सारा-का-सारा बीज मे रहता है। बाहर से खाली देखने से यह मालूम नहीं देता। आम की गुठली देखने से यह पता नहीं चलता कि इसमे से लाखों मीठे आम पैदा हो सकते हैं। उस फल की जो मिठास है, उसका उस लकड़ी के साथ क्या ताल्लुक है? अगर किसीको खाने के लिए आम के फल के बदले आम की लकड़ी दी जाय, तो क्या होगा? दोनों एक ही वंश के और एक ही बीज में से पैदा होते हैं। फिर भी दोनों में विविध प्रकार का आविर्भाव होता है। तो, जिसे प्रतिभाशाली योगसमाधि से दर्शन होता था, वह बीजरूप दर्शन था। फिर उस बीज से नया-नया आविष्कार होता रहेगा। हमारे जैसे लोग विकास को भी देखते हैं और बीज का भी ज्ञान रखते हैं। उन्हें उस बीज में भी विकास का ज्ञान हो सकता है। इसीलिए गुणों की मालकियत नहीं हो सकती। गुण भी सर्वसामान्य सबके है, ऐसे वचन स्मृतियों से मिल जायँगे। और अगर मिल जायँ, तो मेरे जैसा मनुष्य उनका उपयोग किये बिना नहीं रहेगा। क्योंकि हम तो जितने शास्त्र उपलब्ध हैं, सभी से सज्जित होना चाहते हैं। फिर भी कहना पड़ेगा कि गुणों का सामाजिक मूल्य है और उनका बँटवारा नहीं होना चाहिए।

यह जो विचार प्रत्यक्ष प्रकट हुआ, वह बिलकुल ही नया विचार है। इसके परिणामस्वरूप पुरानी समाज-रचना भी, जो अच्छी-से-अच्छी थी, हमें बिलकुल पसन्द नहीं। वह पुराना चातुर्वर्ण्य उस जमाने में उत्तम होगा, लेकिन आज के जमाने को बिल्कुल अनुकूल नहीं है। हर वर्ण में चारों वर्ण होने चाहिए, ऐसा अपना विचार हम आगे बढ़ा सकते हैं। श्रीकृष्ण क्षत्रिय थे, तो भी गीता का

उपदेश देने का ब्राह्मण का काम उन्होंने क्यों किया? अर्जुन को शंका पैदा हुई, तो उन्होंने उसे ब्राह्मण के पास क्यों नहीं भेज दिया? लेकिन खुद उन्होंने ब्राह्मण का काम किया। फिर भी उनके द्वारा चातुर्वर्ण्य को कुछ भी हानि न हुई, बल्कि वे चातुर्वर्ण्य के संस्थापक और पोषक कहलाये गये। जब उन्होंने गोबर में हाथ डाला और शूद्रों का काम किया, तो क्या क्षत्रिय-धर्म को हानि हुई? युद्ध-समाप्ति के बाद रोज शाम को जब अर्जुन संध्या करने जाता, तो कृष्ण घोड़े धोने के लिए जाते। वे दोनों ही क्षत्रिय थे और संध्या की उपासना करना दोनों का धर्म था। तो क्या कृष्ण भगवान् ने वर्ण-धर्म का विचार छोड़ दिया? सारांश, इससे हम ऐसा अर्थ निकाल सकते हैं कि हरएक वर्ण में चारों वर्ण के गुण होने चाहिए। और इस तरह के वचन शास्त्र-ग्रन्थों में निकलते भी हैं। फिर भी हमें कहना पड़ता है कि यह नया विचार है, पुराना विचार नहीं। याने, इसका बीजरूप दर्शन था, लेकिन स्पष्ट फलरूप दर्शन नहीं।

नया विचार घुमाता है

जब ऐसे नये विचार का दर्शन होता है, तो वह मनुष्य को घुमाता है। हम सोचते हैं कि हम शरीर से बहुत ही कमजोर और घूमने के बिलकुल काबिल नहीं हैं। हमारा मन भी इतना निवृत्ति-परायण है कि एक जगह ध्यान करने बैठ जायँ, तो हमें बड़ा आनन्द आता है। और इसीलिए आप लोगों के सिर पर मौन लाद अपना मौन शुरू करते हैं। याने किसी-न-किसी तरह हम अपनी रुचि की बात करवा लेते हैं। लेकिन वह मानसिक रुचि छोड़ और शारीरिक प्रतिकूलता होते हुए भी हमें कौन घुमाता है? स्पष्ट है कि यह नया विचार जो पैदा हुआ है, वही घुमाता रहता है। जब नया विचार निर्माण हुआ, तो ईसामसीह के शिष्य बैठ न सके। जब नया विचार पैदा हुआ, तो मुहम्मद पैगंबर के अनुयायी बैठ नहीं सके। जब नया विचार पैदा हुआ, तो महावीर स्वामी के साथी भी बैठ नहीं सके। पचासों मिसालें हम दे सकते हैं। शंकराचार्य ने एक नया विचार दिया, यह कल्पना गलत है। वह अगर नया विचार था, तो वे खुद घूमते नहीं। लेकिन उनके गुरु ने नया विचार पैदा किया था, इसी कारण उन्हें घूमना पड़ा।

नये विचार चिंतन में से पैदा होते हैं और फिर वे लोगों को बैठने नहीं देते। वे घुमाते हैं और प्रेरणा देते हैं। ऐसी परिव्रज्या की प्रेरणा हिन्दुस्तान में कई प्रसंगों में हुई है। हमारा विश्वास है कि यही प्रेरणा आज हिन्दुस्तान के उत्तम सेवकों को घुमा रही है। इसीलिए जरूरी नहीं कि यह सारा विचार पूरी तरह समझा जाय। जो समझेगा, सो तो समझेगा। लेकिन जो नहीं समझेगा, वह भी आचरण में लायेगा।

भू-दान के कार्यकर्ता कमजोर होते हुए भी थकान महसूस नहीं करते। उन्हें लगता है कि उनकी आयु में वृद्धि ही होती है। आखिर भू-दान के काम में क्या-क्या खाने को मिलता है कि आयु बढ़ती है। मक्खन खाने से आयु बढ़ती है, यह तो सुना था। लेकिन जंगल में घूमने से आयु बढ़ती है, यह कभी नहीं सुना। किन्तु विचार में एक अजीब शक्ति है, जो आयु बढ़ाती है। इसीलिए गीता में कहा है कि "अनिकेतः स्थिरमतिः" बुद्धि स्थिर हुई है, लेकिन घर नहीं है।

मालकियत मिटाने का मीठा विचार

गांधीजी के जाने के बाद हमें एक नया विचार मिला। हम उसे "गांधी-विचार" के नाम से नहीं पहचानते। वह विचार भारतीय संस्कृति का ही विचार है। एक निमित्तमात्र से महात्मा पैदा हो गये, तो उनके मुँह से यह बात निकली। लेकिन जब तक यह गांधी-विचार रहेगा, तब तक वह हमारे जीवन में न आयेगा। फिर हमें प्रेरणा न मिलेगी। इसलिए हमें यही समझना होगा कि यह हमारी भारतीय सभ्यता का, हमारे जमाने का और हमारा खुद का विचार है। इसीलिए हम यह मालकियत मिटाने की बात बोल रहे हैं।

आखिर इसे बोलने की हमारी क्या हैसियत है? आज सारी दुनिया में मालकियत है। किसी भी देश में मालकियत नहीं मिटी। लोग पूछेंगे कि कितने दिनों में मालकियत मिटेगी? तो हम हिम्मत के साथ कहते हैं कि वह मिटनी चाहिए और मिटकर रहेगी। हम उसे मिटा सकते हैं और हमने अपने जीवन में उसे मिटाया है। और मिटाया है, तो कोई बड़ा काम नहीं किया, जो सभी

को करने के लिए न कह सकें। आम खाया, मीठा लगा, तो दूसरों से भी कह सकते हैं कि तुम भी खाओ, मीठा लगेगा। नीम की पत्ती मीठी नहीं लगती। इसलिए दूसरे को नहीं कह सकते हैं कि तुम भी उसे खाओ। हमें लगता है कि मालकियत मिटाने की बात कड़वी नहीं, अच्छी और मीठी है। नीम की पत्ती गुण-वैराग्य की दृष्टि से अच्छी चीज है, लेकिन वह सबको नहीं जँचती। किन्तु मालकियत मिटाने की बात वैराग्य की नहीं, वैभव और ऐश्वर्य की बात है। इसीलिए हम इसको मीठे आम की मिसाल देते हैं। हम कहते हैं कि मालकियत मिटेगी, तो दुनिया में वैभव और ऐश्वर्य बढ़ेगा। इसीलिए जो भी शख्स हमें मिलता है, जो बिलकुल कुटुम्ब, देह और धन की आसक्ति से भरा हो, उससे भी हम कहते हैं कि मालकियत छोड़ दो। अगर वैराग्य का बोध कराना होता, तो लड़का मर गया है, यह कहकर वह कराना पड़ता। लेकिन अभी शादी हुई है, इसलिए वैराग्य का बोध नहीं दिया जा सकता। फिर भी उसे हम मालकियत छोड़ने की बात कह सकते हैं। मतलब यह है, यह ऐसी चीज है कि इससे ऐहिक और पारमार्थिक, दोनों कल्याण समान रूप से सध सकते हैं।

हम यह अनुभव की बात कहते हैं। कोरापुट के जंगल के लोग बिलकुल तत्त्वज्ञान नहीं जानते थे। लेकिन जब उन्हें समझाया गया कि छोटे-छोटे गाँव का एक परिवार बनाओगे, तो आपकी ताकत बढ़ेगी। आपको बाहर से मदद नहीं मिलती और मिल भी जाती है, तो डॉक्टर, व्यापारियों के एजेण्ट लूटने के लिए आ जाते हैं। फिर हरएक के पास एक हजार एकड़ जमीन होती, तो भी दूसरी बात थी। इसलिए एक हो जाने से ही आपकी ताकत बढ़ेगी। वे समझ गये और उन्हें ८००-६०० ग्राम-दान मिले। यह नहीं कि एक ही मालिक का पूरा गाँव था, लेकिन २५ सौ मालिकों ने पूरा दान दे दिया। यों तो मालकियत मिटाने की यह बात पुराने लोगों ने भी कही थी, लेकिन वह संन्यासी के लिए थी। सन्यासी नाम का 'स्वामी' और स्वामित्व छोड़ना उसका धर्म होता है। लेकिन बाकी के लोग, जो 'स्वामी' का नाम नहीं रखते, स्वामित्व रख सकते हैं, ऐसी मान्यता रही। किन्तु आज ये कोरापुट के लोग गृहस्थ थे। उन्होंने समझ लिया कि मालकियत छोड़ने में ही ताकत है।

पपीते के फल में मिठास के साथ कटुता भी रहती है। वह बहुत ज्यादा मीठा है और थोड़ा ही कड़वा। इसी तरह हमारा यह कार्यक्रम खूब मीठा और थोड़ा कड़वा है। पपीते के फल पर किसीका आक्षेप नहीं होता। कुछ डॉक्टर तो कहते हैं कि वह फल सोने से बढ़कर है। वैद्यक शास्त्र ने भी माना है कि जिस फल का रंग पीला हो, वह फल बहुत ही महत्त्व का होता है। सोना खाने से जो परिणाम होता है, वही पपीते से भी होता है। हमारा भू-दान-यज्ञ का कार्यक्रम ठीक इसी तरह का है। वह यत्किंचित्, थोड़ा सा कड़वा है, बाकी कुल-का-कुल मीठा है। इसीलिए हम चाहते हैं कि आप सब लोग मालकियत की बात छोड़ दें।

संविधान टूटेगा

पहले के लोग कुल जमीन की काश्त करते और बाद में उत्पादन बाँट लेते थे। लेकिन वे सिर्फ जमीन के लिए ही ऐसा करते थे और हम तो कुल संपत्ति के लिए कहते हैं। यह तो एक फरूचर है, इसके बाद हथौड़ी चलायी जायगी। आज तो भू-दान-यज्ञ से ही आरंभ किया है, क्योंकि वह बुनियादी चीज है और सारी संपत्ति पर लागू है। यह सारा जो हो रहा है, उसे देख लोग कहते हैं कि अद्भुत बात हो रही है। सारा संविधान ही तोड़ डाला है। हमें भी इसमें कोई शक नहीं कि जहाँ भू-दान-यज्ञ को सफलता मिली, वहाँ संविधान टूट ही गया। जहाँ फल पैदा होता है, वहाँ फूल टूट ही जाता है और टूट जाने में ही फूल की सार्थकता है। इसलिए फल का पैदा होना और फूल का मिट जाना कोई बुरी बात नहीं। किन्तु बिना फल पैदा हुए फूल को तोड़ डालें, तो वह गलत बात है। पर लोग सहज भाव से मालकियत छोड़ें और आपका संविधान टूट जाय, तो क्या नुकसान होगा ?

अहंकार नहीं, युगप्रेरणा

यह आन्दोलन कुल दुनिया के सारे जीवन के परिवर्तन का आन्दोलन है। तुम्हें लगेगा कि बाबा बड़े अहंकार की बात कहता है। लेकिन यह तो हमारी भाषा है। आखिर हम कौन करनेवाले हैं ? जो घुमाता है, वही इसे करेगा। हम

तो खुद ही पराधीन हैं। इसलिए जो हमारी बात सुनते हैं, वे भी हमारे वश हो जाते हैं। लोग खुद आकर नम्रतापूर्वक दान दे जाते हैं; क्योंकि जो प्रेरणा हमें हुई, वही उन्हें भी होती है। इसीलिए हमने किसी अहंकार का बोझ सिर पर नहीं उठाया है। अहंकार उठाते, तो वह इतना बड़ा है कि हम उठा नहीं सकते। वास्तव में यह अहंकार नहीं, युग-प्रेरणा है। इसीलिए यह हमें सूझती और आपको भी ठीक लगती है। आज गांधीजी का काम आगे बढ़ा है और परिव्रज्या शुरू हुई है। इसका अन्त तब तक न होगा, जब तक सारे गुणों के बँटवारे की समाप्ति न होगी और सारे गुण सार्वजनिक न हो जायेंगे।

परमेश्वर-प्राप्ति का प्रयत्न करें

लोग हमारी बात का अर्थ बुद्धिपूर्वक न समझते होंगे। लेकिन इतना तो समझते ही हैं कि बाबा हमारे काम की बात करता है। यदि यह न समझते, तो इतनी शान्ति से न बैठते। शब्दों का स्थूल अर्थ न समझने पर भी सूक्ष्म भाव उनके हृदय में बैठता ही है। सार यही है कि हम सारे भगवान् के अंश हैं। कोई कम नहीं और कोई बेशी नहीं। इसलिए न तो हम किसीसे दबें और न किसीको दबायें। हम किसीको न डरायें और न खुद ही किसीसे डरें। जैसे परिवार में प्रेम से रहते हैं, बिलकुल वैसे ही समाज में भी रहें। हमें इसी जन्म में परमेश्वर को पाना है। परमेश्वर याने पूर्णता! हमें खुद पूर्णता हासिल करनी है और अपने समाज को भी हासिल करानी है। इसीलिए हम सब अपना जीवन समर्पित करें।

मोगिलगिड्डा (महबूबनगर)
१२-२-'५६

छोटी हिंसा का मुकाबला कैसे हो ? : २२ :

इन दो महीनों में तेलंगाना की यात्रा में देहात-देहात की जो हवा देखी, उससे हमारे हृदय में बड़ी आशा निर्माण होती है। हम समझते हैं कि लोगों का मन इस बात के लिए तैयार है कि जहाँ तक भूमि का ताल्लुक है, शान्तिमय क्रान्ति हो सकती है।

शान्तिवादी और क्रान्तिवादी

जो लोग शान्ति की बात करते थे, और कोई तो आज भी करते हैं, वे समाज को बदलने में डरते हैं। वे कबूल करते हैं कि कुछ फर्क तो होना ही चाहिए, लेकिन वह आहिस्ता-आहिस्ता हो। इसलिए वे शान्ति का नाम तो लेते हैं, लेकिन क्रान्ति का नहीं। इससे उल्टे कुछ लोग चाहते हैं कि समाज में जल्द-से-जल्द बदल हो। इस तरह जो त्वरित बदल चाहते हैं, वे 'क्रान्तिवादी' कहलाते हैं। अभी तक क्रान्तिवादी शान्ति का नाम न लेते थे। यह नहीं कि शान्ति से कोई बात बने, तो वे करना नहीं चाहते थे, लेकिन समाज-रचना पूरी तरह बदलने का काम शान्ति से हो सकेगा, ऐसा विश्वास उन्हें न था और शायद आज भी नहीं है। इसीलिए वे अशान्तिमय तरीके का उपयोग करना पड़े, तो उसे भी करने की गुंजाइश अपने मन में रखते थे। इस तरह "शान्तिवादी" और "क्रान्तिवादी" ऐसे दो परस्परविरोधी पक्ष बन गये हैं। लेकिन हमें जो भारतीय संस्कृति की तालीम मिली और जिसकी पूर्णता गांधी की तालीम से होती है, उसमें क्रान्ति और शान्ति, दोनों का संयोग हो सकता है। इन दो महीनों में हमने जो दृश्य और वातावरण देखा, उससे हम इस नतीजे पर आये हैं कि तेलंगाना की देहात-देहात की जनता शान्तिमय क्रान्ति के लिए तैयार हो गयी है। यह हिन्दुस्तान और अहिंसा के लिए बड़ी ही आशा की चीज है। यह तो कहना चाहता था और कहता भी था कि इसमें सारी दुनिया के लिए आशा भरी है, लेकिन आज यह कहने में संकोच मालूम होता है। देहात के लोग कितने उत्साह

मे रोज शान्तिमय क्रान्ति का सन्देश सुनते हैं, फिर भी जो हवा तैयार हो रही है, उसमें इतनी सामर्थ्य नहीं कि उसके परिणामस्वरूप शहर की हवा भी हम बदल दें। यह बात मैंने इन दिनों बार बार दुहरायी है।

छोटी हिंसा में श्रद्धा

आजकल शहरों में दूसरी ही हवा चल रही है। अभी तो भाषावार प्रान्त-रचना का एक निमित्त बन गया, किन्तु हम समझते हैं कि यह तो केवल बाहरी चीज है, जिसके कारण अन्दर की मलिनता बाहर प्रकट हो रही है। हिन्दुस्तान में तरह तरह के असंतोष हैं और उनके कारण भी पर्याप्त हैं, यह हम जानते हैं। लेकिन आज दुनिया और भारत की जो स्थिति है, उसे देखते हुए हम नहीं मानते कि उसके हल के लिए अशान्तिमय तरीके का उपयोग किया जा सके। मेरी तो आन्तरिक निष्ठा कहती है कि दुनिया के कोई भी मसले अशान्तिमय तरीके से न हल हुए हैं, न होते हैं और न होनेवाले ही हैं; किन्तु अभी वह श्रद्धा मैं आपके सामने न रखूँगा। पुराने जमाने मे और भिन्न-भिन्न परिस्थिति में अशान्तिमय तरीके का भी उपयोग हुआ है। उसके बारे में मुझे कुछ नहीं कहना है। मैंने इतना ही कहा है कि दुनिया और हिन्दुस्तान की आज की हालत में अशान्तिमय तरीके की कल्पना करना मूर्खता के सिवा कुछ भी नहीं है। इस बात का जितना चिन्तन शहर में होना चाहिए, उतना नहीं हो रहा है। दुनिया मे बड़ी-बड़ी हिंसाएँ हो रही हैं, उनके साथ हिन्दुस्तान टिक नहीं सकता। इसीलिए यहाँ उन बड़ी-बड़ी हिंसाओं के लिए कुछ घृणा और अरुचि है, फिर भी छोटी-छोटी हिंसा शायद कुछ काम कर ले, ऐसा कुछ लोगों को भ्रम आज भी बना हुआ है।

हिंसा के पंडितों की अक्ल कुंठित

मैं नहीं मानता कि हिन्दुस्तान में ऐसे लोग हैं, जो गंभीरतापूर्वक कहते हैं कि यहाँ के और दुनिया के बड़े-बड़े मसले हिंसा और शस्त्र के बल पर हल हो सकते हैं और होंगे। क्योंकि यहाँ के शिक्षितों के दिमाग पर जिन गुरुओं का असर है, वे पाश्चात्य गुरु भी आज शस्त्रास्त्रों पर श्रद्धा नहीं रखते। इन दिनों रूस बार-बार दुहरा रहा है कि अगर सामनेवाले तैयार हों, तो हम

शस्त्रास्त्र कम करने और अणु आदि महास्त्र छोड़ने को राजी हैं। दुःख की बात है कि सामनेवाले उस पर विश्वास रखने के लिए तैयार नहीं हैं। हम नहीं कहते कि जैसे सत्पुरुषों के वचन पर पूर्ण विश्वास रखा जाता है, वैसा रूस पर भी रखें। लेकिन परिस्थिति खयाल में रखकर यह क्यों न हो कि जब वे एक बात सामने लाते हैं, तो उस पर विश्वास रखकर आगे बढ़ें। कम-से-कम एक पक्ष तो इस तरह की बात कहने के लिए राजी हुआ, यह भी प्रगति का एक लक्षण है। धीरे-धीरे सामनेवाले पक्ष भी सुनने के लिए तैयार हो जायेंगे। हमारी श्रद्धा है कि यह होते-होते दुनिया के सभी लोग इस नतीजे पर आ जायेंगे कि कुछ-न कुछ इस पर नियन्त्रण करना चाहिए।

कहा जाता है कि रूस के पास ऐसे शस्त्र तैयार हैं, जो आधे घंटे में हानि पहुँचा सकते हैं। दूसरे भी उतनी ही जल्दी जवाब देने की तैयारी कर रहे हैं। इस तरह धीरे-धीरे ऐसे तरीके ढूँढ़ने में प्रगति हो जायगी कि चन्द मिनटों में ही हमला हो। इस तरह जितनी ही-जितनी प्रगति होगी, उतना ही-उतना अहिंसा के लिए पूर्ण मौका मिलेगा। इसलिए यद्यपि यह खेदजनक बात है, तो भी हमें इसका कोई डर मालूम नहीं होता। कोई रास्ता न सूझने के कारण ही यह सब हो रहा है। अक्ल स्थगित और कुण्ठित हो गयी है। जहाँ हिंसा के महान् पण्डितों की मति कुण्ठित है, वहाँ हिन्दुस्तान की स्थिति डाँवाडोल हो, तो आश्चर्य की बात नहीं। यही कारण है कि यहाँ के कम्युनिस्ट भी विश्वशान्ति की बात कहने लगे हैं।

आज हमारे देश के कई शिक्षितों को यह भ्रम है कि छोटी-छोटी हिंसा कारगर नहीं होती। इसमें हिंसा का दोष नहीं, उसके छोटेपन का दोष है। इसीलिए बड़े-बड़े औजार बनाये जाते हैं। किन्तु अहिंसा के लिए शायद छोटी-छोटी हिंसा भी कारगर हो। वे समझते हैं कि मोटरों को आग लगाने, रेल उखाड़ने या स्टेशन जलाने से हमारी आवाज बुलंद होगी। किन्तु इस पर जैसे-जैसे हम सोचते हैं, *हमारा निश्चय होता है कि यह १९४२ के आन्दोलन का ही प्रभाव* है। अहिंसा के उत्तम आन्दोलन में जो गलत बातें हुईं, उसके परिणामस्वरूप यह विपरीत रूप आया है। कुछ लोग मानते हैं कि अहिंसा से स्वराज्य मिला।

बहुत-से लोग यह मानते हैं कि हिंसा और अहिंसा मिली, इसलिए स्वराज्य मिला और कुछ लोग यह भी मानते हैं कि हिंसा से ही अंग्रेजों को हिन्दुस्तान छोड़ना पड़ा। इस तरह जब कोई गलत बात हो जाती है, तो उसका कितना बुरा परिणाम होता है, इसका दृश्य हमें देखने को मिलता है।

विश्वयुद्ध का भय नहीं

हम यह नहीं कहना चाहते कि जो चर्चा आज शहरों में हो रही है, उसके पीछे कोई चीज नहीं है। प्रान्त-रचना मे भाषा का विचार काफी महत्त्व रखता है, यह हम भी कबूल करते हैं। जनता की भाषा मे जनता का कारोबार चले, यह बुनियादी बात है। किन्तु इसकी चर्चा शान्ति से भी हो सकती है। यह ऐसा विचार नहीं कि दूसरा कुछ करने से लाभ होगा। करीब-करीब यह मसला हल हो रहा है और बहुत-कुछ हल हो भी गया है। यद्यपि बड़ी हिंसा की श्रद्धा डगमगा रही है, तो भी छोटी हिंसा की श्रद्धा बनी है और वह दृढ़ हो रही है। यह हिन्दुस्तान के लिए बहुत बुरा है, इससे हिन्दुस्तान की प्रगति हर्गिज नहीं हो सकती। इसीलिए सेवाग्राम में 'विश्वशान्ति परिषद्' के समय हमने संदेशा भेजा था कि मुझे "वर्ल्ड वार" का इतना डर नहीं, जितना छोटी-छोटी लड़ाई या और झगड़ों का है। इसलिए सब पक्षों के विचारकों के लिए यह सोचने का विषय है कि हमारे मस्तिष्क मे से छोटी हिंसा की श्रद्धा कैसे मिटेगी।

शहरों पर असर डालें

इसीलिए हम चाहते हैं कि देहातों में भूदान के परिणामस्वरूप जो हवा तैयार हो रही है, उसे हम शहरों में ले जायें। शहरों मे इस विचार पर चर्चा चले। शहर में काफी विचारशील समाज है, वह इन बातों पर ध्यान देने के लिए उत्सुक है। इसलिए भूदान-यज्ञ और सर्वोदय की हवा जितनी जोर से शहरों मे ले जा सकेंगे, उतनी ही अहिंसा की श्रद्धा बढ़ेगी। हम जानते हैं कि शान्तिमय क्रान्ति करनेवाले देहात के लोग हैं और वे ही क्रान्ति करेंगे। इसके लिए हम सभी पक्षों के कार्यकर्ताओं से सहयोग चाहते हैं। विभिन्न पक्षों के बीच हमें काम करना चाहिए। यह काम इस ढंग से करेंगे, तो उनके बीच का भेदभाव भी कम होगा।

इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता कि जब कोई भी मसला खड़ा होता है, तब विभिन्न पार्टियाँ चुनाव में उससे लाभ उठाने की सोचती हैं। चुनाव जिन्दगी की ऐसी घटना है, जिसके इर्दगिर्द राजनैतिक पुरुषों का सारा जीवन रहता है। इसलिए हमें आनेवाले चुनाव में इससे लाभ न लेकर इससे होनेवाली हानि मिटाने की ही योजना करनी चाहिए। हमें यह सब राजनैतिक चिन्तन करना होगा और सब पक्षों के बीच रहकर सबकी मार खानी होगी। पक्षातीत भी कोई राजनीति हो सकती है, जिसे 'लोकनीति' कहते हैं, इसका भान शहरों को कराना होगा। हमें उन्हें समझाना होगा कि एक पक्ष की कमजोरी के कारण दूसरे पक्षवाले समर्थ साबित होते हैं, किन्तु इन दोनों पक्षों से भी उन्नत कोई पक्ष हो सकता है। क्योंकि दोनों में से एक सत्ताधारी होता है, तो दूसरा सत्ताभिलाषी। याने दोनों सत्ता चाहते हैं। इस हालत में किसी एक पक्ष की शुद्धि दूसरे के दोष चुनने से नहीं हो सकती। शुद्धि तो तब होगी, जब कि दोनों के ऊपर कोई पक्षातीत समाज रहे। हमें सबसे परे और सबके बीच रहकर सीधी बात लोगों के सामने रखनी होगी। अगर इतना पूरक काम शहर में जारी रहे, तो हमारा विश्वास है कि चन्द दिनों में हिन्दुस्तान की सारी हवा बदल जायगी।

छोटी हिंसा कैसे मिटे ?

इतने दिनों से हम देख रहे हैं कि देहात के लोग बड़े प्रेम और इज्जत से अपनी जमीन देते हैं, तरी जमीन भी दे देते हैं। यही बता रहा है कि लोगों का मानस कितना तैयार हुआ है। अब हमें इसी पुण्यशक्ति को प्रबल बनाना होगा। इसे हम 'जनशक्ति' भी कह सकते हैं, लेकिन यह पुण्यशक्ति है। इसे बढ़ाकर उसका असर शहर पर ले जाना चाहिए। हमें उम्मीद है कि यह काम हिन्दुस्तान में किया जा सकता है।

यह भाषावाली बात तो चन्द दिनों में साफ हो जायगी। हमें उसकी चिन्ता नहीं। हमारे सामने यही सवाल है कि लोगों के हृदय में जो छोटी हिंसा पर श्रद्धा बैठी है, वह कैसे खतम हो ? इसका आरम्भ शिक्षक और माता-पिता को ही करना चाहिए। बच्चे को पीटेंगे तो उस पर अच्छा असर होगा, यह भ्रम उन्हें मन से

निकाल देना चाहिए। भय से कोई भी सद्गुण पैदा नहीं होता। निर्भयता के साथ बुराइयाँ चलेंगी, लेकिन भीरुता के साथ कोई गुण हों, तो भी वे कारगर न होंगे। इसलिए माता-पिता और गुरु को नया नीतिशास्त्र सीखना और निर्माण करना चाहिए।

जो बात कानून के भय से की जाती है, वह जनमत से लोग करें, ऐसी स्थिति निर्माण करनी चाहिए। चोरी कानून से बन्द नहीं, वह तो इसीलिए है कि उसके खिलाफ जनमत है। आज कानून के बावजूद भी जो चोरी होती है, उसके लिए आज की समाज-रचना ही कारण है। यदि समाज-रचना सुधरे, तो चोरियाँ करीब-करीब मिट ही जायँ, क्योंकि उसके खिलाफ पूर्ण लोकमत तैयार है। इसी तरह संग्रह के खिलाफ लोकमत तैयार होना चाहिए। ऐसा करेंगे, तो उत्तरोत्तर कानून की आवश्यकता कम होती चली जायगी और जो भी कानून रहेगा, वह सफल होगा। आज की हालत बिलकुल उल्टी है। आज हर बात में कानून की आवश्यकता महसूस होती है और वह कारगर होने के बदले कमजोर ही साबित होता है। होना तो यह चाहिए कि कानून की आवश्यकता दिन-ब-दिन कम होती जाय और जो भी कानून बने, वह लोकमत के अनुसार हो। समाज में यही अवस्था लानी होगी।

मेरी कोशिश है कि हिन्दुस्तान में ऐसा समाज निर्माण हो, जो पक्षातीत लोकनीति द्वारा समाज को ठीक रास्ते पर रखने के लिए काया, वाचा, मनसा लगा रहे। वह समाज-व्यवहार और समाज के बहुत से कार्यों के लिए उदासीन नहीं, बल्कि दक्ष एवं सदा सावधान रहेगा और हर बात को तटस्थ बुद्धि से देखेगा। लोकनीति का एक-एक विचार पक्का करने में हम अपना सारा बुद्धिबल खर्च करेंगे। आज जो संशय की स्थिति है, वह देश के लिए बड़ी ही खतरनाक है। अगर इससे भारत को मुक्त करना हो, तो प्रतिक्षण सोचना और काम पूरा करना होगा।

महबूबनगर
२५-२-'५६

हमें बड़ी खुशी है कि आप लोग बड़े प्रेम से यहाँ आये और इस बात से अधिक खुशी हो रही है कि इतनी कड़ी धूप में बैठे हैं। हमारे हिन्दुस्तान की यह धूप बड़ी पाक धूप है। इससे हमारे खेतों में फसल होती है। यद्यपि खेती के लिए बारिश की बहुत जरूरत है, फिर भी केवल बारिश से खेती नहीं होती। जब धूप से जमीन खूब तप जाती और उसके बाद बारिश होती है, तभी फसल आती है।

बाहर से धूप, अन्दर से पानी

ईश्वर की दुनिया की खूबी है कि इतनी कड़ी धूप में भी बड़े-बड़े पेड़ बिलकुल हरे-भरे हैं। आप देख ही रहे हैं कि इन दिनों भी आम के पेड़ कितने हरे भरे हैं। वे चौबीसों घंटे खुली हवा में रहते हैं। हिन्दुस्तान की इतनी कड़ी गर्मी में भी ये पेड़ इसीलिए हरे-भरे दीखते हैं कि उनकी जड़ें जमीन के अन्दर गहराई में गयी हैं और वहाँ उन्हें पानी मिलता है। उन्हें अन्दर से पानी और ऊपर से धूप मिलती है, इसीलिए वे हरे-भरे दीखते और इसीलिए आपको सुन्दर मीठे-मीठे आम खाने को मिलते हैं। अगर ऊपर से खूब धूप मिले और नीचे से पानी न मिला, तो ये जल जायँगे। इसी तरह अगर नीचे जमीन में पानी खूब हो और ऊपर बिल्कुल धूप न हो—सूर्यनारायण ही न हो—तो सारे पेड़ सड़ जायँगे। इसी तरह हमारा जीवन हरा-भरा होने के लिए दो बातों की आवश्यकता है: (१) जिस तरह पेड़ धूप में तपते हैं, वैसे ही बाहर से हमें खूब तपना चाहिए और (२) जैसे पेड़ों के नीचे पानी होता है, वैसे ही हमारा हृदय प्रेम और भक्ति से खूब भरा होना चाहिए। इस तरह जब हृदय के अन्दर भक्ति का स्रोत बहता और बाहर से तपश्चर्या होती है, तभी जिन्दगी हरी-भरी होगी।

प्रेम की ठंढक और मेहनत की गर्मी

भूदान-यज्ञ में ये दोनों बातें हैं। हम लोगों को समझाते हैं कि जमीन भगवान् की देन है, इसलिए सबके लिए है। सबको जमीन दोगे, तो हृदय में खूब प्रेम

पैदा होगा और अपना काम बनेगा। यह जबर्दस्ती से नहीं, बल्कि प्रेम और भक्ति से करने की बात है। हृदय में प्रेम और भक्ति हो, तो खूब भूदान होगा। जिन्हें जमीन मिलेगी, उन्हें भी खूब तप करना चाहिए, आलस्य न करना चाहिए। अपने घरवालों के साथ काम करना चाहिए। दान देने में प्रेम की जरूरत रहेगी और दान का उपयोग करने में तप की। इस तरह देनेवालों का प्रेम और लेनेवालों का तप, दोनों प्रकट होंगे, तभी पेड़ों के समान समाज भी हरा-भरा होगा।

मनुष्य-जीवन के लिए प्रेम और मेहनत, दोनों चीजें बहुत जरूरी हैं। मेहनत या श्रम को संस्कृत में 'तप' कहते हैं, क्योंकि उससे ताप होता है। मेहनत से शरीर की गर्मी बढ़ती और तब खाना हजम होता है। इसलिए खाना हजम करने और पैदावार बढ़ाने के लिए मेहनत करनी चाहिए। प्रेम की ठंडक और मेहनत की गर्मी, दोनों इकट्ठा होते हैं, तो फिर जीवन में आनन्द-ही-आनन्द रहता है। फिर तो सूरज की यह धूप भी ठंडी होकर चाँदनी बन जायगी।

अभी आप सब इतनी धूप में प्रेम से बैठे हैं, तो क्या आपको गर्मी मालूम होती है? जिन्हें लगता है कि यह चाँदनी है, वे हाथ उठायें। (सारे हाथ ऊपर उठे) आप लोग इस धूप को चाँदनी कहते हैं, क्योंकि आप प्रेम से यहाँ बैठे हैं। जिन्हें जबरन यहाँ लाकर बिठाया जाय, उन्हें यह धूप मालूम होगी। आज जो धूप में बैठे हैं, उनके पास है, राम और छाया में बैठनेवालों के पास है, आराम। जो मेहनत करते हैं, उनके पास राम होता है। राम बेहतर है या आराम? लोग कहते हैं कि बाबा पाँच साल से खूब घूम रहा है, लेकिन बाबा को इन पाँच सालों में कोई तकलीफ नहीं हुई। जब भगवान् रामचन्द्र १४ साल घूमे, तो हमारा क्या ठिकाना? हम घूमते हैं, तो लोग प्रेम से जमीन देते हैं और वह गरीबों को मिलती है। अभी आप लोगों ने प्रेम से धूप को चाँदनी कहा। जहाँ प्रेम होता है, वहाँ धूप भी चाँदनी बन जाती है। जहर 'अमृत' बन जाता और दुःख 'सुख' बन जाता है।

माधवरावपल्ली (महबूबनगर)
६-३-'५६

स्थितप्रज्ञ के लक्षणों में हमने सुना कि हम अपनी आत्मा में सबको देखें। जब हम आत्मा में समग्र विश्व का दर्शन करते हैं, तब मानव-बुद्धि स्थिर होती है। यह बात हिन्दुस्तान में कितने ही लोगों ने कितनी ही बार कही है। परिणाम यह है कि इस विचार को सब लोग कबूल करते हैं। फिर भी वे समझते हैं कि यह चीज हमारे जीवन के लिए कम-से-कम आज तो काम की नहीं है, बहुत बड़ी ऊँची बात है। वास्तव में यही एक चीज है, जिसके कारण हमारा जीवन आगे नहीं बढ़ रहा है। हम ऐसी सभी अच्छी चीजों को ऊँचे ताक पर रख लेते और कहते हैं कि यह हमारे काम की नहीं है। परिणाम यह होता है कि अपने काम की चीज का भी लोगों को भान नहीं होता।

परस्पर प्यार की आवश्यकता

यहाँ के लोग अपनी आत्मा को विश्व में देखने की बात झट कबूल कर लेते हैं; लेकिन कार्यकर्ताओं को आपस में प्रेम करने को कहा जाता है, तो कहते हैं कि भाई, हमसे यह नहीं बनेगा। यह समझाने पर कि एक-दूसरे के दोष ध्यान में न लें, कहते हैं कि हमसे यह नहीं बनेगा। इसके अतिरिक्त कुछ लोग इसे पड़ोसी-पड़ोसी का एक-दूसरे पर प्रेम करने की बात समझते हैं, तो कुछ लोग इसे बहुत ऊँची बात समझते हैं। निस्सन्देह जो ऊँचा तत्त्व होता है, वह हमारी आज की योग्यता से परे है। किन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि उन तत्त्वों का आज उपयोग ही नहीं है। आज के जीवन में भी उनका उपयोग होता है और कल के जीवन में तो है ही। कम से-कम आज इतना तो हो ही सकता है कि हम अपनी आत्मा में उन लोगों की आत्मा देखें, जो हमारे काम में लगे हैं। हम इससे भी और छोटी बात कह सकते हैं, याने अपनी आत्मा में चाहे दूसरे को न देखें, लेकिन कम-से-कम एक-दूसरे पर प्यार रखना तो सीखें। अगर यह छोटी-सी चीज हम समझ लेंगे, तो भूदान-यज्ञ का काम बिलकुल आसान हो जायगा।

मेरा कुल निरीक्षण यही रहा है कि आपसी प्रेम के अभाव में ही हमारी शीघ्र प्रगति नहीं हो रही है। फिर भी इस हालत में हमें काम करना है, तो यही उपाय है कि हम इन तत्त्वों को बार-बार दुहरायें, इनका स्मरण, चिंतन तथा मनन करें और अपने पर अधिकाधिक काबू पाना सीखें। अपना अधिकाधिक संयम रखें और दूसरे को क्षमा करते चले जायँ। अगर हम क्षमा की दृष्टि से दूसरे की ओर देखें, तो कभी-न-कभी वह दर्शन होगा, जिसका जिक्र स्थितप्रज्ञ के लक्षण में आता है।

कठिन कार्य के लिए ही हमारा जन्म

कल एक भाई ने सवाल पूछा कि 'आप बहुत बड़े लोगों से जमीन लेते हैं, यह तो ठीक है; लेकिन बड़े आश्चर्य की बात है कि गाँव में जाते ही छोटे छोटे लोग भी देने को राजी हो जाते हैं। वे ही पहले सामने आ जाते हैं। तो, क्या उनका दान लेने से क्रान्ति हो सकती है ? दस एकड़वाले से दो एकड़ ले लें, तो उसके पास आठ ही एकड़ रह जायगी। इससे उसे भी तकलीफ होगी और दो एकड़ पानेवाले को भी कोई खास फायदा न होगा। इस तरह दो एकड़ में क्या क्रान्ति होगी ?' हमने उसे समझाया कि बड़े बड़े लोगों से जो जमीन मिलेगी, उससे क्रान्ति तो होगी, पर वह छोटी क्रान्ति होगी। यह जो गरीब से दान मिलता है, उससे बड़ी भारी क्रान्ति होती है। अगर छोटे लोग अपनी मालकियत फेंकने को राजी हो जायँ, तो स्वामित्व ही खतम हो जाता है। क्योंकि बड़े लोगों का स्वामित्व छोटों ने ही टिका रखा है। ये छोटे मालिक अपनी मालकियत छोड़ दें, तो मालकियत ही खतम हो सकती है। क्योंकि उससे जो प्रेम-रसायन पैदा होगा, उसमें सबके दिल पिघल जायँगे। उससे नैतिक ताकत पैदा होगी और एक नयी चीज बनेगी।

कार्यकर्ताओं को यही ध्यान में रखना है कि हम देश में एक नैतिक ताकत बना रहे हैं। फलाना कांग्रेसवाला है और फलाना पी० एस० पी० वाला, इस तरह सोचते चले जायँगे, तो बिलकुल निकम्मे साबित होंगे। फिर तो यह भी सोचा जायगा कि फलाना कार्यकर्ता ब्राह्मण है या ब्राह्मणेतर, तेलुगु है कि कन्नड, मुसलमान

है कि हिन्दू ? अगर हम इस तरह भेददृष्टि से देखा करेंगे, तो भूदान-यज्ञ हमसे नहीं होगा। यह काम स्वामित्व के निरसन का काम है। इसलिए हमने कहा कि यह एक नैतिक कार्य है और इसलिए स्थितप्रज्ञ को हम तकलीफ दे रहे हैं कि हम पर उसका कुछ आशीर्वाद हो, नहीं तो स्थितप्रज्ञ के ही लक्षण रोज क्यों बोलते ? अपना पुराना गीत "झंडा ऊँचा रहे हमारा" गा सकते थे। आखिर कौन-सा झंडा ऊँचा रहेगा ? अभिमान, मत्सर और घमंड का ? इसलिए वे सारे गीत हम नहीं गाते। यह नहीं कि उन गीतों में अच्छे भाव नहीं हैं; अच्छे भाव जरूर हैं, लेकिन हम जो काम करने जा रहे हैं, उसका स्तर ही ऊँचा है। वह तो दुनिया का आज का प्रवाह बिलकुल ही बदल देने का काम है। निःसंशय यह कठिन काम है, लेकिन हम कहना चाहते हैं कि यह काम अगर आसान होता, तो हमें दिलचस्पी ही न रहती। आसान काम को दुनिया के लोग कर ही रहे हैं। हमारा और आपका अवतार कठिन काम करने के लिए ही है। यह मानव-जन्म है। इसकी भी कोई सार्थकता है। हमें सारा-का-सारा नैतिक स्तर ऊँचा उठाना है। कठिन है, इसीलिए तो दिलचस्पी है।

नैतिक स्तर ऊपर उठाने का कार्य

कल महबूबनगर के कार्यकर्ताओं ने संकल्प किया कि इस जिले से छठा हिस्सा यानी दो लाख एकड़ जमीन हासिल करेंगे। मान लीजिये कि कल सरकार कानून कर ले कि जमीन का छठा हिस्सा छीन लेना है और लोग गरीब हैं, इसलिए छीन लेते हैं, तो क्या इससे हमारा काम बनता है ? कुछ मूर्ख सोचते हैं कि सरकार से काम जल्दी होगा। पर यह ऐसा हो हुआ, जैसे कोई कहे कि मकान बनाने में कितना समय लगता है ? आग लगायेंगे, तो जल्दी हो जायगा। लेकिन आग लगाना और मकान बनाना एक बात नहीं। लोगों के हृदय की भावना बदलने और नैतिक स्तर ऊँचा उठाने का काम कानून से नहीं होता। जिमने इस काम को भूमि के बँटवारे का काम माना, वे ही इसकी कानून के साथ तुलना करते हैं, पर इसकी तुलना कानून के साथ हो ही नहीं सकती। इसकी तुलना संतों के साथ हो सकती है। जिन्होंने जनता का नैतिक स्तर ऊँचा उठाने की

ठानी थी, लेकिन समाज-सुधार का, समाज के ऐहिक स्तर को ऊँचा उठाने का काम नहीं छोड़ा था। उन्हींके काम के साथ तुलना करो और फिर बताओ कि नाहक क्यों भूदान प्राप्त करते हो ?

इस पर आप कह सकते हैं कि फिर गाँव-गाँव जाइये, भजन करिये और कराइये, तो जनता का स्तर ऊपर उठेगा। हम पूछते हैं कि दुनिया का अहम् सवाल हाथ में लेकर जनता का नैतिक स्तर ऊपर उठाना आसान है या कोई मामूली काम लेकर ? हमारा दावा है कि जनता का अहम् सवाल हाथ में लेकर ही नैतिक स्तर ऊँचा उठाना आसान है। सिर्फ आसान ही नहीं, उससे सचमुच नैतिक स्तर ऊँचा उठता है। नहीं तो आभास हो जायगा कि कोई सत्पुरुष आ गया, प्रेम से भजन कर लिया, दो मिनट के लिए हम वैकुंठ में पहुँच गये, काम, क्रोध, मोह, लोभ छूट गये; लेकिन उसके चले जाने पर काम, क्रोध, मोहादि फिर से जाग जायेंगे। सत्पुरुष की याद रह जायगी कि फलाने दिन वे आये, लेकिन कुछ जीवन परिवर्तन नहीं होगा। अगर दस एकड़ में से दो एकड़ जमीन दे डालते हैं, तो जिस घर से वह दान मिलेगा, उस घर के बाल-बच्चे उदार बन जायँगे। वे जीवनभर अभिमानपूर्वक कहेंगे कि हमारे माता-पिता ने गरीबी में भी दो एकड़ जमीन का दान किया था। उससे कुल-धर्म बढ़ेगा। मनुष्य के जीवन को पावन करनेवाली कुल-धर्म से बेहतर कोई चीज नहीं होती।

कुल-धर्म की दीक्षा

उपनिषद् में एक कहानी है। एक ब्राह्मण का लड़का बारह साल तक गुरु के घर जाने की बात ही नहीं निकालता था। उन दिनों माता-पिता सोचते थे कि लड़के की स्वाभाविक इच्छा होगी, तब भेजेंगे। दूसरे लड़के आश्रम चले गये। एक दिन उसके पिताजी ने उसे प्रेम से बुलाकर कहा कि आज तक अपने कुल में नाममात्र का एक भी ब्राह्मण नहीं बना है। निरक्षर, निरभ्यास, अक्षरशून्य कोई भी ब्राह्मण नहीं हुआ। हमारे कुल में नामधारी ब्रह्मबन्धु यानी ब्राह्मण नहीं हुआ : "न वै सौम्यः अस्मद्कुले नामब्रह्मबंधुरेव भवति।" पिता को इससे ज्यादा नहीं कहना पड़ा और वह उठा और गुरु के घर पढ़ने चला गया। किसी बेटे से

कहा जाय कि तेरा बाप लड़ाई में प्रहार सहकर मर गया, तो पचासों उपाय या ग्रन्थों से जो परिवर्तन न होगा, वह उस बात से होगा।

मनुष्य के चरित्र को प्रेरणा देनेवाली सबसे बलवान् कोई चीज है, तो वह कुल-धर्म है। लोगों को समझाया गया कि प्रेम से दे दो, तो पाँच लाख लोगों ने दान दिया। इसका मतलब यह है कि उनके घर के कुल लोगों की तरफ से वह दान मिला है। पाँच लाख घरों में उदारता का कुल-धर्म बन गया। उन लोगों ने अपने बच्चों के लिए सर्वोत्तम विरासत दे दी। अब आप ही बताइये, इससे नैतिक स्तर ऊँचा उठना आसान है या वैसे ही कोरा नैतिक उपदेश देने से ?

यह तो साक्षात् अपने घर से त्याग हुआ! पाँच लाख घरों में कुल-धर्म जाग्रत हो गया! अब जितने परिवारों में जमीनें बँटेंगी, उन परिवारों के बच्चे भी समझेंगे कि समाज ने हम पर प्रेम किया। हमारी कोई भी जमीन नहीं थी, समाज ने हमें प्रेम से जमीन दी। इसलिए हमें भी समाज की सेवा करनी चाहिए, ऐसी भावना उनके कुल-धर्म में मिल गयी। इस तरह जिन्हें जमीन मिली, उनके लड़कों की भी उन्नति हुई। अगर छीनकर जमीन दी जाती, तो ऐसा न होता। लेकिन प्रेम से दी गयी, इसलिए उन्हें प्रेम की दीक्षा मिली। सारांश, जितने कुलों में जमीन बँटेगी और जितने कुलों की तरफ से वह दी जायगी, उतने सभी कुलों में प्रेम-धर्म पहुँच जायगा।

इससे कार्यकर्ताओं का भी कुलधर्म बढ़ेगा। आज हजारों कार्यकर्ता गाँव-गाँव घूम रहे हैं। उनके बच्चे याद करेंगे कि जब सारी दुनिया लोभवश थी, उस हालत में भी हमारे पिताजी गरीबों के लिए गाँव-गाँव, घर-घर धूप में घूमे! इस तरह जमीन दिलानेवाले के घर में भी कुलधर्म जाग्रत हो जायगा।

रूसियों ने भूदान की फिल्म ली

सारांश, भूदान-यज्ञ की तुलना करनी हो, तो उन सन्तों के कार्यों से करनी चाहिए, जिन्होंने समाज के उत्थान के लिए काम किये थे। इस काम की तुलना रूस और चीन के छीन लेने के कार्यक्रम के साथ नहीं हो सकती। यह बिलकुल ही दूसरी वस्तु है। इसमें आध्यात्मिक उत्थान की बात है। इसलिए कार्यकर्ता छोटी नजर न रखें, जरा बड़ी नजर से देखें।

अभी आपके सामने एक घटना हो गयी ! वह छोटी घटना नहीं है। आज तक इस आन्दोलन को देखने के लिए दुनियाभर के लोग आये, लेकिन रूसी लोग नहीं आये। परन्तु अभी-अभी रूस से एक भाई फिल्म लेने के लिए आये, दो दिन रहे और चले गये। जो रूस कानून के लिए प्रसिद्ध है, उस देश के लोग यहाँ आयें और यहाँ कुछ प्रेम से हो रहा है, ऐसी भावना से फिल्म ले जायें, यह कोई छोटी घटना नहीं। अगर कानून या मारपीट से जमीन छीनी जाय, तो उसकी फिल्म लेने को कौन आयेगा ? हिन्दुस्तान मे यह एक काम ऐसा हो रहा है, जिसकी ओर दुनिया आशा से देख रही है।

हमारा नम्र दावा है कि इस काम के कारण हिन्दुस्तान का सिर दुनिया में ऊँचा हुआ है। कार्यकर्ता और बाकी के सारे लोग इस काम की दिल से इज्जत महसूस करें और प्रेम से इसमे लगें। वे इसका फल आत्मशुद्धि मानें। इसमें कितनी प्रतिष्ठा मिली, हमारा नाम ज्यादा हुआ या दूसरे का ? ऐसी दृष्टि से इस आन्दोलन को देखेंगे, तो कोई लाभ न होगा। इससे चित्तशुद्धि होती है या नहीं, इसी दृष्टि से देखें और जिसने जितना काम किया, उतना हरिप्रसाद समझकर स्वीकार करें। साथ ही जितना काम आज नहीं बना, उतना कल बनेगा, ऐसी आशा रखें, तो यह काम तीव्रगति से फैलेगा। ईश्वर चाहता है कि यह काम फैले।

गुमडम (महबूबनगर)
८-३-'५६

धर्म-विचार खूब फैले

हम बार-बार इस बात पर जोर देते रहते हैं कि हमारे काम के साथ-साथ विचार का जोरों से प्रचार हो। कोई भी आन्दोलन, जो सारे जीवन का ढाँचा बदलने की हिम्मत करता है, विचार की बुनियाद पर ही खड़ा हो सकता है। जितने स्थूल कार्य किये जायँ, चाहे वे भूदान-यज्ञ-आन्दोलन जैसे हों या और कोई खादी ग्रामोद्योग आदि, सभी विचार के प्रचार के लिए ही होने चाहिए। यानी विचार समझे बिना कोई स्थूल कार्य किया जाय, तो उसमें से मुख्य वस्तु न निकलेगी। भले ही अच्छा काम होने पर उससे अच्छे परिणाम मिलें। इसलिए बुनियादी विचार यही है कि धर्म-विचार खूब फैले और धर्म-विचार का साहित्य घर-घर पहुँचे। वह जबानी और पुस्तक के रूप मे लोगों के पास पहुँचाना चाहिए।

'धर्मग्रन्थ' की परिभाषा

लेकिन सवाल यह उठता है कि हम धर्म-साहित्य किसे कहें? हम समझते हैं कि हमारे 'धर्म-साहित्य' शब्द से कुछ गलतफहमी हो सकती है। बहुत लोगों को लगता है कि हम किन्हीं धर्मग्रन्थों का प्रचार करते हैं, तो धर्म-विचार का प्रचार हो जाता है। अगर दूसरे व्यवहार के विषयों के विचार का प्रचार होता है, तो समझते हैं कि उसका धर्म-विचार के साथ कोई संबंध नहीं, किन्तु दोनों बातें गलत हैं। हमें कहना पड़ता है कि जिन्हें हम 'धर्म-ग्रन्थ' कहते हैं, वे पूरे-के-पूरे धर्म-विचार से भरे हैं, ऐसी बात नहीं है, भले ही वे हिन्दू-धर्म के हों, मुसलिम-धर्म के, ईसाई-धर्म के या और किसी धर्म के। बड़े-बड़े धर्म-ग्रंथों में भी ऐसे अंश होते हैं, जिन्हें हम धर्म विचार या सद्‌विचार के तौर पर आज की कसौटी से कसने पर मान्य नहीं कर सकते। नहीं कह सकते कि महाभारत मे जो कुछ भी लिखा है, वह कुल-का-कुल धर्म-विचार है। यही हाल मनुस्मृति, ओल्ड टेस्टामेण्ट, न्यू टेस्टामेण्ट या और भी कई ग्रन्थों का है। वास्तव में हममें सार ग्रहण करने की

वृत्ति होनी चाहिए। संतरे का फल बड़ा अच्छा होता है, रोग और रुचि के लिए वह उत्तम-से-उत्तम फल है। लेकिन हम उसको पूरा-का-पूरा नहीं खा सकते। उसका छिलका फेंकना पड़ेगा, बीज निकाल देना होगा और जो सारभूत अंश है, उतना ही ग्रहण करना होगा। यह नियम धर्म-ग्रंथों पर भी लागू होता है। हम नहीं कह सकते कि महाभारत और पुराण-ग्रंथों का प्रचार हो जाने से धर्म का प्रचार हो जाता है। इसलिए धर्म-विचार याने क्या, इसका हमें बारीकी से परीक्षण करना चाहिए।

इसके विपरीत यह भी कह सकते हैं कि व्यावहारिक प्रश्नों की चर्चा करनेवाले ग्रन्थ भी बड़े धर्म-ग्रन्थ हैं। सर्व-सेवा-संघ ने "मल-मूत्र-सफाई"* नामक एक ग्रन्थ प्रकाशित किया है। गाँव-गाँव में मल-मूत्र का बड़ा दुरुपयोग होता है, रास्ते पर सब चीजें पड़ी रहती हैं, गन्दगी फैलती है। मनुष्य के मल-मूत्र का किस तरह इन्तजाम करना चाहिए, इसका वर्णन इस ग्रन्थ में है। कुल-का कुल मल-मूत्र खेत में जाना चाहिए, ऊपर मिट्टी, घास-फूस डालना चाहिए और उसका भी इन्तजाम किस तरह करना चाहिए, ये सब बातें चित्रों के साथ उस ग्रन्थ में दिखायी गयी हैं। हम कहना चाहते हैं कि वह धर्म-ग्रन्थ है और खालिस धर्म-ग्रन्थ है। याने उसमें अधर्म का कोई अंश मिला हुआ नहीं है। अगर मानव-जीवन को पवित्र और उन्नत बनाना है, तो उसमें बतायी गयी तरकीब के मुताबिक काम करना होगा। यह नहीं कि उसमें जो तरकीब बतायी है, उससे भिन्न और बेहतर तरकीबें नहीं हो सकतीं। किन्तु उसमें जिस विषय की चर्चा है, वह विषय धर्म है, यही हमारा कहना है। इसीलिए अपने पुराने धर्म-ग्रन्थों में शौच-विचार, प्रातःस्नान आदि सारा भाग धर्म का हिस्सा माना जाता था। हम समझते हैं कि गाँव-गाँव में ग्रामोद्योग किस तरह जारी किये जायँ, इसकी चर्चा जिस ग्रन्थ में हो, वह धर्म-ग्रंथ है। इस तरह धर्म ग्रन्थ वह है, जिससे चित्त की शुद्धि होती है और समाज का अच्छी तरह धारण होता है।

---

* नया संस्करण 'सफाई : विज्ञान और कला' नाम से निकला है। मूल्य पचहत्तर पैसे।

भूदान, शुद्ध धर्म-कार्य

इसलिए धर्म विचार या धर्म-साहित्य का संकुचित अर्थ नहीं करना चाहिए। हमारा दावा है कि भूदान-यज्ञ एक शुद्ध धर्म-कार्य है। अगर यह जमीन छीनने का आन्दोलन होता, तो यह शुद्ध धर्म-कार्य नहीं रहता। किन्तु प्रेम के तरीके से जमीन के बँटवारे की बात जहाँ होती है, वहाँ वह विचार शुद्ध, निर्मल धर्म-विचार है। जो उसके मुताबिक अमल करेगा, उसके हृदय की शुद्धि हुए बिना नहीं रहेगी। भूदान-यज्ञ में हरएक व्यक्ति के पूर्ण विकास के लिए मौका मिलेगा। उसमें समाज की धारणा होगी, समाज निर्वैर बनेगा और समाज में अन्न-उत्पादन बढ़ेगा। इसलिए भूदान-यज्ञ का विचार एक धर्म-विचार है। जो सर्वोत्तम धर्म-ग्रन्थ कहे जाते हैं, उनमें भी अन्न-उत्पादन की बात कही गयी है। उपनिषद् का प्रसिद्ध वाक्य है : "अन्नम् बहु कुर्वीत।" उपनिषद् को क्या गरज थी कि वह अन्न बढ़ाने की बात करे? वह इसलिए अन्न बढ़ाने की बात करती है कि अगर अन्न न बढ़ेगा, तो परस्पर वैर बढ़ेगा। आपके सामने दो ही रास्ते हैं—या तो वैर बढ़ाओ या अन्न। इसीलिए उन्होंने अन्न बढ़ाने की बात बतायी। अन्न इतना बढ़ाना चाहिए कि कोई भी शख्स किसीके घर में जाय, तो उसे वह मिले। प्यासा मनुष्य पानी माँगता है, तो हर घर से उसे पानी मिलता है, इसी तरह भूखे मनुष्य को हर घर में खाना मिले, इतना अन्न-संग्रह समाज में परिपूर्णता से होना चाहिए।

धन समाज का बढ़े

एक भाई ने बाबा पर टीका की है कि 'बाबा कांचनमुक्ति की और अपरिग्रह की बात करता है, तो समाज में अन्न-उत्पादन कम करेगा। किसी तरह शरीर और आत्मा का वियोग न होने देगा।' पर वह शख्स बाबा के विचार को समझा ही नहीं। बाबा तो कहता है कि नौका के लिए पानी तो खूब चाहिए, लेकिन अंदर नहीं; बाहर, नीचे चाहिए। बाबा इतना ही कहता है कि समाज में खूब अन्न-संग्रह और धन संग्रह हो, पर वह घर में न हो। नौका के अन्दर पानी आ जायगा, तो नौका डूब जायगी। इसी तरह घर के अन्दर धन और अन्न बढ़ा,

तो घर का खात्मा हो जायगा। किंतु समाज में धन न बढ़ना चाहिए। या कम बढ़ना चाहिए, यह बाबा कभी नहीं कहता। इस तरह अन्न बढ़ाने की बात भी धर्म का अंश है।

क्या अन्न बढ़ाने में नये-नये तरीके इस्तेमाल कर सकते हैं? इस सवाल के जवाब में हम कहते हैं कि अगर वह तरीका किसीको बेकार नहीं बनाता, तो किसी भी तरीके का उत्पादन में उपयोग कर सकते हैं। उपनिषद् ने भी यह कह रखा है कि "यया कया च विधया अन्नं बहुप्राप्नुयात्" यानी जिस किसी भी विधि से अन्न बढ़ाओ। लेकिन अन्न बढ़ाने की प्रक्रिया में ही बैलों को खतम करो या मनुष्य को बेरोजगार करो, यह नहीं चलेगा। उत्पादन बढ़ाने में पुराने औजार ही इस्तेमाल करने चाहिए, सो नहीं। नये समाज में नया औजार भी हो सकता है, यह सारा धर्म का विचार है।

मैंने कहा कि स्वच्छता भी धर्म का विचार है। भूदान-यज्ञ, ग्रामोद्योग, उपज बढ़ाना, ये सभी धर्म-विचार हैं। लेकिन मुख्य वस्तु यह है कि जिससे समाज में प्रेम बढ़े, समाज निर्वैर बने, वही धर्म है। इसलिए धर्म-विचार का संकुचित अर्थ हम न करें और समझें कि सबसे श्रेष्ठ और सबसे निर्दोष कोई धर्म है, तो वह "सर्वोदय-धर्म" है। जिसमें हरएक के उदय की बात है, हरएक को पूरा पोषण-विकास का पूरा मौका मिले, एक के हित के विरुद्ध में दूसरे का हित हो ही नहीं सकता, सबके हित एक-दूसरे के अविरुद्ध हैं—ये सारे सर्वोदय-विचार हैं और यही मुख्य धर्म है। इस सर्वोदय के विरुद्ध जो चीज होगी, वह निरा अधर्म है।

सर्वोदय-धर्म में तरण और तारण

आप पूछेंगे कि यह शख्स कौन-सा नया धर्म बता रहा है? हिन्दू-धर्म, मुसलिम-धर्म, ईसाई-धर्म हो गये। अब यह एक नया 'सर्वोदय-धर्म' शुरू कर रहा है। अरे, ये जो अलग-अलग धर्म के नाम लिये, वे तो नदियाँ हैं। पर सर्वोदय धर्म कोई नदी नहीं, वह तो समुद्र है। यहाँ तक कि वह नालों को भी अपने अन्दर लेने को राजी है। इस तरह सबका स्वीकार करनेवाला यह सर्वोदय-

धर्म है। जैसे अनार में छोटे-छोटे बीज होते हैं, वैसे सर्वोदय भी सुन्दर अनार है। इसके अन्दर एक बीज हिन्दू-धर्म है, तो दूसरा बीज इसलाम-धर्म। और भी कई बीज हैं। ये सारे अलग-अलग रसे हैं। किसीका किसीके साथ कोई विरोध नहीं। किसी भी एक दाने में इतना रस नहीं, जितना अनार में है। सर्वोदय की तुलना अनार के साथ ही हो सकती है। सर्वोदय के अन्दर दुनिया के सब-के-सब धर्म *आ जाते हैं। यह कोई नया धर्म स्थापित नहीं कर रहा हूँ। यह तो 'सर्व-*धर्म का समन्वय' हो रहा है—हरएक धर्म में जो-जो अच्छाइयाँ हैं, वे सब खींचकर ले लेंगे।

इस पर फौरन कोई पूछेगा कि क्या दूसरे धर्मों में बुराइयाँ भी हैं? मैं नम्रता के साथ कहता हूँ कि जी हाँ, हैं। जहाँ पंथ होता है, उसके साथ-साथ दोष भी आता ही है। किन्तु जो समुद्ररूप चीज है, उसमें क्या दोष हो सकता है? सर्वोदय में दोष ही नहीं है। यह ठीक है कि सर्वोदय को अमल में लाने के प्रयत्न में दोष हो सकता है, लेकिन सर्वोदय में कोई दोष नहीं है। "सर्वोदयमिदं तीर्थम्।" सर्वोदय बड़ा तीर्थ है, यानी इसमें तारण भी है और तरण भी है। इसमें मनुष्य खुद भी तैर सकता है और दूसरों के तैरने की भी व्यवस्था कर सकता है। इसलिए सर्वोदय-धर्म में जीवनव्यापी कुल विचार आते हैं।

वयाथुर (महबूबनगर)
१-३-'५६

पुनः आन्ध्र में

[१०-३-'५६ से १४-५-'५६ तक]

हम अपने देश के कर्तव्य का दोहरा विभाजन करते हैं। एक तो वह विभाग है, जिसे हम 'विद्यार्थी' कहते हैं और दूसरा 'नागरिकों' का है। वैसे तो दोनों विभाग संमिश्र हैं—जुड़े हुए हैं। आज का विद्यार्थी कल का जिम्मेवार नागरिक बनता है और हम नागरिकों को भी विद्यार्थी मानते हैं। लोग समझते हैं कि इक्कीस साल की उम्रवाले को मतदान का अधिकार मिल गया, तो वह 'नागरिक' बन गया। पर वह तो केवल सर्वसाधारण की सुलभता के लिए विभाजन किया गया है। हमारे देश की सैकड़ों ऐसी मिसालें मौजूद हैं कि छोटे-छोटे बच्चों ने सारे देश को मार्गदर्शन किया है। शंकराचार्य ने सुप्रसिद्ध 'शांकरभाष्य' उम्र की सोलह साल में लिखा। इसलिए हम इस विभाजन को कोई महत्त्व नहीं देते कि अमुक की उम्र कितनी है।

विद्याभ्यास सतत जारी रहे

विद्यार्थी को हम 'नागरिक' के नाते ही देखना चाहते हैं। इसके विपरीत जो आज के नागरिक माने जाते हैं, उन्हें भी हम विद्यार्थी मानते हैं। आज की हालत में बहुत-से नागरिक विद्याभ्यास-विहीन दीखते हैं। माना गया है कि विद्याभ्यास का काल समाप्त होकर, जब मनुष्य संसार का भार उठाता है, तब उसका अध्ययन-काल भी समाप्त होता है। यह बिलकुल गलत विचार है और भारत की सभ्यता के विरुद्ध भी। भारत की सभ्यता कहती है कि मनुष्य को विद्याभ्यास, अध्ययन आमरण करना चाहिए। गृहस्थों के कर्तव्य में भी यह एक विधान है कि उसे 'स्वाध्याय' करते रहना चाहिए। इस आन्ध्र-प्रदेश में जिस 'तैत्तिरीय-उपनिषद्' का अधिक अभ्यास होता है, उसमें भी कहा है कि अपने विविध कर्तव्यों के साथ मनुष्य को स्वाध्याय भी करना चाहिए। भिन्न-भिन्न कर्तव्यों का उल्लेख करते हुए साथ ही यह भी कहा गया है : 'स्वाध्यायप्रवचने च'।

खासकर स्वराज्य के बाद नागरिक अध्ययन नहीं करते, तो हम यह स्वराज्य के लिए खतरा समझते हैं। हम तो समझते हैं कि जिसे विद्यार्थी-दशा कहते हैं, वह तो जीवन का आरम्भमात्र है। जब विद्यार्थी को विद्याध्ययन स्वतन्त्रबुद्धि से करने की शक्ति प्राप्त होती है, तब हम उसे 'नागरिक' समझते हैं। जब वह नागरिक अपनी विद्यार्थी-दशा समाप्त करता और अध्ययन करने की शक्ति प्राप्त होने पर भी अध्ययन छोड़ता है, तो वैसी हालत होगी, जैसे किसीने द्रव्यार्जन की शक्ति पाकर द्रव्यार्जन ही छोड़ दिया हो। चलने की शक्ति प्राप्त होने पर किसीने चलना छोड़ दिया हो, तो कैसे होगा? इसी तरह जो अध्ययन-शक्ति प्राप्त होने पर ही अध्ययन छोड़े, उसे हम क्या कहें। इसलिए हम ऐसा प्रयत्न नहीं करते कि विद्यार्थी और नागरिक, दोनों को अलग किया जाय। फिर भी कर्तव्यों का विभाजन ऐसा करते हैं कि आज के विद्यार्थी और नागरिकों का एक अपना-अपना कर्तव्य है। आज हम विद्यार्थियों को ध्यान में रखकर कुछ बातें रखना चाहते हैं।

हिन्दुस्तान के विद्यार्थी अनुशासनहीन नहीं

हमने देखा है कि हमारी जिस सभा में विद्यार्थियों की संख्या ज्यादा-से-ज्यादा रहती, वहाँ सभा में अत्यन्त शान्ति रहती थी। बिहार में हमने दो-सवा दो साल बिताये और बहुत-से शहरों और देहातों में काफी संचार किया। जब हमने यह सुना, खासकर बिहार के विद्यार्थियों पर यह आक्षेप है कि वे अनुशासन विहीन हैं, तो हम इससे सहमत न हुए। एक घटना पटने में जरूर हो गयी और उसमें विद्यार्थियों की ओर से कुछ गलत बातें हुईं, किन्तु मैं इस निर्णय पर न आया कि विद्यार्थी अनुशासन-विहीन हैं और उनमें विनय नहीं है। मैंने कई जगह बताया कि मुझे विद्यार्थियों का जो अनुभव आया, वह अद्भुत ही है। हिन्दुस्तान के विद्यार्थियों के लिए मेरे मन में बहुत प्रेम है। आज की तालीम की व्यवस्था कितनी रद्दी है। उसे सोचकर तो आश्चर्य ही करना पड़ता है कि विद्यार्थी इतने भी अनुशासन में कैसे रहते हैं! जो निकम्मी तालीम दी जा रही है, उससे तो उनमें और ज्यादा अनुशासनहीनता आनी चाहिए थी। पर इसका कारण भारत की हमारी सभ्यता है। बावजूद गलत तालीम के वह (सभ्यता) विद्यार्थियों को संयम में रहने के

लिए प्रवृत्त करती है। इसलिए विद्यार्थियों के सामने जब मैं बात करता हूँ, तब उनके साथ एकरूप होकर ही बात करता हूँ।

मैं जाहिर करना चाहता हूँ कि मैं और जो कुछ भी हूँ, उसके पहले मैं विद्यार्थी हूँ और मेरा अध्ययन आज तक जारी है। सहज मिसाल देता हूँ। हमारी यात्रा में जापान के एक भाई थे, तो यात्रा में भी एक घंटा देकर मैंने उनसे जापानी भाषा का अध्ययन किया। मुझे उम्र का ऐसा कोई अनुभव नहीं आया कि जब उम्र चढ़ती है, तो अभ्यास करने के लिए स्मरण-शक्ति क्षीण होती है। मेरा अनुभव तो यही है कि जैसे-जैसे शरीर क्षीण होता गया, वैसे-ही-वैसे स्मरण-शक्ति ज्यादा तीव्र हो रही है। अगर बचपन में कोई श्लोक दस बार पढ़कर ध्यान में रहता था, अब केवल दो बार रटने से ही याद रहता है। क्योंकि अध्ययन का अभ्यास निरन्तर जारी रहा।

बुद्ध भगवान् ने कहा था कि 'जैसे रोज स्नान करते हैं, तो शरीर स्वच्छ होता है, रोज झाड़ू लगाते हैं, तो घर स्वच्छ होता है। वैसे ही रोज अध्ययन करते हैं, तो मन स्वच्छ रहता है। अगर रोज स्नान न करेंगे, तो शरीर स्वच्छ न होगा। वैसे ही रोज के अध्ययन के अभाव में मन स्वच्छ न रहेगा।' जिस कथन के अनुसार मेरा अभ्यास निरन्तर जारी रहा। मुझे उम्मीद है कि जिस दिन परमेश्वर मुझे ले जायगा, उस दिन भी मैं अध्ययन करके ही जाऊँगा। अध्ययनशीलता के कारण विद्यार्थियों के हृदय के साथ स्वाभाविक ही मैं एकरूपता महसूस करता हूँ।

विद्यार्थी दिमाग स्वतंत्र रखें

विद्यार्थियों का पहला कर्तव्य है कि वे अपना दिमाग अत्यन्त स्वतन्त्र रखें। परिपूर्ण स्वातंत्र्य का अगर किसीको अधिकार है, तो वह सबसे ज्यादा विद्यार्थियों को है। बिना श्रद्धा के विद्या नहीं मिलती, इसलिए श्रद्धा रखनी ही चाहिए, पर श्रद्धा के साथ-साथ बुद्धि-स्वातंत्र्य की भी उतनी ही आवश्यकता है। बहुत लोगों को लगता है कि श्रद्धा और बुद्धि अलग हैं; पर यह गलत विचार है। जैसे कान और आँख अलग-अलग शक्ति हैं और दोनों का आपस-आपस में विरोध नहीं,

वैसे श्रद्धा और बुद्धि का है। अगर श्रद्धा नहीं, तो विद्या की प्राप्ति भी असंभव है। माता बच्चे को चाँद दिखाती है कि देखो, लला, यह चाँद है। अगर बच्चे की माता में श्रद्धा न रहे कि माता जो दिखा रही है, वह चाँद है या नहीं यह कौन जाने, तो उसे ज्ञान न होगा। इसलिए ज्ञान-प्राप्ति के लिए श्रद्धा एक बुनियादी चीज है। ज्ञान का आरम्भ ही श्रद्धा से होता है, लेकिन ज्ञान की परिसमाप्ति बुद्धि में है। श्रद्धा से ज्ञान का आरम्भ होता है और समाप्ति स्वतन्त्र चिन्तन से होती है। इसलिए विद्यार्थियों को चिन्तन स्वातंत्र्य का अपना अधिकार कभी न खोना चाहिए। कोई भी शिक्षक, जो विद्यार्थियों पर जबर्दस्ती करता है, वह शिक्षक ही नहीं। शिक्षक तो वही होगा, जो यह कहे कि मेरी बात जँचे, तो मानो और अगर न जँचे, तो हरगिज मत मानो। इस तरह जो बुद्धि-स्वातंत्र्य देगा, वही सच्चा शिक्षक है, क्योंकि बुद्धि-स्वातंत्र्य ही सच्चा स्वातंत्र्य है। महापुरुषों के लिए आदर और श्रद्धा जरूर रखी जाय, लेकिन कोई महापुरुष है, इसलिए उसकी बात मानना गलत है। मुझे तो बहुत खुशी होती है कि मेरी बात किसीको नहीं जँचती, इसलिए वह उसे कबूल नहीं करता। किसीको मेरी बात जँचती है और वह कबूल करता है, इसकी भी मुझे खुशी होती है। लेकिन मेरी बात न जँचे और फिर भी कोई उसे कबूल करे, तो मुझे अत्यन्त दुःख होता है। इसलिए हम कहते हैं कि बुद्धि-स्वातंत्र्य होना चाहिए।

इसके लिए सर्वोत्तम शब्द 'चिन्तन-स्वातंत्र्य' होगा। हमें अपने चिन्तन-स्वातंत्र्य पर प्रहार न होने देना चाहिए और अपनी स्वतन्त्रता का हक सुरक्षित रखना चाहिए। आज दुनिया में विद्यार्थियों का यह अधिकार छीना जा रहा है। इसलिए मैं विद्यार्थियों को आगाह कर देना चाहता हूँ। इन दिनों 'डिसीप्लिन' (अनुशासन) के नाम पर विद्यार्थियों के दिमागों को यन्त्रों में डालने की कोशिश हो रही है। मैं 'डिसीप्लिन' में विश्वास भी रखता हूँ और यह भी जानता हूँ कि इसके बिना काम न बनेगा। घर को आग लगी है और वहाँ 'डिसीप्लिन' न हो, तो गड़बड़ ही हो जायगी। चन्द लोग 'डिसीप्लिन' के साथ आग बुझाने जायँगे, तो जितना जल्दी और अच्छी तरह से काम होगा, उतना बहुत-से लोग बिना 'डिसीप्लिन' के जाने पर न होगा। लेकिन आज तो

'डिसीप्लिन' के नाम पर सब जगह यन्त्रीकरण हो रहा है और विद्यार्थियों के दिमागों पर बहुत बड़ा प्रहार हो रहा है।

विद्यार्थी भेड़ नहीं, शेर

दुनिया में तालीम का महकमा सरकारों के हाथों में है। हम समझते हैं कि इससे बड़ा खतरा नहीं हो सकता। हमने बार-बार कहा है कि शिक्षण का अधिकार सरकारों के हाथों में न होना चाहिए, वह तो ज्ञानियों के हाथों में होना चाहिए। कारण यह काम सेवापरायणता से ही होगा। आज तो यह हालत है कि दुनिया की सरकारें शिक्षण का कब्जा ले बैठी हैं। शिक्षण-विभाग का अधिकारी जो भी किताब मंजूर करेगा, उसीका अध्ययन कुल विद्यार्थियों को करना पड़ेगा। अगर सरकार 'फासिस्ट' होगी, तो कुल विद्यार्थियों को 'फासिज्म' सिखाया जायगा। सरकार 'कम्युनिस्ट' होगी, तो 'कम्युनिज्म' का प्रचार होगा। सरकार 'पूँजीवादी' होगी, तो 'पूँजीवाद' की महिमा बतायी जायगी और सरकार 'प्लानिंगवादी' होगी, तो 'प्लानिंग' की कहानी विद्यार्थियों को सिखायी जायगी। इससे अधिक खतरा हो नहीं सकता। इसलिए शिक्षण-विभाग मुक्त रहना चाहिए। यह प्रथम मुक्ति की सख्त जरूरत है। हम विद्यार्थियों को आगाह करना चाहते हैं कि तुम लोगों को ढाँचे में ढालने का प्रयत्न हो रहा है। इसलिए अपना विचार-स्वातंत्र्य, चिन्तन-स्वातन्त्र्य स्वतन्त्र रखिये। लेकिन विद्यार्थी यह बात समझे नहीं हैं। आज तो वे अलग-अलग 'यूनियन' बनाते हैं।

हमें बड़ा आश्चर्य होता है कि यूनियन तो भेड़ों की होती है, शेरों की नहीं। विद्यार्थियों को भेड़ नहीं, शेर होना चाहिए। कोई भी विचार जँचे, तो उसका प्रचार करें और न जँचे, तो उसे कबूल न करें। अपने देश में लाखों स्कूल, पाठशालाएँ चलनी चाहिए और किसी भी विद्यार्थी को किसी भी यूनियन में दाखिल न होना चाहिए। यह कहना चाहिए कि 'नागरिक हो जाने के बाद स्वातन्त्र्य कम करने की जरूरत पड़ेगी, तो मैं किसी यूनियन में दाखिल हो जाऊँगा, लेकिन आज मैं विद्यार्थी हूँ। इसलिए शत-प्रतिशत स्वातन्त्र्य रखने का मुझे अधिकार है। यह ठीक है कि राजनीति का मैं चिन्तन

करूँगा, सोच-विचार करूँगा। लेकिन अपना मत पक्का न बनाऊँगा। वह बदल सके, ऐसी हालत में चिन्तन करूँगा। जब मैं यूनियन में दाखिल होऊँगा, तो यह अपना अधिकार खो दूँगा।' इसका यह मतलब नहीं है कि सहयोग न होना चाहिए। सेवा के लिए सहयोग की जरूरत है, पर यूनियन ढाँचे में ढालनेवाली होती है। यह देश की आजादी के लिए एक बड़ा खतरा है।

अपने ऊपर काबू पायें

विद्यार्थियों का दूसरा कर्तव्य यह है कि वे अपने ऊपर काबू पायें। स्वतन्त्रता का अधिकार वही अपने हाथ में रख सकेगा, जो अपने ऊपर काबू पा सकेगा। जो संकल्प मैं करूँगा, उस पर मैं जरूर अमल करूँगा, ऐसी निष्ठा होनी चाहिए। विद्यार्थियों को ऐसा निश्चय होना चाहिए कि मैं अगर सत्य संकल्प करता हूँ, तो दुनिया में कोई ऐसी ताकत नहीं, जो उसे तोड़ सके। इसलिए देह, मन और बुद्धि पर काबू होना चाहिए। अगर मैं सुबह चार बजे उठने का निश्चय करूँ, तो इन्द्रियों की क्या मजाल है कि वे उससे मुझे परावृत्त करें। इस तरह अपने ऊपर काबू न होगा, तो दुनिया में विद्यार्थी टिक न सकेगा। इसलिए विद्यार्थियों को विद्याभ्यास के साथ अपने पर काबू पाने का भी व्रत लेना चाहिए। नहीं तो विद्या वीर्य-हीन बनेगी।

अपने को काबू में रखने की शक्ति सबसे बड़ी शक्ति है। आपने स्थितप्रज्ञ के श्लोक सुने। स्थितप्रज्ञ कौन है? जिसकी प्रज्ञा में निर्णयशक्ति है। आज दुनिया में बहुत बड़े-बड़े सवाल उठते हैं। अब छोटे सवाल नहीं रहे, कुल दुनिया आज नजदीक आ गयी है। इसलिए बहुत बड़े पैमाने पर सोचना चाहिए। निर्णय भी व्यापक बुद्धि से और शीघ्र लेने चाहिए। पहले इतने बड़े सवाल पैदा नहीं हुआ करते थे और लोगों को दुनिया का ज्ञान न था। अपने देश में सबसे बड़ी लड़ाई 'पानीपत' की हुई, पर चीन और जापानवालों को उसका पता तक न था। लेकिन आज ऐसी हालत नहीं है। दुनिया के किसी कोने में भी छोटी-सी घटना होती है, तो फौरन सारी दुनिया पर उसका असर

होता है। यूरोप और अमेरिका की घटनाओं का हिन्दुस्तान के बाजार पर फौरन असर होता है। इस तरह बड़े-बड़े सवाल आज पेश होने और शीघ्र निर्णय करने की आवश्यकता होने से आज निर्णयशक्ति की जितनी आवश्यकता है, उतनी पहले नहीं थी। आप देख रहे हैं कि आज किसीको पैदल चलने की फुर्सत नहीं है, हर कोई हवाई जहाज और ट्रेन में इस तरह भागा जा रहा है, मानो कोई शेर उसके पीछे लगा हो।

तात्पर्य यह है, आज का जमाना ऐसा है कि उसमें बहुत शीघ्र फैसले करने पड़ते हैं। इसलिए इस जमाने में सबसे बड़ी शक्ति है निर्णय-शक्ति। उसीको 'प्रज्ञा' कहते हैं। जिसकी प्रज्ञा स्थिर हो जाय, उसे 'स्थितप्रज्ञ' कहते हैं। विद्यार्थियों को स्थितप्रज्ञ बनना चाहिए। उसका तरीका यही है कि अपने मन, इन्द्रिय, बुद्धि आदि पर काबू पाने की कोशिश की जाय। विद्यार्थियों को अपनी संकल्प-शक्ति दृढ़ करने की प्रतिज्ञा करनी चाहिए। अगर हम कोई निर्णय करें और वह टूट जाय, तो हमारी ताकत टूट जाती है। इसलिए मैं जो भी निश्चय करूँ, वह टूटे नहीं, चाहे प्राण चले जायँ, ऐसी स्थिति होनी चाहिए। इस तरह निश्चय-शक्ति के लिए इन्द्रियों पर काबू पाना बहुत जरूरी है।

निरन्तर सेवापरायण रहें

विद्यार्थियों का तीसरा कर्तव्य यह है कि वे निरन्तर सेवापरायण रहें। बिना सेवा के ज्ञान-प्राप्ति नहीं होती। महाभारत का एक प्रसंग है। अर्जुन, भगवान् कृष्ण और धर्मराज साथ बैठे हैं। अर्जुन की प्रतिज्ञा थी कि जो मेरे गांडीव धनुष्य की निन्दा करेगा, उसे मैं कत्ल करूँगा। धर्मराज ने अर्जुन का उत्साह बढ़ाने के लिए गांडीव की निन्दा करते हुए कहा कि तू और तेरा गांडीव इतना बलवान् है, फिर भी हमें इतनी तकलीफ हो रही है, और हमारे शत्रु खतम नहीं हो रहे हैं। अर्जुन बड़ा धर्मनिष्ठ था और उसका अपने भाई पर बहुत प्यार था। वह खुद की निन्दा सह लेता, किन्तु गांडीव की निन्दा न सह सका, इसलिए कृष्ण के सामने ही उसने धर्मराज पर प्रहार करने के लिए हाथ उठाया। कृष्ण ने हाथ खींचते हुए उससे कहा कि 'तू कैसा मूर्ख है? तुझे ज्ञान नहीं है। तूने वृद्धों की सेवा नहीं की, तो ज्ञान कैसे प्राप्त होगा?

महाभारत में अन्यत्र यक्षप्रश्न की कहानी है। उसमें एक प्रश्न यह पूछा गया है कि ज्ञान कैसे प्राप्त होता है? तो जवाब मिला, 'ज्ञानं वृद्धसेवया।' वृद्धों की सेवा से ज्ञान प्राप्त होता है। वृद्धों के पास अनुभव होता है। सेवापरायणों के सामने उनका दिल खुल जाता है और वे अपना कुल सारसर्वस्व दे देते हैं। इसलिए विद्यार्थियों को सेवापरायण होना चाहिए। वृद्धों की, माता-पिता की, दीन-दुखी और समाज की सेवा करनी चाहिए। यह नहीं समझना चाहिए कि हम सेवा करते रहेंगे, तो अध्ययन कैसे होगा। यह विश्वास होना चाहिए कि सेवा से ही ज्ञान प्राप्त होता है।

रामायण की कहानी है। विश्वामित्र ने दशरथ के पास आकर यज्ञ-रक्षा के लिए राम-लक्ष्मण की माँग की। दशरथ मोहग्रस्त था, इसलिए बोल उठा कि 'मेरे राम की उम्र अभी सोलह साल भी नहीं हुई, तो मैं उसे कैसे दे सकता हूँ?' सुनते ही तपस्वी विश्वामित्र ने कहा : 'ठीक है, मैं जाता हूँ।' वाल्मीकि ने वर्णन किया है कि विश्वामित्र के इन शब्दों से सारी पृथ्वी काँप उठी। ज्ञानी पुरुष की माँग का इनकार राज्य भी नहीं कर सकता। फिर वशिष्ठ ने दशरथ को समझाया कि 'तू कैसा मूर्ख है, विश्वामित्र राम-लक्ष्मण की माँग करता है, तो उससे तेरे पुत्रों का कल्याण होगा। वे विश्वामित्र की सेवा करेंगे और उससे उन्हें ज्ञान प्राप्त होगा। सेवा से बढ़कर कोई विद्यापीठ नहीं हो सकता।' यह सुनकर दशरथ ने विश्वामित्र को राम-लक्ष्मण सौंप दिये। फिर वाल्मीकि ने वर्णन किया है कि किस तरह राम-लक्ष्मण को सेवा करते-करते ज्ञान प्राप्त हुआ।

सर्व-सावधान रहें

विद्यार्थियों का चौथा कर्तव्य यह है कि उन्हें सर्व-सावधान होना चाहिए। दुनिया में समाज की जो हलचलें चलती हैं, उन सबका अध्ययन करना चाहिए। जो भिन्न-भिन्न वाद निर्माण होते हैं, उन सबका तटस्थ-बुद्धि से अध्ययन करना चाहिए। विद्यार्थियों को सर्वव्यापक होना चाहिए। विद्यार्थियों की बुद्धि संकुचित न होनी चाहिए। उसे यह न मानना चाहिए कि मैं तेलुगु-भाषाभाषी हूँ या हिन्दुस्तान का पुरुष हूँ। उसे तो यही महसूस होना चाहिए कि मैं तो द्रष्टा हूँ

और यह सब दृश्य है, उससे मैं अलग हूँ, भिन्न हूँ। धर्म और भाषा के जो वाद चलते हैं, उन सबसे मैं अलग हूँ और तटस्थ बुद्धि से उनका अध्ययन करनेवाला हूँ। विद्यार्थियों की ऐसी व्यापक बुद्धि जरूर सधेगी, लेकिन इन दिनों उल्टा ही देख रहे हैं। भाषावार प्रान्त-रचना के विषय पर जितने झगड़े हुए, उनमें हृदय की संकीर्णता ही प्रकट हुई। इस तरह की संकीर्णता न रहनी चाहिए। विद्यार्थियों को व्यापक बुद्धि से सोचना चाहिए और कहना चाहिए कि हम विश्व-नागरिक हैं। हम सारी दुनिया में विश्व-नागरिकता की स्थापना करनेवाले हैं। उन्हें यह भी न कहना चाहिए कि हम भारतीय हैं। भारतीय तो वे हैं, जो आज के नागरिक हैं। लेकिन हम विद्यार्थी भारतीयता से भी ऊपर उठे हैं। हम विश्व-मानव हैं, हम विद्या के उपासक हैं, तटस्थ बुद्धि से सोचनेवाले हैं; अतः हम संकुचित या पांथिक नहीं बन सकते।

हम चाहते हैं कि विद्यार्थी इन बातों पर सोचें। सर्वोदय-विचार का तटस्थ बुद्धि से खूब अध्ययन करें और इसे खूब अच्छी तरह समझ लें, क्योंकि आज दुनिया को इस विचार का आकर्षण हो रहा है। और गर्मियों की छुट्टी में गाँव-गाँव जाकर सेवा करें। गाँववाले मेहनत करते हैं, इसलिए उनका हमारे सिर पर बहुत ऋण है। हम उसमें से थोड़ा वापस देने की कोशिश करें।

कर्नूल
११-३-'५६

समाज में 'अभय' कैसे आये ?

[आन्ध्र विधान-सभा के सदस्य और मन्त्रिगणों के बीच]

आज भारत का विशेष दायित्व

स्वराज्य के बाद हम लोगों की जिम्मेवारी सब प्रकार से बढ़ गयी। हमें स्वराज्य विशेष ढंग से हासिल हुआ है। इसलिए भी हमारी जिम्मेवारी कुछ विशेष बढ़ी है, क्योंकि उसीके कारण दुनिया में हमारे लिए कुछ आशा बनी है। इसके अलावा भारत की अपनी एक नित्यनूतन सभ्यता है। इसीको हम 'पुराण-सभ्यता' कहते हैं। पुराण-सभ्यता की व्याख्या हम यह करते हैं कि जो देश पुराना होते हुए भी नवीन है। नित्यनूतनता पुराणता का लक्षण है। जो सभ्यता नित्य नया रूप धारण कर सके, वही 'प्राचीन' कहलाती है। जिसमें यह शक्ति नहीं है, वह सभ्यता छिन्न-विच्छिन्न हो सकती है। भारत की सभ्यता में एक विशेष दर्शन होता है। उसमें भिन्न-भिन्न प्रकार के लोग रहते हैं। उन सबकी सभ्यताओं को इसने हजम कर लिया है। इसलिए भारतीय सभ्यता बहुत ही परिपुष्ट और मधुर हुई है। सबके साथ अविरोध साधने और सबसे प्रेम के साथ रहने की भारत की अपनी एक विशेष सभ्यता है। उसीके कारण हम पर एक जिम्मेवारी आती है।

इसके अलावा आज दुनिया की ऐसी स्थिति है, जिसमें बहुत देश डाँवाडोल हैं। मैंने तो कई बार कहा है कि ऐसी हालत में हम पर यह जिम्मेवारी आती है कि हम अपना दिमाग कायम रखें। उन लोगों के दिमाग आज थक गये हैं। उन्होंने बहुत दिमाग चलाया और उत्तरोत्तर शस्त्रास्त्र बढ़ाते गये। शान्ति की जरूरत वे भी महसूस करते हैं। 'बैलेन्स-पॉवर' (शक्ति के समतुलन) से शान्ति स्थापित करने की उन्होंने कोशिश की, पर उनका वह प्रयत्न चल न सका। दो विश्वयुद्ध हो चुके और तीसरा टालने की वे कोशिश कर रहे हैं। इसलिए जिस तरह पहले उनका हिंसा पर विश्वास था, वैसा आज नहीं रहा।

किंतु इसके बदले में अभी उनका अहिंसा पर भी विश्वास नहीं बैठा। आज वे ऐसी ही बीच की हालत में हैं। जब मनुष्य के मन में अस्वस्थता और अनिश्चितता होती है, तब उसका दिमाग काम नहीं करता। इस ओर या उस ओर, ऐसी निश्चित दिशा मनुष्य लेता है, तभी वह कर्मयोग कर सकता है। किन्तु जहाँ व्यवसायात्मक बुद्धि है, वहाँ संशय है। ऐसी हालत में चाहे वे चिंतन चला सकें, पर उनकी बुद्धि काम न कर सकेगी। अभी पश्चिम में बहुत तत्त्व विचार चलता है, पर वहाँ किसी प्रकार की श्रद्धा नहीं दीखती है। वे लोग अपने पुरुषार्थ की पराकाष्ठा कर चुके, फिर भी उन्हें राह नहीं दीखती, तो उनका दिमाग काम नहीं करता। ऐसी हालत में यही दीख रहा है कि हिन्दुस्तान की तरफ दुनिया की निगाह है। और इसीलिए हिन्दुस्तान पर जिम्मेवारी भी आती है।

प्रजा में अभय हो

ऐसी हालत में हमारे राज्यकर्ताओं को गहरे चिंतन से ही हरएक कदम उठाना चाहिए। उत्तम 'ॲडमिनिस्ट्रेशन' (शासन) चलाना एक कर्तव्य माना गया है। जिसके राज्य मे शांति और व्यवस्था रहती है और साधारण राज्यकर्ता भी जहाँ सोचते हैं कि 'बहुत ज्यादा परिवर्तन न हो, जितना हो सके, उतना ही परिवर्तन किया जाय', वही उत्तम राज्यव्यवस्था है। मेरी नम्र राय है कि हिन्दुस्तान के लिए अब इतना ही काफी नहीं। साधारण राज्यव्यवस्था चलती है, लोगों को बहुत तकलीफ नहीं होती, इतने से ही हमारा समाधान नहीं होना चाहिए। याने व्यवस्था और सामाजिक शान्ति, इतना ही आदर्श अपर्याप्त है। मैं तो यहाँ तक कहता हूँ कि जिसे अभी लोग 'समृद्धि' कहते हैं—याने 'जीवनमान बढ़ाना', वह भी काफी नहीं। वे 'जीवनमान' बढ़ाने की बात जरूर करें, पर उतना काफी नहीं। हिन्दुस्तान का जीवनमान बहुत गिरा है, उसे ऊपर उठाना है, यह ठीक है। किन्तु हमारे देश के सामने परमेश्वर ने जो कार्य रखा है, उसे सोचते हुए यह बहुत ही छोटी चीज है, ऐसा लगता है।

आखिर हमारे लिए कौन-सी मुख्य चीज होनी चाहिए ? इस प्रसंग में मैं पुराना शब्द ही इस्तेमाल करूँगा : 'अभयम्'। हमारे राज्य में अभय होना

चाहिए। हिन्दुस्तान के राज्यशास्त्र में यह एक बहुत ही महत्त्व का शब्द है। उसमें लिखा है कि प्रजा में अभय होना चाहिए। विशेष बात यह है कि हिन्दुस्तान की पारमार्थिक भाषा में भी 'अभय' शब्द महत्त्व का है। आपको मालूम होगा कि गीता में सबसे बढ़कर स्थान अभय को दिया है। पारमार्थिक दृष्टि यही रही कि मनुष्य को सदा निर्भय रहना चाहिए और यहाँ के राज्यशास्त्र की भी यही दृष्टि रही। साधारण शान्ति से कुछ थोड़ा-सा सुखवृद्धि का प्रयत्न हो रहा हो। फिर भी जहाँ निर्भयता न हो, वहाँ हमने अपना काम नहीं किया, ऐसा ही मैं कहूँगा। आज दुनिया जितनी भयभीत हुई है, उतनी शायद कभी न हुई हो। राष्ट्र-के-राष्ट्र भयभीत हैं। इसलिए दुनिया को वही बचायेगा, जो व्यक्तिगत और सामाजिक तौर पर भी निर्भय बनेगा।

मेरी निगाह में राज्य और सरकार की कोई जरूरत नहीं, अगर हम सामाजिक अभय-स्थापन नहीं कर सकते। मैं किसीको दोष नहीं दे रहा हूँ। आपने देखा कि स्वराज्य के बाद भारत में कितनी बार गोलियाँ चलीं। आप कह सकते हैं कि इससे भी ज्यादा चल सकती थीं, लेकिन हमने कम चलायीं। पर यह दूसरी बात है। जिन्होंने गोलियाँ चलायीं, उन्हें मैं दोष नहीं देता; उन्होंने कर्तव्य-बुद्धि से और बहुत ही तटस्थ बुद्धि से काम किया। किन्तु गोली चलाने का मतलब यह है कि समाज में अभय नहीं है। इसलिए राज्यसंस्था का यह काम है कि अपने राज्य में भय-निराकरण करे।

देश के भयस्थान मिटाये जायँ

अपने देश में सबसे अधिक भय का स्थान कौन-सा है? पहला, प्रजा में अत्यंत दारिद्र्य का होना और दूसरा, प्रजा में एकरसता का न होना। ये दोनों बड़े भारी भय के स्थान हैं। इसलिए राज्यसंस्था से यह आशा की जायगी कि वह इन दोनों भयस्थानों को दूर करे। इसलिए स्वराज्य-प्राप्ति के बाद सर्वप्रथम यह दर्शन होना चाहिए था कि सबसे गरीब, सबसे नीचे के स्तरवाले को मदद मिल रही है। जैसे पानी जहाँ से भी दौड़ता है, समुद्र के लिए दौड़ता है—समुद्र को भरने के लिए ही वह बहता है। वैसे ही सारी सरकारी और जनता की संस्थाएँ दुःखियों का दुःख निवारण कर रही हैं, ऐसा दीखना चाहिए था।

देता रहता। वे छोटे-छोटे गाँवों में और झोपड़ी में ज्ञान देते थे। सर्वोत्तम ज्ञानी लोगों के पास ही जाकर उन्हें ज्ञान पिलाते, खिलाते थे। लेकिन आज की योजना क्या है? जो उत्तम ज्ञानी है, वह फलाना प्रोफेसर है और उसके पास उन्हींको प्रवेश मिलेगा, जो लक्ष्मीवान् हैं। याने ज्ञान-प्राप्ति भी गरीबों को प्रथम नहीं मिलती। ऐसी कई मिसालें मैं दे सकता हूँ।

अब तो मैं गाँव-गाँव घूमता हूँ और दीनों के दुःख अच्छी तरह जानता हूँ। जो 'कम्युनिटी प्रोजेक्ट' चला रहे हैं, वे भी मुझे मिलते हैं। हाल ही में अभी डे साहब मिले थे। उन्होंने भी यही कहा कि हमारी मदद उन्हींको पहुँचती है, जो मदद खींच सकते हैं। सरकार और कम्युनिटी प्रोजेक्ट की तरफ से भी मदद उन्हें मिलती है, जिन्हें 'सिक्युरिटी' होगी। शंकर के साथ शादी करने के लिए कौन तैयार है? वह तो सर्व प्रकार से दरिद्र है। उसके साथ शादी करने के लिए पार्वती ही तैयार थी! पर आज तो सब कन्याओं के पिता लक्ष्मीवान् देखकर अपनी कन्याएँ उन्हींके घर पहुँचाते हैं। जो दरिद्र भगवान् है, उसके पास अपनी कन्या पहुँचाने के लिए कौन तैयार है? पर जो तैयार होगा, वही भय का एक स्थान टाल सकेगा। ऐसा दर्शन मुझे अपने देश में नहीं हो रहा है। मैं फिर से कहूँगा कि इसमें मैं किसीको दोष नहीं दे रहा हूँ, लेकिन हमारा काम क्या है, इस ओर आपकी दृष्टि खींचना चाहता हूँ।

'पंचवार्षिक योजना' की नकल मेरे पास आयी है। मुझे कहा गया है कि उस पर मैं मेरा अभिप्राय दूँ। मैंने कहा: 'मैं उसकी भाषा नहीं समझ सकता, मैं समझता हूँ, वैसी अगर उसकी भाषा हो तो ठीक है।' इस पर वे पूछने लगे कि 'कौन-सी भाषा है?' मैंने कहा कि 'बापू ने कहा था कि कस्तूरबा-ट्रस्ट का काम उन गाँवों में चलना चाहिए, जहाँ जनसंख्या दो हजार से नीचे हो।' क्या शहरवालों से बापू का द्वेष था? जो सबसे दुःखी अवयव है, उसके पास पहले मदद पहुँचनी चाहिए। इसलिए मैंने कहा कि पंचवार्षिक योजना में यह बात होती कि इतनी सारी रकम ऐसे छोटे-छोटे गाँवों के लिए खर्च हो रही है, तब तो मैं वह भाषा समझ सकता। एक प्रसिद्ध कहानी है—पूछा गया था कि नदी में

एक क्षण के लिए भी नहीं टिक सकता, वैसे ही पुरानी तालीम भी एकदम बन्द होनी चाहिए। किन्तु वह पुरानी तालीम आज तक चल रही है। यह जाहिर है कि अंग्रेजों को राज्य चलाने के लिए चन्द लोग नौकर की हैसियत से चाहिए थे। इसलिए उन्होंने अपनी विद्या यहाँ दी। परिणामस्वरूप जिन्होंने वह तालीम पायी, वे जनता से बिलकुल दूर हो गये और उनके और जनता के बीच एक दीवाल खड़ी हो गयी। आज भी वह विद्या जारी है, तो समाज में एकरसता कैसे आयेगी ?

सारांश, आज अपनी व्यवस्था में जो अत्यन्त दुःखी हैं, उन्हें प्रथम मदद मिलनी चाहिए, सब प्रकार के ऊँच-नीच-भाव मिटाने की कोशिश होनी चाहिए, शरीर-परिश्रम पर चलने की तालीम मिलनी चाहिए। इतना आप करेंगे, तो जो दो भयस्थान हैं, वे दूर हो जायँगे।

कर्नूल
१२-३-'५६

: २८ :

कुटुम्ब-नियोजन

यहाँ मुझसे पूछा गया कि 'कुटुम्ब नियोजन की योजना का सरकार कितना अधिक आग्रह रख रही है। इसके बारे में आपकी क्या राय है ?' वास्तव में मुझे कबूल करना चाहिए, मैं समझ नहीं पाता कि यह क्या चल रहा है। हिन्दुस्तान में हर वर्गमील के लिए करीब ३०० की जन-संख्या है, तो जापान में १ हजार है। फिर हिन्दुस्तान में अधिक जन-संख्या है, ऐसा क्यों माना जाता है ? यह पुरुषार्थ का विषय है ? आज हिन्दुस्तान में ज्यादा लोग हैं और उनके पोषण का कोई इन्तजाम नहीं हो पाता, यही तो सवाल है। आखिर यह सामाजिक और आध्यात्मिक विषय है। किन्तु इन दिनों यही चलता है कि कृत्रिम रीति से कुटुम्ब-नियोजन (Family Planning) किया जाय और विषय-वासना बढ़ने पर कोई पाबन्दी न रखी जाय।

मिलेगा। क्या इन दोनों मोक्षों में कोई फर्क रहेगा? मोक्ष में किसी प्रकार के दर्जे या फर्क माने ही नहीं जा सकते। सचमुच यह अद्भुत योजना रही कि कर्तव्यपरायण वैश्य, ब्राह्मण या क्षत्रिय, कोई भी हो, यदि वह निष्कामता से सेवा करता है, तो उसे मोक्ष का समान दर्जा मिलेगा। यानी समाज-सेवा-परायण वैश्य या व्यापारी एक साधक और भक्त की श्रेणी में दाखिल है। व्यापारियों को हिन्दुस्तान में धर्मशास्त्र द्वारा इतनी जिम्मेवारी और इतनी प्रतिष्ठा दी गयी, इसका हिंदुस्तान पर काफी परिणाम हुआ।

मांसाहार-त्याग

देखा गया कि हिन्दुस्तान में जो आध्यात्मिक विचार चला, उसमें दयाभाव *का विशेष अंश था। अन्य प्राणियों के लिए मानव-समाज को प्रीति होनी* चाहिए, इस बात का भी आग्रह रखा गया। इसीलिए यहाँ के असंख्य लोगों ने मांसाहार-परित्याग का प्रयोग किया। यह घटना दुनिया के दूसरे देशों में नहीं घटी। इन दिनों पश्चिम के देशों में कुछ व्यक्तिगत और कुछ सांघिक प्रयोग जरूर हुए हैं। याने विशिष्ट संघ बने हैं, जो शाकाहारी कहलाते हैं और मांसाहार से निवृत्त हैं। किन्तु हिन्दुस्तान में जिस तरह निवृत्त जमात मिलती है, वैसी दूसरे देशों में नहीं। आज हमारे समाज में अनेक दुर्गुण मौजूद हैं, इसलिए मांसाहार-निवृत्ति का हमारे मन में बहुत आदर नहीं होता। किन्तु वे हमारी कमाई के हैं और उनका खयाल कर भूतदया का जो एक महान् प्रयोग हुआ, उसे हम हीन नहीं मान सकते।

दया से प्रेरित होकर मांसाहार छोड़नेवाली जमातों में ज्यादातर वैश्य और व्यापारी हैं। यह अहिंसा और दया का विचार विशेषतः जैन-धर्म में फैला और भक्तिमार्ग ने इसे उठा लिया। इसका व्यापारी-वर्ग पर बहुत प्रभाव पड़ा और वह ज्यादातर मांसाहार से निवृत्त है। हम इसे छोटी बात नहीं समझते। एक देश का अधिकांश व्यापारी-वर्ग दयाभाव से प्रेरित होकर मांसाहार से निवृत्त हुआ, यह एक महान् प्रयोग है और इसके पीछे विशेष अनुभव है। शास्त्रकारों ने व्यापारियों के प्रति जो विश्वास दिखाया, हिन्दुस्तान के व्यापारी-वर्ग पर उसीका

बढ़ेगा। जहाँ पोषण अच्छा नहीं मिलता, वहीं भोग-वासना और विषय-वासना बढ़ती है। जानवरों में भी यह देखा गया है। मजबूत जानवरों में विषय-वासना कम होती है और कमजोरों में ज्यादा। फिर कमजोरों की जो सन्तान पैदा होती है, वह भी निर्वीर्य या निकम्मी होती है। इसीलिए मैं कहता हूँ कि यह विषय सामाजिक और आध्यात्मिक है। इस दृष्टि से सोचकर ऐसा वातावरण निर्माण करना चाहिए, जो संयम के लिए अनुकूल हो। समाज में पुरुषार्थ बढ़ाना चाहिए, साहित्य सुधारना चाहिए। गंदा साहित्य, गन्दे सिनेमा रोकने चाहिए। इसीलिए हम कहते हैं कि यह गहरा सांस्कृतिक विचार है, उससे खिलवाड़ न किया जाय।

पेदपाडु (कर्नूल)
१३-३-'५६

व्यापारियों का आवाहन

: २६ :

शायद यही देश है, जहाँ व्यापार एक सुव्यवस्थित धर्म माना गया है। व्यापार प्रामाणिकता से करना चाहिए, यह बात दुनिया के सभी धर्मों में कही गयी है। प्रामाणिकता एक धर्म है, सत्यनिष्ठा एक धर्म है, यह मानी हुई बात है। किंतु व्यापार स्वयं ही एक धर्म है, इस बात का भान इसी देश में समाज को कराया गया। समाज के विभाग के लिए व्यापारियों का एक सुव्यवस्थित वर्ग माना गया। वैश्य का वाणिज्य एक स्वतंत्र धर्म है, यह शास्त्रकारों ने आदेश के तौर पर कहा। यह अपने ही देश की विशेषता मानी गयी।

व्यापार एक सुव्यवस्थित धर्म

कहा यह गया कि निष्कामता और अनन्य प्रीति से वेद का अध्ययन करनेवाले को जैसा मोक्ष हासिल होगा, वैसा ही उस वैश्य को भी होगा, जो निष्काम और सेवाबुद्धि से व्यापार करेगा। यह बहुत ही विशिष्ट विचार है। इसमें समाज सेवा के विभिन्न कार्यों को समान प्रतिष्ठा दी गयी है। निष्काम और कर्तव्यपरायण ब्राह्मण को जो मोक्ष मिलेगा, वही मोक्ष निष्काम और कर्तव्यपरायण वैश्य को

मिलेगा। क्या इन दोनों मोक्षों में कोई फर्क रहेगा? मोक्ष में किसी प्रकार के दर्जे या फर्क माने ही नहीं जा सकते। सचमुच यह अद्भुत योजना रही कि कर्तव्यपरायण वैश्य, ब्राह्मण या क्षत्रिय, कोई भी हो, यदि वह निष्कामता से सेवा करता है, तो उसे मोक्ष का समान दर्जा मिलेगा। यानी समाज-सेवा-परायण वैश्य या व्यापारी एक साधक और भक्त की श्रेणी में दाखिल है। व्यापारियों को हिन्दुस्तान में धर्मशास्त्र द्वारा इतनी जिम्मेवारी और इतनी प्रतिष्ठा दी गयी, इसका हिंदुस्तान पर काफी परिणाम हुआ।

मांसाहार-त्याग

देखा गया कि हिन्दुस्तान में जो आध्यात्मिक विचार चला, उसमें दयाभाव का विशेष अंश था। अन्य प्राणियों के लिए मानव-समाज को प्रीति होनी चाहिए, इस बात का भी आग्रह रखा गया। इसीलिए यहाँ के असंख्य लोगों ने मांसाहार-परित्याग का प्रयोग किया। यह घटना दुनिया के दूसरे देशों में नहीं घटी। इन दिनों पश्चिम के देशों में कुछ व्यक्तिगत और कुछ सांघिक प्रयोग जरूर हुए हैं। याने विशिष्ट संघ बने हैं, जो शाकाहारी कहलाते हैं और मांसाहार से निवृत्त हैं। किन्तु हिन्दुस्तान में जिस तरह निवृत्त जमात मिलती है, वैसी दूसरे देशों में नहीं। आज हमारे समाज में अनेक दुर्गुण मौजूद हैं, इसलिए मांसाहार-निवृत्ति का हमारे मन में बहुत आदर नहीं होता। किन्तु वे हमारी कमाई के हैं और उनका ख्याल कर भूतदया का जो एक महान् प्रयोग हुआ, उसे हम हीन नहीं मान सकते।

दया से प्रेरित होकर मांसाहार छोड़नेवाली जमातों में ज्यादातर वैश्य और व्यापारी हैं। यह अहिंसा और दया का विचार विशेषतः जैन-धर्म में फैला और भक्तिमार्ग ने इसे उठा लिया। इसका व्यापारी-वर्ग पर बहुत प्रभाव पड़ा और वह ज्यादातर मांसाहार से निवृत्त है। हम इसे छोटी बात नहीं समझते। एक देश का अधिकांश व्यापारी-वर्ग दयाभाव से प्रेरित होकर मांसाहार से निवृत्त हुआ, यह एक महान् प्रयोग है और इसके पीछे विशेष अनुभव है। शास्त्रकारों ने व्यापारियों के प्रति जो विश्वास दिखाया, हिन्दुस्तान के व्यापारी-वर्ग पर उसका

यह परिणाम हुआ। इसलिए कहना पड़ेगा कि हिन्दुस्तान के व्यापारियों में दयाभाव का माद्दा विशेष अंश में है। यह भी मानना होगा कि इस विषम काल में बहुत-से हृदयों में निष्ठुरता छिपी है। हमारी समाज-रचना, विशेषतः आर्थिक रचना इतनी गलत हो गयी है कि मनुष्य चाहे या न चाहे, निष्ठुर बन जाता है। अतः सबके साथ व्यापारियों में भी काफी निष्ठुर हृदय दीख पड़ता है। फिर भी यह कहना ही होगा कि यहाँ के व्यापारियों में दयाभाव का अंश काफी है।

दयागुण का विकास

हमारे लिए यह सोचने की बात है कि जब एक वर्ग में दया का अंश हम देखते हैं, तो उसका देश के लिए कोई लाभ उठा सकते हैं या नहीं? मैं मानता हूँ कि व्यापारी-वर्ग की यह विशेषता हमारे देश की अपनी विशेषता है। किन्तु उसकी दूसरी विशेषता व्यवस्थाशक्ति है, जो सिर्फ हमारे देश की विशेषता नहीं है। यह गुण दुनिया के सभी देशों के व्यापारियों में है। सर्वत्र उपलब्ध व्यवस्थाशक्ति का गुण और अपने देश का दया का विशेष गुण, दोनों से युक्त हमारे व्यापारी अपने देश के लिए बहुत कुछ कर सकते हैं।

दयागुण कोई साधारण गुण नहीं। मानव-समाज के लिए उसकी बहुत कीमत है। दया के बिना कोई भी समाज क्षणभर भी टिक नहीं सकता। पश्चिम के समाज में और हिन्दुस्तान के समाज में निरन्तर दया के कई कार्य चलते हैं। बीमारों की सेवा के लिए दुनियाभर में जितनी कोशिश हुई, सारी दयाभाव से प्रेरित है। ऑपरेशन के नये-नये तरीके निकलते हैं और उनसे मनुष्य को सुख पहुँचता है, दुःख की निवृत्ति होती है, यह सब दया का कार्य है। यहाँ तक कि लड़ाइयों में जख्मी लोगों की सेवा के लिए दयाभाव से प्रेरित होकर 'पथक' जाते हैं और सेवा करते हैं। इस प्रकार जीवन में सर्वत्र किसी-न-किसी रूप में दयाभाव दीख पड़ता है और इसीसे जीवन में मधुरता आती है।

धर्मशास्त्रकारों ने परमेश्वर का रूप ही दयामय माना है। खासकर इसलाम में अल्लाह के लिए 'रहमान' और 'रहीम' जो विशेषण जोड़े जाते हैं, उनका अर्थ है, अत्यन्त दयालु। सब धर्मों ने परमेश्वर का यह गुण माना है। वैष्णवों

ने बार-बार इसका मनन और स्मरण किया है। दया, क्षमा, करुणा, ये सारे दिव्य गुण मानव के लिए सदा-सर्वदा पूजनीय हैं। फिर भी कहना पड़ता है कि आज दुनिया में करुणा का, दया का राज्य नहीं है। राज्य है शक्ति का। राज्य की अधिष्ठात्री देवी शक्ति है और दया, करुणा दासी के तौर पर काम करती हैं।

करुणा कैसे बढ़े ?

किसी भी देश की सरकार अपने देश को मजबूत बनाने की बात सोचती है, लेकिन यह नहीं सोचती कि देश में करुणा कैसे बढ़े ! देश की सैनिक शक्ति बढ़ाने की बात सभी सोचते हैं। यह नहीं सोचते कि अपने देश में अगर कारुण्य बढ़ेगा, तो इस देश के जरिये दुनिया को शान्ति मिलेगी और सारी दुनिया की जनता करुणागुण से जीत ली जायगी। करुणा का प्रभाव मानव पर कितना पड़ता है, यह बात जाहिर है। करोड़ों लोग ईसामसीह का नाम लेते हैं, सिर्फ उसकी करुणा के कारण। बुद्ध भगवान् की जयजयकार करनेवाले चालीस करोड़ लोग दुनिया में हैं। उनकी करुणा के कारण ही वे उन्हें याद करते हैं। आज करोड़ों लोगों के मन, जीवन और मरण पर अगर किसी चीज का अधिक-से-अधिक प्रभाव है, तो वह करुणा का है।

करुणा का प्रभाव छिपा नहीं है। फिर भी राष्ट्रों की सरकारें, राष्ट्र की सम्मति से जो राष्ट्र का नियोजन करती हैं, और देश को मजबूत बनाने के लिए सोचती हैं, वे करुणा का प्रचार नहीं करतीं, सैनिक शक्ति का ही प्रचार करती हैं। पाकिस्तान की सरकार का ७० प्रतिशत खर्च सेना पर हो रहा है और वह समझती है कि इससे देश मजबूत बनेगा। हिन्दुस्तान के लोग भी सरकार से पूछते हैं कि आप हमारी रक्षा के और देश की मजबूती के लिए क्या कर रहे हैं ? हमारे नेता समझाते हैं कि 'हम भी जागरूक हैं, इस प्रश्न के प्रति उदासीन नहीं हैं। किन्तु केवल तात्कालिक दृष्टि से काम करना उचित नहीं, दूरदृष्टि भी रखनी पड़ती है। देशसेवा के दूसरे भी काम हैं, उनके प्रति भी दुर्लक्ष्य नहीं कर सकते। सेना की तरफ भी ध्यान देना पड़ता है।' हमारे नायकों को, इस तरह का उत्तर देना पड़ता है, जो अपने मन में करुणा को बहुत आदर देते हैं।

शक्ति की आराधना

यह साल बुद्ध भगवान् के २५०० वर्षों की समाप्ति का माना जाता है। दुनिया के कई देशों में इसका उत्सव होगा। हमारे देश में भी बहुत बड़े परिमाण में यह उत्सव मनाया जायगा। अपने देश को इस बात पर बहुत अभिमान है कि यहाँ सर्वश्रेष्ठ कारुण्यमूर्ति का जन्म हुआ। एक तरफ तो करुणा के लिए मन में आदर और दूसरी तरफ मजबूती के लिए शक्तिदेवता की आराधना। क्या इस तरह के विचार रखनेवाले हम लोग ढोंगी हैं? नहीं, किन्तु हमने अपने मन में एक विचार बैठा लिया है कि व्यक्तिगत जीवन की उन्नति के लिए करुणा श्रेष्ठ है, पर सामूहिक कल्याण के लिए शक्ति की जरूरत है। यह विज्ञान का जमाना है। इसलिए सामूहिक सिद्धि की ही बहुत ज्यादा कीमत है। व्यक्तिगत उन्नति की कीमत गौण है। यही कारण है कि दया और करुणा जैसे गुणों का महत्त्व पहचानते हुए भी इन गुणों का राज्य नहीं चलता।

हम समझते हैं कि हिन्दुस्तान के व्यापारियों के लिए यहाँ मौका है। वे अक्सर दयाभाव से प्रेरित हैं। उन्होंने मांसाहार-त्याग का प्रयोग किया है। वे इस काम के लायक हैं। उनके लिए भगवान् ने यह कार्य रखा है कि वे करुणा का राज्य प्रस्थापित करें। लेकिन दयाभाव से प्रेरित व्यापारी निजी रक्षा के लिए एक पुरबिया, लाठीवाला रखते हैं। क्या कारुण्य में निजी रक्षा की सामर्थ्य नहीं है? करुणावान् लोगों को भी इस तरह रक्षण की जरूरत क्यों पड़ती है? इसीलिए कि उनके जीवन में करुणा-गुण का साम्राज्य नहीं, वह थोड़ा-सा मिश्रित है। जिस व्यापारी की सम्पत्ति, बुद्धि और योजना-शक्ति आसपास के लोगों की सेवा में खर्च होती होगी, क्या उसे रक्षा के लिए सिपाही की जरूरत होगी?

महावीर भी, सुवर्ण भी!

बिहार में हम एक जगह जैनों का मन्दिर देखने गये। वहाँ महावीर स्वामी की मूर्ति थी। जेल में जैसे एक कोट के बाद दूसरा कोट रहता है, अनेक दरवाजे रहते हैं, वैसे ही कई कोट और दरवाजे लाँघकर मूर्ति के दर्शन के लिए जाना पड़ा। जैसे किसी जेल पर हाथ में बन्दूक लेकर संतरी खड़ा रहता है, वैसे ही

उस मन्दिर पर हाथ में बन्दूक लेकर सिपाही खड़े थे। सभी दरवाजे बन्द थे। हमारे लिए एक एक दरवाजा खोलना पड़ा। आखिर हमें वहाँ उपस्थित किया गया, जहाँ भगवान् महावीर स्वामी की नग्न मूर्ति थी। जिन्होंने शीतादि से रक्षा के लिए वस्त्र पहनना भी उचित नहीं माना, ऐसे महापुरुष के दर्शन के लिए हमें जब ले गये, तब द्वार बन्द थे और संतरी खड़े थे।

आखिर जो मुक्तात्मा सारे बिहार में निःसंकोच और निर्भयता से जंगल-जंगल घूमते थे, उन्हें इस तरह कैद क्यों करना पड़ा? इसीलिए कि अन्दर के हिस्से में सुवर्णमय बहुत-सा शृङ्गार था। भगवान् महावीर स्वामी सुवर्ण का वह परिग्रह पसन्द नहीं करते। उनके शिष्य उनकी करुणा के कायल थे; लेकिन वे सुवर्ण की प्रतिष्ठा भी नहीं छोड़ सकते थे। क्योंकि वे मानते थे कि दुनिया में सुवर्ण का साम्राज्य है। आज दुनिया की सबसे बड़ी ताकत जिस देश में मानी जाती है, उस अमेरिका में दुनिया का आधा सुवर्ण है। यानी हम महावीर भी चाहते हैं और सुवर्ण भी। दोनों में हमारी एक-सी निष्ठा है। दोनों का विरोध हम देख नहीं सकते और इसीलिए वहाँ बन्दूकवाला खड़ा करना पड़ता है। हमने महावीर की मूर्ति का दर्शन किया, तो हमें ऐसा लगा कि मूर्ति की आँखों से आँसू बह रहे हैं। हम ज्यादा देर तक वहाँ खड़े नहीं रह सके, अत्यन्त खिन्न होकर लौट आये। गये थे महापुरुष के दर्शन के लिए, लेकिन दर्शन हुआ हमारे दुर्दैव का!

सोचने की बात है कि करुणा को मानते हुए भी रक्षण का सवाल आने पर शक्तिदेवता का स्मरण क्यों होता है? इसीलिए कि हमने अपना जीवन करुणामय नहीं बनाया। हिन्दुस्तान के व्यापारियों के लिए यह सोचने का विषय है। उनमें यह सोचने की क्षमता है। हमारे कई व्यापारी मित्र हैं और हम जानते हैं कि उनमें कितनी आध्यात्मिक वृत्ति और दयाभाव है। आज की समाज-रचना में करुणा का थोड़ा-सा काम कर उन्हें समाधान नहीं होना चाहिए। बल्कि करुणा की बुनियाद पर समाज खड़ा करने की हिम्मत उनमें होनी चाहिए। हिन्दुस्तान के व्यापारियों में करुणाभाव है और साथ-साथ दुनिया के व्यापारियों का गुण व्यवस्थाशक्ति भी है। जब ये दोनों शक्तियाँ इकट्ठी हैं, तो भगवान् ने बहुत भारी काम उनके लिए रख छोड़ा है। व्यवस्थाशक्ति और दयाभाव, दोनों

इकट्ठा करने पर भी करुणा का राज्य न बन सके, तो हाइड्रोजन और ऑक्सिजन इकट्ठा करने से पानी भी न बनेगा।

देश और दुनिया को बचायें

आज हम हिन्दुस्तान के व्यापारियों का आवाहन कर रहे हैं—"व्यापारियो, आओ। धर्मनिष्ठा तुममें है। शास्त्रकारों ने तुममें विश्वास और निष्ठा रखी है। जो गुण तुम्हें हासिल हैं, उनका उपयोग कर दुनिया को बचाओ। तुम प्रजा के सेवक बनो और सेवक के नाते लोगों में आओ और अपने को सेवा में खपाओ।"

ऐसा ही एक वैश्य हिन्दुस्तान में हो गया है। आज करोड़ों लोग उसका नाम लेते हैं। वह शुरू से आखिर तक यह नहीं भूला था कि वह वैश्य है। कौन नहीं जानता कि महात्मा गांधी ने हिन्दुस्तान के लिए करुणा के क्या-क्या कार्य किये। हम कह नहीं सकते कि वे कौन थे ! वे ब्राह्मण के समान पवित्र थे, क्षत्रिय के समान निर्भय, वैश्य के समान करुणामय और शूद्र के समान सेवामय थे। इतना सारा होते हुए भी, वे सबसे अधिक कुछ थे, तो बनिया थे। उन्होंने गोरक्षा का काम किया, खादी को प्रतिष्ठा दी, ग्रामोद्योगों को बढ़ावा दिया, चमड़े का उद्योग शुरू किया। सारे काम बहुत ही कुशलबुद्धि से देशवासियों के लिए किये और कराये। हिन्दुस्तान में ऐसा कौन है, दुनिया में ऐसा कौन है, जो कहे कि महात्मा गांधी से बढ़कर शख्स हममें कोई है। उनके भी नाम से हम आवाहन करते हैं कि "व्यापारियो, सामने आओ, देश और दुनिया को बचाओ।" हमारे देश के व्यापारी वैश्य-धर्म को पहचानते हैं, व्यवस्थाशक्ति और करुणाबुद्धि सबकी सेवा में लगाते हैं, तो हमारे देश की सरकार अत्यंत निर्भय बनेगी।

प्राइवेट और पब्लिक सेक्टर

आज हमारी सरकार कहती है कि हमें समाजवादी रचना करनी है। इसलिए 'प्राइवेट सेक्टर' कम होना चाहिए और 'पब्लिक सेक्टर' बढ़ना चाहिए। यानी सामूहिक उद्योग बढ़ना चाहिए और व्यक्तिगत उद्योग की प्रतिष्ठा कम होनी चाहिए। यह भेद हम समझ नहीं पाते। सर्वोदय में इस विचार की कोई कीमत नहीं। जब पहली बार हमने दोनों सेक्टरों का झगड़ा सुना, तो

हमें बहुत आश्चर्य हुआ। अगर कोई हमसे पूछे कि हाथ के काम को ज्यादा महत्त्व है या अंगुली के ? तो ऐसे सवाल का हम क्या उत्तर देंगे ? हाथ पब्लिक सेक्टर है और अंगुलियाँ प्राइवेट सेक्टर। जो काम हाथ का है, वही काम अंगुलियों का और जो काम अंगुलियों का है, वही काम हाथ का। हम समझ नहीं सकते कि यह भेद आया कहाँ से ? अगर व्यापारी की करुणाबुद्धि और व्यवस्थाशक्ति लोगों की सेवा में लगती है, तो वे जो भी खानगी काम करेंगे, वे पूरे तौर पर सामूहिक होंगे।

वेद भगवान् ने कहा है कि जो मनुष्य दान-परायण है और अपनी संपत्ति का उपयोग सदा-सर्वदा सेवा में लगाता है, उसके पास होनेवाले धनसंचय का किसीको मत्सर नहीं होता। लोग समझते हैं कि यह धनसंचय हमारा बैंक है। उसकी रक्षा के लिए बंदूकवाले संतरी भी नहीं रखने पड़ते। आसपास की कुल जनता उसकी रक्षक बनेगी। इसलिए यह भेद मिथ्या है। अतः जब सरकार समाजवादी रचना की बात करती है, तब हिन्दुस्तान के करुणामय व्यापारियों को डरने की कोई जरूरत ही नहीं। उन्हें सामने आकर कहना चाहिए कि आप क्या समाजवादी रचना करेंगे ? वह तो हम करनेवाले हैं। हम अपने कुल उद्योग सेवा के लिए करेंगे, कौड़ी-कौड़ी का हिसाब लोगों के सामने पेश करेंगे। पेट के लिए जितना मेहनताना चाहिए, उतना ही लेंगे, ज्यादा नहीं। उसका भी हिसाब हम जनता के सामने पेश करेंगे और उस पर भी जनता की टीका सुनना चाहेंगे। फिर उस टीका में यदि सत्य दिखाई पड़ेगा, तो उसे दुरुस्त करने के लिए भी हम तैयार रहेंगे।

व्यापारियों में तीन गुण

हमें आश्चर्य होता है कि लोग हमसे आकर कहते हैं कि हिंदुस्तान में खानगी मालकियत न रहेगी, तो क्या व्यापारियों को पूँजी लगाने की प्रेरणा होगी ? अगर सारे धंधे देश के माने जायेंगे, तो व्यापारी उसमें योग देंगे ? वे अपनी प्रेरणा, बुद्धि और स्फूर्ति से जिस तरह आज पूँजी लगाते हैं, क्या आगे भी उसी तरह लगायेंगे ? ये लोग हमें समझाना चाहते हैं कि 'बिड़ला' और 'टाटा' जैसे

महापुरुष तभी पूँजी लगायेंगे, जब उन्हें स्वार्थ की प्रेरणा मिलेगी। हम समझते हैं कि ऐसा कहना इन महापुरुषों की बदनामी करना है। शास्त्रकारों ने वणिकों या व्यापारियों से जो अपेक्षा रखी है, उनके प्रति जो निष्ठा दिखायी है, उसके अनुसार यदि वे बरतते हैं, तो महात्मा गांधी से कम प्रतिष्ठा उन्हें न मिलेगी।

लोग हमसे पूछते हैं कि आप ऐसी भाषा बोलते हैं, तो क्या महात्मा गांधी के विचार के अनुसार बिड़ला जैसे सेठ ट्रस्टी बने है? मैं कहता हूँ कि किसी व्यक्ति-विशेष की परीक्षा लेना मेरा काम नहीं। मैं इतना जानता हूँ कि बिड़लाजी के हृदय में सज्जनता है और पर्याप्त मात्रा में करुणा भी है। मुझे आशा है कि जो परमेश्वर मुझे बोलने की प्रेरणा देता है, वह उन्हें भी अवश्य प्रेरणा देगा।

इस प्रकार की बात एक बड़े व्यापारी के साथ मैंने की थी। जब मैंने उन्हें यह बताया कि महात्मा गांधी आपसे आशा रखते थे कि आप ट्रस्टी बनें, अपनी व्यवस्थाशक्ति, संपत्ति और बुद्धि का उपयोग सेवा में करें और करुणावृत्ति का भी उपयोग करें, तब उस भाई ने कहा कि यह बात हमारे लिए कठिन नहीं है। इस बात का एक बड़ा ही सुन्दर कारण उन्होंने पेश किया। वे बोले कि आप देखते ही हैं कि दुनिया के व्यापारी जैसे ऐशो-आराम और शान-शौकत से रहते हैं, वैसे हम नहीं रहते। हमारा जीवन काफी सादगी से चलता है। उनकी यह बात सही थी। हमने ऐसे कितने ही व्यापारी देखे हैं, जिनके घर का ठाट साधारण लोगों के जैसा रहता है। वे ऐसी सादगी से रहते हैं कि पहचाना नहीं जाता कि अमुक व्यक्ति कोट्याधीश है। उन्होंने बताया कि यह हिंदुस्तान के व्यापारियों की विशेषता है। वे दुनियाभर में घूम चुके हैं। मुझे इस बात का पता नहीं था। जब मैंने दरियाफ्त किया, तब मुझे मालूम हुआ कि उनकी बात ठीक है। हमारे देश के व्यापारियों में करुणा है, व्यवस्थाशक्ति है और इनके अलावा सादगी भी है ऐसे तीन-तीन गुण जहाँ इकट्ठे हैं, वहाँ ये लोग करुणा का राज्य क्यों नहीं स्थापित कर सकते?

लगे हमारी-तुम्हारी होड़!

आप देखते हैं कि मैं एक-एक जमीनवाले के पास जाता हूँ और जमीन माँगता हूँ। लेकिन मैं एक-एक व्यापारी के पास नहीं जाता, क्योंकि जमीनवाले

खुद से विचार समझने की हैसियत में नहीं हैं। व्यापारी विचार को पहचानते हैं। इसलिए इधर में काम करता जाऊँगा, तो व्यापारी लोग सहज ही समझ लेंगे। क्लास में जो बुद्धू विद्यार्थी है, उसे हम अच्छी तरह सिखाते हैं, जब कि बुद्धिमान विद्यार्थी वैसे ही सीख लेता है। मैं राह देख रहा हूँ कि हिन्दुस्तान के व्यापारी कब सामने आते हैं और कब मेरा काम उठाते हैं। वे मुझसे कहें कि तुम्हें भूमि हासिल करने का काम सधा है, तो तुम वह काम करो। तुम जितनी भूमि हासिल करोगे, उसे फलद्रूप बनाना, सफल बनाना हमारा काम है। अब लगने दो हमारी-तुम्हारी होड़। तुमने कितनी जमीन हासिल की है? ४२ लाख एकड़। इतनी जमीन को अच्छी बनाना हमारा काम है।

हम कहना चाहते हैं कि हिन्दुस्तान के व्यापारियों में यदि यह स्फूर्ति आ जाय, तो आप देखिये कि हिन्दुस्तान में करुणा का साम्राज्य स्थापित होता है या नहीं, उसका असर पाकिस्तान पर होता है या नहीं, उसका असर विश्वशान्ति पर होता है या नहीं और परिणामस्वरूप शस्त्रबल की कीमत कम होती है या नहीं?

भारतीय संस्कार

जर्मनी के लोगों ने करोड़ों आदमियों का बलिदान किया और पैसा खर्च किया, इसलिए कि दुनिया के लोगों को जीतें। अगर इतना बलिदान, इतना पैसा और इतनी योजना लेकर वे दुनिया की सेवा करने को निकलते, तो दुनिया के मालिक बनते। बड़ा आश्चर्य होता है कि हिंसा की शक्ति बढ़ाने के लिए उन्होंने इतनी व्यवस्थाशक्ति, योजना और पैसा लगाया। यह सारा पड़ोसी देशों को जीतने के लिए किया गया। फिर भी वे उन्हें जीत न सके। किन्तु अगर जर्मनी-वाले दयाभाव से प्रेरित होकर दुनिया की सेवा करते, तो दुनिया उनका नाम लेती। हमारा विश्वास है कि करुणा का साम्राज्य स्थापित करने की बात अगर कहीं सूझेगी और उसका आरम्भ अगर कहीं होगा, तो वह भारत में ही होगा। हम मालकियत मिटाने की बात करते हैं, तो लोग पूछते हैं, क्या दुनिया से पचास साल में भी मालकियत मिट जायगी? हमें यह विश्वास तो नहीं है कि पचास साल में दुनिया से मालकियत मिट जायगी, परन्तु यह विश्वास है कि

ऐसी बात भारत में जरूर होगी, क्योंकि यहाँ का संस्कार ही इस प्रकार का है। पूरा-का-पूरा राज्य जिनके हाथ में था, वे उसे तिनके के समान फेंककर चले गये।

भूदान-पूर्ति का भार उठा लें

रामचन्द्र के राज्याभिषेक की बात चली। किन्तु तय हुआ कि उन्हें वनवास जाना है। वे कौशल्या को मिलने गये। वह बोलीं : "वत्स! मुझे कितनी खुशी होती है, जब मैं राज्याभिषेक की बात सुनती हूँ।" रामचन्द्र ने कहा : "माता, मुझे वन का राज्य मिला है। आशीर्वाद दो, मैं जाता हूँ।" माता को सदमा पहुँचा, सिर्फ एक क्षण के लिए। वह फौरन कहती है : "अगर राजा की आज्ञा है और तुम्हारी दूसरी माँ की भी इच्छा है, तो जरूर जाओ।" तब वह एक वाक्य कहती है कि "राजवंश के लोगों को अन्तिम क्षण में वन में जाना ही होता है। फर्क इतना ही है कि तुम्हें अभी जाना पड़ रहा है।" यह हमारी संस्कृति का आदर्श है। इस आदर्श को दुनिया में सिद्ध करने का काम अगर किसीको करना है, तो वैश्य को। प्रेरणा देने का काम ब्राह्मणों का है और यह काम महान् *आचार्यों ने किया है। पर उसे साकार रूप देना, मूर्तिमंत व्यवहार का रूप देना* व्यापारियों का काम है। इसलिए हम व्यापारियों के पास जाकर यह नहीं पूछते कि तुम कितना संपत्तिदान दोगे? हम उनसे बहुत ज्यादा चाहते हैं। हम चाहते हैं कि बाबा की भूदान की पूर्ति का भार व्यापारी उठा लें। इससे व्यापारियों की प्रतिष्ठा होगी।

गलती कहाँ है?

सबको मालूम है कि व्यापारी के बिना जीवन नहीं चलता। व्यापारी इधर का माल उधर और उधर का माल इधर भेजता है। इसीसे जीवन चलता है। इतना होते हुए भी आज हिन्दुस्तान में व्यापारियों को गालियाँ सुननी पड़ती हैं। शास्त्रकारों ने उनकी इतनी प्रतिष्ठा की, उनके बिना किसीका काम नहीं चलता, उनके मन में करुणा है, उनमें व्यवस्थाशक्ति और सादगी भी है, फिर भी काम नहीं बन रहा है और उन्हें गालियाँ मिलती हैं। सोचने की बात है कि गलती कहाँ है! बत्ती है, तेल भी है, *लेकिन सींक नहीं लगायी, तो प्रकाश नहीं होता।* बिजली

आ चुकी है, लेकिन उसका यत्न नहीं दबाया है, अतः अन्धकार है। इतना सारा गुणवान् वैश्य-समाज हिन्दुस्तान में है, तब बाबा को किस बात की चिन्ता ?

हमारा विश्वास है कि हमारे देश के व्यापारी बाबा का अवशिष्ट काम उठा लेंगे और उसकी पूर्ति के लिए जो भी करना है, करेंगे। परन्तु वे उल्टे हमारे पास आते हैं और हमें पैसा देना चाहते हैं। हम कहते हैं कि हम ब्राह्मण हैं और मूर्ख हैं, पैसे का उपयोग करना हम नहीं जानते। इसलिए आप अपने पैसे के साथ, करुणा के साथ, व्यवस्थाशक्ति के साथ और सादगी के साथ आइये और इस काम को उठा लीजिये। पैसा देकर हमें नाहक बदनाम मत कीजिये। बैल का काम घोड़े से नहीं बनता। खेत में काम करना है, तो बैल चाहिए। जोरों से दौड़ना है, तो घोड़ा चाहिए। बाबा घोड़ा है और आप हैं बैल। यह घोड़ा अश्वमेध के समान घूमेगा और जगह-जगह जाकर विचार-प्रचार करेगा। लेकिन प्राप्त हुई जमीन को सफल करने का काम आपका, व्यापारियों का है।

अपूर्व अवसर

हिन्दुस्तान के व्यापारियों के सामने एक मौका है। महात्मा गांधी ने व्यापारियों से बड़ी आशा रखी थी। उनकी आत्मा देख रही है कि मेरे प्यारे जातिवाले क्या करते हैं। भूदान-यज्ञ के जरिये मालकियत मिटाने का महायज्ञ शुरू हुआ है। इस हालत मे करुणाप्रेरित वैश्य-वृत्ति के जो लोग हैं, उन्हें करुणा का राज्य बनाने का मौका है। यह आवाहन हमने अत्यन्त विश्वास के साथ हिन्दुस्तान के व्यापारियों से किया है।

अडोनी (आन्ध्र)
२४-३-'५६

इन दिनों सभी देश एक-दूसरे के साथ अतिनिकट सम्पर्क में आ गये हैं। उधर की हवा इधर और इधर की हवा उधर शीघ्र फैल जाती है। हमें इसमें कोई खतरा नहीं मालूम होता, क्योंकि जहाँ विदेश की हवा यहाँ शीघ्र आ सकती है, वहीं यहाँ की हवा भी शीघ्र विदेश जा भी सकती है। यह तो बहुत बड़ा साधन हमारे हाथ में है—हम अपने देश में एक हवा तैयार करते हैं, तो सहज ही उसका असर सारी दुनिया पर हो जाता है।

हम स्वतन्त्र बुद्धि से सोचें

किन्तु अगर हम अपनी स्वतन्त्र बुद्धि न रखेंगे, तो विदेशी हवा का असर उतनी ही शीघ्रता से हम पर होगा। इसलिए हमारे देश के सामने सबसे मुख्य प्रश्न यही है कि हम अपना दिमाग स्वतन्त्र और कायम रखें। हमें स्वराज्य मिला है, तो उसकी चरितार्थता इसीमें है कि हमारे देश का हरएक नागरिक स्वतन्त्र बुद्धि से सोचे। देश की स्थिति, परम्परा आदि देखते हुए अपने देश के लिए अपने ही ढंग से सोचे। किन्तु जिस दुनिया के लोगों ने हिंसा को ही अन्तिम आधार मान लिया हो, वहाँ अभिक्रमण-शक्ति (Initiative) किसीके हाथ में नहीं रह सकती।

आज अमेरिका और रूस को एक-दूसरे का भय है। सारी दुनिया में भय छाया हुआ है। छोटे बड़े सभी देशों में भय व्याप्त है। कोई भी देश अपने मनमुताबिक कोई योजना बना नहीं पाता। एक-दूसरे को शस्त्र बढ़ाता हुआ देख खुद भी शस्त्र बढ़ाने लग जाता है। पाकिस्तान ने अमेरिका के साथ मैत्री कर ली है। मैत्री तो सारी दुनिया से करनी चाहिए। किन्तु यह मैत्री सैनिक मदद पाने के लिए की गयी है। पाकिस्तान शस्त्रबल बढ़ा रहा है, तो हिन्दुस्तान को भी लगता है कि अब हमें भी शस्त्रबल बढ़ाना चाहिए। पार्लमेण्ट में भी प्रश्न पूछे जाते हैं कि 'आप सावधान हैं या नहीं? आपको भी

शस्त्रास्त्रों से सज्ज होना चाहिए। अगर अमेरिका से मदद न मिले, तो रूस से ही लेनी चाहिए।' इस पर जवाब देनेवाले जवाब देते हैं कि 'भाई, हम सावधान हैं।' वे जानते हैं कि हमें अपनी ताकत बनानी होगी। फिर भी देश में अच्छी योजना चलती है, तो उसमें बाधा डालने की जरूरत नहीं। कारण उससे बल ही मिलता है। शस्त्रबल बढ़ाने के लिए हम सावधान हैं और जिम्मेदारी भी महसूस करते हैं।

देश की जबान में ताकत कैसे आये?

पाकिस्तान कहता है कि हिन्दुस्तान से लड़ने की हमारी मनीषा नहीं। हम कोई भी समस्या बातचीत से ही हल करना चाहते हैं। फिर भी सैन्यबल बढ़ता है, तो कूवत के साथ बातचीत चल सकती है और उसमें बल भी आता है। किन्तु ऐसी हालत में हिन्दुस्तान भी ताकत के साथ बातचीत करने के लिए शस्त्रास्त्र-बल बढ़ाये, तो इसका कोई अन्त ही न आयेगा। वास्तव में अपने देश में, जनता में ऐसी ताकत होनी चाहिए कि वह स्वयं कहे कि हम निर्भय हैं और हमें शस्त्रबल की जरूरत नहीं है। हम पाकिस्तान से ताकत के साथ बातचीत करना जरूर चाहते हैं। लेकिन हमारी जबान की ताकत बढ़े, इसलिए हमारे देश की सेना पहले जितनी थी, उससे आधी कर डालें। उस पर जितना खर्च डर के मारे करते थे, डर छोड़कर उतना खर्च न करें। क्योंकि हम चाहते हैं कि पड़ोसी देश डर रहा है, सैन्य बढ़ा रहा है। ऐसे देश से मुकाबला करने के लिए हमें अपनी ताकत बढ़ानी चाहिए। हम सैन्यबल और शस्त्र-शक्ति कम करें, ताकि हमारी भाषा में जोर आये। क्या ऐसी सलाह अपने प्रधानमन्त्री को देने की हमारी तैयारी है?

पाक से बात करने के लिए शस्त्रत्याग

किसीने मुझसे पूछा कि आप पाकिस्तान के साथ बातचीत करने के लिए जायेंगे, तो क्या तैयारी रखेंगे? मैंने कहा : 'जब तक मैं सैन्यबल खतम नहीं करता, तब तक उससे बोलने की ताकत ही मुझमें नहीं आती। वास्तव में बातचीत की ताकत तो अक्ल में होती है और वह तब तक नहीं आती, जब तक कि हम सैन्य-

बल पर भरोसा रखते हैं। अपने भाई को जीत लेने की शक्ति तब तक मुझे प्राप्त नहीं हो सकती, जब तक कि अहिंसा की शक्ति पर मेरा विश्वास न हो। लेकिन जब मैं यह बात कहता हूँ, तो लोग समझते हैं कि यह शख्स या तो बहुत पुराना नमूना होगा या चार हजार साल बाद का नमूना होगा।

आज तो यह पागल की बात लगती है, लेकिन कहीं-न-कहीं किसी देश में यह ताकत अवश्य होनी चाहिए, जो दूसरे की ओर न देखते हुए अपना शस्त्रबल क्षीण कर दे। यह ताकत आज न आयी हो, तो कल आनी चाहिए और कल आये, इसीलिए आज योजना होनी चाहिए। अगर हम पाकिस्तान के डर से शस्त्रसेना बढ़ाने की बात करें, तो किस मुँह से रूस-अमेरिका को शस्त्रसेना कम करने के लिए कहेंगे? राजाजी ने अमेरिका को उपदेश दिया था कि सामनेवाला देश क्या करता है, यह सोचे बिना तुम शस्त्र-सेना कम कर लो। जो बात हम दूसरे को करने के लिए कहते हैं, पहले हमें ही उस पर अमल करना चाहिए। जाहिर है कि वह शक्ति आज हमारे देश में नहीं है, लेकिन वह आनी चाहिए। यह शक्ति जिस किसी देश में आयेगी, वह सारी दुनिया की समस्या हल करने की राह दिखायेगा। खुद बचेगा और दुनिया को बचायेगा। कुल इतिहास देखते हुए हमें विश्वास होता है कि यह शक्ति भारत में आयेगी। अब उसी दिशा में हमारा कर्तव्य क्या होना चाहिए, यही सोचना चाहिए।

आन्तरिक शान्ति के लिए हिंसा का प्रयोग न हो

आज अपने देश में कई घटनाएँ हो रही हैं। सबसे श्रेष्ठ घटना यही है कि पाकिस्तान सैन्यबल बढ़ा रहा है और हमें शस्त्रबल बढ़ाने की जरूरत महसूस हो रही है। इसका उपाय यही है कि हम लोगों में अहिंसक शक्ति बढ़ायें। इस विषय पर सभी राजनैतिक दलों को गंभीरता से सोचना चाहिए। उन्हें यह भी तय करना होगा कि हिन्दुस्तान में जितना समाज-सेवा का काम चलता है, उसमें हिंसा का प्रवेश न हो। हमें ऐसी ही कार्यपद्धति ढूँढ़नी होगी। सब संस्था और पक्षों के सामने हम यह कार्यक्रम रखना चाहते हैं। कम-से-कम इतना तो हो कि हिन्दुस्तान की आन्तरिक रक्षा के लिए किसी भी पुलिस (Soldier) की जरूरत

न हो। अगर आपके आन्तरिक मसले हल करने के लिए (जैसे कि S. R. C. का मामला) जगह-जगह काफी पुलिस रखी जाती है, तो विदेशी का हमला जल्द हो सकता है।

अभी पाकिस्तान की तरफ से छिपे हमले हुए हैं। हम आशा करते हैं कि वह योजनापूर्वक न हुए होंगे। किन्तु वे बुद्धिपूर्वक भी हुए हों, तो आश्चर्य की बात नहीं। क्योंकि जो सैन्यबल बढ़ाता है, वह बीच-बीच में सैन्य को कुछ काम देगा या नहीं? नॉर्मल स्कूल का ही प्रैक्टिसिंग स्कूल (Practicing School) होता है, वैसे ही वे 'प्रैक्टिस' (Practice) कर लेते होंगे, हिन्दुस्तान कहाँ तक जाग्रत है, यह देख लेते होंगे।

मैं उन पर हेतु का आरोप नहीं करता, क्योंकि मैं उसे जानता नहीं। यही कहता हूँ कि अगर देश में आन्तरिक शान्ति रखने के लिए पर्याप्त सेना की जरूरत पड़े, तो अपने देश को दूसरे देश से बचाने के लिए और भी सेना आवश्यक होगी। याने देश की आन्तरिक शान्ति और विदेशी हमले से देश को बचाने के लिए देश सेना पर आधार रखेगा, तो फिर सैनिक-राज्य होगा। अगर अपनी प्रजा से डरना है और बाहर की प्रजा से भी डरना है, तो किससे न डरना होगा? इसलिए सबको निश्चय करना चाहिए कि हम आन्तरिक शान्ति के लिए हिंसा का उपयोग न करेंगे। हमें यह समझना चाहिए कि अगर आंतरिक शाति के लिए हिंसा का उपयोग करने का प्रसंग हम पर आता है, तो राज्यकर्ता के नाते हम नालायक होंगे।

किन्तु यह एकपक्षीय बात नहीं, क्योंकि सरकार जनता का प्रतिबिम्ब है। अतः जनता की ओर से भी यह निश्चय होना चाहिए कि कुछ भी हो, अपने देश के मसले हल करने के लिए हम कभी भी सैनिक-बल का उपयोग न करेंगे, पुलिस, सेना कभी निर्माण न करेंगे। इनका निश्चय सभी पक्षों की ओर से भी होना चाहिए। आज जितने भिन्न-भिन्न पक्ष हैं, सब एक दूसरे-के साथ बात करने के लिए कभी इकट्ठे नहीं होते। हर मसले पर सब अलग-अलग सोचते हैं। मेरा खयाल है कि वे शादी और भोजन के अवसर पर भी एक दूसरे के घर न जाते

होंगे। किन्तु सबके चित्त में अगर देश का हित है, तो उसकी चर्चा के लिए सबको इकट्ठा होना चाहिए।

इन दिनों विश्वशान्ति की बात सर्वमान्य वस्तु हो गयी है। कम्युनिस्ट भी विश्वशान्ति की बात करते हैं, तो वे भी इस पर चर्चा करने के लिए इकट्ठे हो सकते हैं। यह बात अपने देश में आज की स्थिति में अत्यन्त आवश्यक है।

छोटी हिंसा में श्रद्धा सबसे भयानक

मसले हल करने के लिए सबको 'अशांतिमय तरीके का उपयोग न करेंगे' इतनी ही निषेध प्रतिज्ञा करने से काम न चलेगा। उन्हें मसले हल करने के लिए शांतिमय तरीका भी ढूँढ़ना होगा। अगर हिन्दुस्तान की कुल प्रजा कुछ बुनियादी मसले शान्ति की ताकत से हल करती है, तो शान्ति पर विश्वास और श्रद्धा हासिल होगी। आज यह श्रद्धा अभी लोगों में पैदा नहीं हुई है। आखिर एस० आर० सी० (राज्य-पुनर्संगठन आयोग) के बाद दंगे क्यों हुए? जिन्होंने किये, उनका अहिंसा पर तो विश्वास नहीं है। तब क्या हिंसा पर विश्वास है? क्या वे चाहते हैं कि हिंदुस्तान ऐटम बम आदि का उपयोग कर सके, ऐसी इसकी ताकत बने? स्पष्ट है कि ऐसी बड़ी-बड़ी हिंसा पर उनका बिलकुल विश्वास नहीं है। वे मानते हैं कि ऐटम बम से कभी शांति हासिल न होगी। फिर भी उनका छोटी-छोटी हिंसा पर विश्वास अवश्य है, यह बहुत ही भयानक चीज है।

शिक्षक को ऐटम बम अत्यन्त निरुपयोगी चीज लगती है, पर बच्चे को तमाचा लगाने में ज्यादा विश्वास है। जो कार्य अध्यापन-कला से न होगा, वह उस छोटे-से तमाचे से होगा, ऐसी उसकी श्रद्धा है। माता के हाथ में एक निर्दोष लड़का आया—माँ के उदर में किसी बालक ने जन्म पाया। माता कहती है कि देखो चाँद! तो वह विश्वास रखता है कि हाँ, वह चाँद ही है। ऐसे विश्वासु लड़कों को भी मारने-पीटने में माता-पिता को श्रद्धा है। वे बड़ी-बड़ी भयानक हिंसा से तो डरते हैं और उनमें उन्हें विश्वास भी नहीं है, लेकिन छोटी हिंसा में श्रद्धा है, जो बड़ी भयानक है।

सेना बढ़ाना हो, तो लोगों को भूखों मारना होगा

१९४२ के आन्दोलन में हिन्दुस्तान ने अशान्तिमय तरीके से अंग्रेजों को यहाँ से हटाया, ऐसा कुछ लोग कहते हैं। कुछ कहते हैं कि हिंसा और अहिंसा, दोनों मिलाकर काम हुआ। घी-शक्कर के साथ आटा मिलता है, तो लड्डू बनता है वैसे हिंसा, अहिंसा तथा कुछ युक्ति और दलील, ऐसे तीन प्रकार से काम होता है। सन् १९४२ के आन्दोलन में इन्हीं चीजों का अभ्यास हुआ था। इसीलिए एस० आर० सी० के बाद यह प्रकार हुआ। किन्तु अब हमें छोटी हिंसा पर के इस विश्वास से सर्वथा मुक्त होना चाहिए। हमारा नम्र दावा है कि भूदान-यज्ञ की यदि कोई मुख्य महिमा है, तो यही है। इससे अन्त में देश की बड़ी समस्या का शान्तिमय तरीके से हल करने की सूरत दीख पड़ती है। आप भारत के नागरिक हैं—नगरवासी हैं। अतः आप भूदान को इसी दृष्टि से देखिये।

कोई पूछते हैं कि आपको राह से देर हो रही है। सरकार से कानून बनवाकर भूमि का बँटवारा क्यों नहीं करते ? हम पूछते हैं कि मकान बनाने में देर लगती है, इसलिए उसे आग क्यों न लगायी जाय ? बात यह है कि जमीन छीनकर बाँटी जायगी, तो हिंसा पर विश्वास मजबूत बनेगा और अपना देश गुलाम ही रहेगा। अगर कोई हमें दिखा दे कि हिंसा के रास्ते पर जाकर हमारा देश शेर बना, तो हम अहिंसा पर का अपना विश्वास थोड़ी देर दूर रखने के लिए भी तैयार हैं। किन्तु हम पूरी तरह जानते हैं कि अगर हमारा देश हिंसा पर विश्वास रखकर ताकत बढ़ाना चाहेगा, तो वह बिल्ली बन जायगा। फिर अमेरिका का आश्रय और रूस का गुरुत्व ढूँढ़ना पड़ेगा। उनका शिष्य बनकर उनके पीछे-पीछे चलना होगा। वे जैसा कहेंगे, वैसा ही करना होगा। फिर अपनी ताकत पर खड़ा रहना होगा, तो सेना बढ़ानी होगी। इसके लिए उद्योग (Industries) शुरू करने होंगे।

पाकिस्तान के एक पुराने प्रधान मन्त्री ने कहा था कि हम भूखे मरने को राजी हैं, लेकिन देश की सुरक्षा (Defence) मजबूत बनायेंगे। यह तो एक बोलने की भाषा है। क्या इसका अर्थ यह है कि वह खुद देश की रक्षा के लिए भूखा

होंगे। किन्तु सबके चित्त में अगर देश का हित है, तो उसकी चर्चा के लिए सबको इकट्ठा होना चाहिए।

इन दिनों विश्वशान्ति की बात सर्वमान्य वस्तु हो गयी है। कम्युनिस्ट भी विश्वशान्ति की बात करते हैं, तो वे भी इस पर चर्चा करने के लिए इकट्ठे हो सकते हैं। यह बात अपने देश में आज की स्थिति में अत्यन्त आवश्यक है।

छोटी हिंसा में श्रद्धा सबसे भयानक

मसले हल करने के लिए सबको 'अशांतिमय तरीके का उपयोग न करेंगे' इतनी ही निषेध-प्रतिज्ञा करने से काम न चलेगा। उन्हें मसले हल करने के लिए शांतिमय तरीका भी ढूँढ़ना होगा। अगर हिन्दुस्तान की कुल प्रजा कुछ बुनियादी मसले शान्ति की ताकत से हल करती है, तो शान्ति पर विश्वास और श्रद्धा हासिल होगी। आज यह श्रद्धा अभी लोगों में पैदा नहीं हुई है। आखिर एस० आर० सी० (राज्य-पुनर्संगठन आयोग) के बाद दंगे क्यों हुए ? जिन्होंने किये, उनका अहिंसा पर तो विश्वास नहीं है। तब क्या हिंसा पर विश्वास है ? क्या वे चाहते हैं कि हिंदुस्तान ऐटम बम आदि का उपयोग कर सके, ऐसी इसकी ताकत बने ? स्पष्ट है कि ऐसी बड़ी-बड़ी हिंसा पर उनका बिलकुल विश्वास नहीं है। वे मानते हैं कि ऐटम बम से कभी शांति हासिल न होगी। फिर भी उनका छोटी-छोटी हिंसा पर विश्वास अवश्य है, यह बहुत ही भयानक चीज है।

शिक्षक को ऐटम बम अत्यन्त निरुपयोगी चीज लगती है, पर बच्चे को तमाचा लगाने में ज्यादा विश्वास है। जो कार्य अध्यापन-कला से न होगा, वह उस छोटे-से तमाचे से होगा, ऐसी उसकी श्रद्धा है। माता के हाथ में एक निर्दोष लड़का आया—माँ के उदर में किसी बालक ने जन्म पाया। माता कहती है कि देखो चाँद ! तो वह विश्वास रखता है कि हाँ, वह चाँद ही है। ऐसे विश्वासु लड़कों को भी मारने-पीटने में माता-पिता को श्रद्धा है। वे बड़ी-बड़ी भयानक हिंसा से तो डरते हैं और उनमें उन्हें विश्वास भी नहीं है, लेकिन छोटी हिंसा में श्रद्धा है, जो बड़ी भयानक है।

जान-पहचान भी नहीं, वह खड़ा होता और उसे मत देना पड़ता है। इस तरह इस चुनाव में त्रिदोष हैं। मनुष्य को त्रिदोष होता है, तो उसके बचने की आशा नहीं रहती। इसलिए यह चुनाव का तरीका भी बदलना चाहिए। गाँव में प्रत्यक्ष पद्धति से चुनाव होना चाहिए और ऊपर के चुनाव अप्रत्यक्ष पद्धति से हों, तभी गरीबों का उद्धार होगा।

घडोनी (आन्ध्र)
२४-३-'५६

समाज-समर्पण से गुण-विकास : ३१ :

हर जगह का अनुभव है कि सभी लोग हमारी बात बहुत प्रेम और ध्यान से सुनते हैं। हम बिलकुल सीधी सादी, सरल बात बताते हैं। हर घर में भगवान् ने बच्चे दिये हैं और हरएक शख्स के पेट में भगवान् ने भूख रखी है। किसीकी भूख बिना अन्न के मिटनी नहीं और न किसी बच्चे का पालन-पोषण बिना अन्न के हो सकता है। इसलिए जैसे हवा-पानी सबके लिए है, वैसे ही जमीन भी सबके लिए होनी चाहिए। हवा-पानी का कोई मालिक नहीं हो सकता, तो जमीन का भी कोई मालिक क्यों हो ?

देहातों में स्वामित्व-निरसन की हवा

भूमि परमेश्वर की है और सबके लिए है। जो उसकी सेवा करना चाहेगा, उसे उसके हिस्से में हिसाब से जितनी जमीन आये, उतनी मिलनी ही चाहिए। जैसे कोई प्यासा पानी माँगता है, तो हम उसे 'ना' नहीं कहते, वैसे ही जो जमीन की सेवा करना चाहते हों, उन्हें भी हम 'ना' नहीं कह सकते। जमीन लेकर कोई काश्त करना न चाहे, तो उसे जमीन माँगने का हक ही नहीं है। किन्तु जो जमीन की काश्त करना चाहता और जानता हो, उसे जमीन जरूर मिलनी चाहिए। फिर हम यह नहीं कह सकते कि इतनी जमीन के हम मालिक हैं। जैसे किसी जमीन पर मालिक के रूप में बाप का नाम लिखा होने पर भी बेटे के जन्म लेते ही उसका उस पर हक हो जाता है, वैसे ही गाँव में किसी भी शख्स का भी हक है।

मरनेवाला था ? इसका अर्थ यही है कि हम अपने यहाँ के गरीबों को भूखों मारने के लिए तैयार हैं, लेकिन देश की रक्षा की उपेक्षा करने को तैयार नहीं हैं। आज वहाँ ७० प्रतिशत खर्च सेना पर हो रहा है। हमारे यहाँ भी ५० प्रतिशत खर्च हो ही रहा है। जब सेना पर ही इतना खर्च होगा, तो गरीबों के लिए क्या रहेगा ? फिर गरीबों में असन्तोष फैलता है, तो समझाया जाता है कि कमबख्त हिन्दुस्तान का खतरा है, इसलिए हमारे देश की बुरी हालत है। भूखे लोगों को खाने को अन्न नहीं मिलता, तो हिन्दुस्तान के लिए द्वेष का अन्न दिया जाता है। फिर सैनिक बनकर वे कभी-न-कभी हिन्दुस्तान पर हमला करने की सोचते हैं। ऐसा द्वेष अपने देश के लिए होना चाहिए या जहाँ सैनिक राज्य है, उन देशों के लिए होना चाहिए ? इसलिए हमने कहा कि अगर हम सेना की ताकत बढ़ायेंगे, तो हम शेर नहीं, बिल्ली बनेंगे। फिर गरीबों को दबाना पड़ेगा, ग्रामोद्योगों को उत्तेजन न देना होगा, यन्त्रोद्योग बढ़ाना होगा। सिपाही की खुशामद के लिए सब कुछ करना होगा और रूस का गुरुत्व मानना होगा। फिर तो अपने देश का स्वत्व ही न रहेगा।

इसीलिए अगर हम भूदान-यज्ञ से देश की एक समस्या का लोकशक्ति से हल करते हैं, तो दुनिया का अहिंसा पर विश्वास बढ़ेगा। सब नागरिकों को अपनी शक्ति पहचाननी होगी। हमारे रक्षण के लिए सेना ही नहीं चाहिए। सैन्यशक्ति से देश की सेवा नहीं होगी। लोगों की निर्भयता और एकता ही एकमात्र बड़ी शक्ति है।

कर्तव्य की चार बातें

इसके लिए हमें ये चार बातें करनी होंगी : (१) सरकार या लोगों के जरिये हिंसा न हो, यह निश्चय। (२) हम अपने मुख्य-मुख्य मसले सरकार-निरपेक्ष जनशक्ति से हल करें। (३) देश में शिक्षण स्वातन्त्र्य हो। और (४) आज का चुनाव का तरीका बदल दिया जाय। आज की पद्धति से गरीबों का कभी उद्धार न होगा। आज चुनाव में उनका कोई स्थान ही नहीं है। उससे जाति-भेद ही बढ़ रहा है। इसके अलावा जिस मनुष्य को देखा भी नहीं, कोई

जान-पहचान भी नहीं, वह खड़ा होता और उसे मत देना पड़ता है। इस तरह इस चुनाव में त्रिदोष हैं। मनुष्य को त्रिदोष होता है, तो उसके बचने की आशा नहीं रहती। इसलिए यह चुनाव का तरीका भी बदलना चाहिए। गाँव में प्रत्यक्ष पद्धति से चुनाव होना चाहिए और ऊपर के चुनाव अप्रत्यक्ष पद्धति से हों, तभी गरीबों का उद्धार होगा।

अडोनी (आन्ध्र)
२४-३-'५६

समाज-समर्पण से गुण-विकास : ३१ :

हर जगह का अनुभव है कि सभी लोग हमारी बात बहुत प्रेम और ध्यान से सुनते हैं। हम बिलकुल सीधी-सादी, सरल बात बताते हैं। हर घर में भगवान् ने बच्चे दिये हैं और हरएक शख्स के पेट में भगवान् ने भूख रखी है। किसीकी भूख बिना अन्न के मिटनी नहीं और न किसी बच्चे का पालन-पोषण बिना अन्न के हो सकता है। इसलिए जैसे हवा-पानी सबके लिए है, वैसे ही जमीन भी सबके लिए होनी चाहिए। हवा-पानी का कोई मालिक नहीं हो सकता, तो जमीन का भी कोई मालिक क्यों हो ?

देहातों में स्वामित्व-निरसन की हवा

भूमि परमेश्वर की है और सबके लिए है। जो उसकी सेवा करना चाहेगा, उसे उसके हिस्से में हिसाब से जितनी जमीन आवे, उतनी मिलनी ही चाहिए। जैसे कोई प्यासा पानी माँगता है, तो हम उसे 'ना' नहीं कहते, वैसे ही जो जमीन की सेवा करना चाहते हों, उन्हें भी हम 'ना' नहीं कह सकते। जमीन लेकर कोई काश्त करना न चाहे, तो उसे जमीन माँगने का हक ही नहीं है। किन्तु जो जमीन की काश्त करना चाहता और जानता हो, उसे जमीन जरूर मिलनी चाहिए। फिर हम यह नहीं कह सकते कि इतनी जमीन के हम मालिक हैं। जैसे किसी जमीन पर मालिक के रूप में बाप का नाम लिखा होने पर भी बेटे के जन्म लेते ही उसका उस पर हक हो जाता है, वैसे ही गाँव में किसी भी शख्स का भी हक है।

कानून में जमीन हमारे नाम पर लिखी होगी, पर इसका अर्थ इतना ही है कि माँगनेवालों को देने की जिम्मेवारी हमारी है। याने वह हक के साथ आ सकता है और कह सकता है कि तुम्हारे नाम से जमीन लिखी है, इसलिए देने का कर्तव्य तुम्हारा है और माँगने का हक हमारा है। जिसके नाम पर जमीन न लिखी हो, उसके पास जाकर माँगने का हमें हक नहीं, यह हम कबूल करते हैं। किसीके नाम पर जमीन लिखी है, इसका अर्थ यह कभी न समझना चाहिए कि वह उसका मालिक है। आश्चर्य की बात है कि जगह-जगह लोग हमारी यह बात कबूल करते हैं। हम जिस किसीके पास माँगने जाते हैं, वह जमीन देने से इनकार ही नहीं करता। हाँ, आसक्ति एकदम न छूटे, इसलिए कम-बेशी जरूर देता है। लेकिन देने से इनकार कोई नहीं करता।

शहरों में हकों का झगड़ा

इधर हिन्दुस्तान के देहात में हम यह दृश्य देखते हैं और उधर शहरों में कोई कहता है कि इस शहर पर हमारा हक है, तो दूसरा कहता है कि हमारा। बल्लारी पर हमारा हक है या बेलगाँव पर? बम्बई हमारा है या तुम्हारा? आजकल ऐसे झगड़े चल पड़े हैं। यह कैसी मूर्खता है? खास कर शहरों में ऐसी छोटी-छोटी वृत्तियाँ बनी हैं। भाषावार प्रांत-रचना सहूलियत और इन्तजाम का विषय है। इसमें मालकियत की बात न बोली जानी चाहिए। वैसे मालकियत की बात बोलनी ही है, तो हिन्दुस्तान के खयाल से हिन्दुस्तान की मालकियत की बात बोली जा सकती है। हमें पूछें, तो हम तो वह बात भी कबूल नहीं करते। हम समझते हैं कि दुनिया की कुल जमीन पर कुल प्राणियों का हक है। हम कहीं भी जाकर सेवा करना चाहें, तो हमें उसका हक है। लेकिन आज यह हक दुनिया को कबूल नहीं है। एक देश से दूसरे देश में जाना पड़ता है, तो इजाजत के बिना नहीं जा सकते, ऐसी आज हालत है। दुनिया की ऐसी बुरी हालत के कारण जैसे किसान आपस में लड़ते हैं, वैसे ही विभिन्न देश आपस में लड़ते हैं। जो देश दूसरे देश के साथ लड़ता है, वह अपनी कोई गलती महसूस नहीं करता। कहता है कि सामनेवाले की ही कुल गलती है। यही दूसरे देश की बात हमारे

देश में भी आ गयी है। एक प्रान्त के लोग दूसरे प्रान्त के विरुद्ध बोलते हैं, इसमें लोगों का दोष नहीं। यह सवाल जिस ढंग से पेश किया गया है, उसीमें दोष है। इधर भूदान-यज्ञ को देहात-देहात में यह वृत्ति है और उधर शहर में यह वृत्ति दीख पड़ती है! दुर्दैव यह है कि आज देहात शहर के हाथ में हैं। देहात की हवा शहर में मुश्किल से जायगी, लेकिन शहरी हवा देहातों में आसानी से जायगी। आज कुल दुनिया को लड़ाई में ढकेलना हो, तो शहर-वाले ढकेल सकते हैं और उसमें भी कुल शहरवालों को तकलीफ देना जरूरी नहीं है। दुनिया के चंद मुखिया हैं, वे कुल दुनिया को आग लगा सकते हैं। लोगों ने दुनिया को आग लगाने की ताकत उन्हें चुन-चुनकर उनके हाथ में दे रखी है।

गुण समाज को समर्पित किये जायँ

हमारे पास इसका इलाज होना चाहिए। इलाज यही है कि हमें सज्जनता की ताकत बढ़ानी चाहिए। जहाँ-जहाँ सज्जनता है, वहाँ से उसे इकट्ठा किया जाय; फिर चाहे वह देहात में हो या शहर में, इस देश में हो या उस देश में। चाहे वह किसी भी जाति में, किसी भी भाषा में, किसी भी धर्म में हो। जैसे चींटियाँ शक्कर का कण कहीं भी पड़ा हो, तो उसे चुनकर ले लेती हैं, इसी तरह हमें जहाँ सज्जनता दीख पड़े, वहाँ से उसे इकट्ठा कर, संग्रह कर उसकी ताकत बनानी चाहिए। यह एक वृत्ति है, जिसका अभ्यास हम सबको करना चाहिए। इसका उपाय यही है कि हम अपने को समाज से अलग न समझें, अपने में जितनी अच्छाई है, सबकी सब समाज की सेवा में लगायें और सारी बुराई खतम करें। पहली बात है, अपने में रहनेवाली बुराई को पहचानकर उसे निकालना या खतम कर देना। और दूसरी बात है, अपने में रहनेवाली अच्छाई का अभिमान छोड़ना, उस पर अपनी मालकियत न समझकर उसे समाज की सेवा में लगाना।

कुछ लोग पहली बात तो थोड़ी-थोड़ी समझ लेते हैं, लेकिन दूसरी बात लोगों के ध्यान में नहीं आती। वे समझ नहीं पाते कि हममें जो अच्छाइयाँ हैं, उसकी मालकियत भी हमारी नहीं है, वह समाज की सेवा में समर्पित करनी

चाहिए। अगर मुझमें ध्यानशक्ति है, मैं एकाग्र हो सकता हूँ, तो उस बहुत बड़े सद्गुण का मुझे अपने को मालिक न मानना चाहिए, उसका लाभ सारे समाज को देना चाहिए। मान लीजिये कि मेरे पास बुद्धि है। मैं अच्छी तरह सोच सकता हूँ। तो यह गुण भगवान् ने मुझमें समाज के लिए दिया है। उसका विनियोग समाज-सेवा में ही होना चाहिए। अपने गुणों का विकास करना मनुष्य का कर्तव्य है। और जब गुण समाज की सेवा में समर्पित होता है, तभी उसका विकास होता है। अन्यथा उस गुण का विकास नहीं होता, गुण के नाम पर दोष का ही विकास होता है। इसीलिए गीता ने एक बड़ा ही सुन्दर वाक्य कहा है : 'ध्यानात् कर्मफलत्यागः।' ध्यान से भी फलत्याग श्रेष्ठ है। याने ध्यान बड़ा गुण तो है ही, पर वह स्वार्थ के लिए भी इस्तेमाल किया जा सकता है। जब उसका विकास व्यक्तिगत स्वार्थ के लिए किया जाता है, तो वह गुण-विकास न होकर दोष-विकास ही हो जाता है। इसलिए ध्यान का भी फलत्याग करना चाहिए। याने वह ध्यान-शक्ति समाजसेवा में समर्पित करनी चाहिए। यही बात ज्ञान को भी लागू होती है। इसलिए बताया गया है कि ध्यान से ज्ञान अच्छा है और ज्ञान से भी फलत्याग अच्छा।

तात्पर्य यह कि जितने सद्गुण हैं, उन सबमें फलत्याग श्रेष्ठ है। मान लीजिये, मैं प्रामाणिक हूँ। अब यह बड़ा ही महत्त्व का गुण है। यह व्यापार में बड़ा काम आता है। इसके आधार पर हम बड़े, श्रीमान् बन सकते हैं। व्यक्तिगत तौर पर प्रामाणिकता से इस तरह लाभ उठाया जा सकता है। दूसरे को ठगकर लाभ उठाने के बदले प्रामाणिकता से भी लाभ लिया जा सकता है। किन्तु वह भी एक दोष है, क्योंकि उसमें प्रामाणिकता अपने स्वार्थ का साधन बन जाती है। इसलिए उसका फलत्याग होना चाहिए, वह समाज के लिए समर्पित होनी चाहिए। इसीमें भूदान-यज्ञ और सम्पत्तिदान-यज्ञ भी आ जाता है। जहाँ गुणदान व्यापक बनता है, वहाँ क्या नहीं हो सकता ? अपने सारे-के-सारे गुण समाज के लिए समर्पित कर जब हम उसका उपयोग करते हैं, तो हमारा सच्चा विकास होता है।

फलत्याग का धर्म-विचार

इस तरह जब हम सोचते हैं, तब ध्यान में आता है कि हमें समाज में

किस प्रकार का काम करना है। चाहे शहर का समाज हो, चाहे गाँव का या किसी भी देश का समाज हो, सभीके सामने फलत्याग की यह बात रखनी है। आज तो हमारा कुल जीवन हक पर निर्भर है। हमने इतना काम किया, तो हमें फल भोगने का हक है। हमारे पूर्वजों ने एक पराक्रम कर दिया, इसलिए इस पर हमारा हक है। यह हक चलाने के लिए दो-दो, चार-चार सौ साल की पीढ़ियों का इतिहास बताया जाता है। किन्तु हक पर जोर देने का मतलब है, फल भोगने की वासना रखना। परन्तु फलत्याग में ऐसा नहीं है।

जैसे-जैसे भूदान-यज्ञ पर हम सोचते हैं, वैसे-ही-वैसे हमें उसके गहरे धर्म-विचार का उत्तरोत्तर भान होता है। समाज की कुल समस्या का रूप ही बदल जाता है। अगर लोगों के सामने फलत्याग का विषय होता, तो भाषावार प्रान्त-रचना का झगड़ा ही न चलता। लेकिन आज तो हरएक अपने हक पर जोर देता है। इसके बदले अपना हक समर्पित करते चले जायँ, तो झगड़ा ही न हो। जब व्यक्ति समाज का ही हक समझता है, अपना हक पहचानता ही नहीं, तो सचमुच फलत्याग पूर्ण हो जाता है। जब यह भान भी चला गया कि हमारा कोई हक है, तब फलत्याग की परिसमाप्ति हो जाती है। हम फलत्याग के शिखर पर पहुँच जाते हैं। हक तो हमारा है, लेकिन उसे हम समाज को समर्पण करते हैं, तो वह फलत्याग का आरम्भ है। लेकिन हमारा हक है ही नहीं, ऐसा जहाँ हम मानते हैं, वहाँ फलत्याग की समाप्ति ही होती है।

फलत्याग की परिसमाप्ति : 'कृष्णार्पणम्'

यही बात भूदान-यज्ञ पर भी लागू होती है। जब दाता कहता है कि भूमि पर मेरा हक तो है, लेकिन मैं अपना वह हक समाज को समर्पित करता हूँ; जितना हिस्सा चाहिए, उतना ले लीजिये—यह दान का आरम्भ हुआ। जब दाता कहेगा कि मेरा भूमि पर कोई हक ही नहीं है, भूमि सबकी है, समाज को जो व्यवस्था करनी हो, वह करे। उसमें हमें कुछ हिस्सा मिलेगा, तो हम लेंगे और उसी पर मजदूरी करेंगे—यह परिसमाप्ति हुई। इसीको 'कृष्णार्पणम्' कहते हैं। फलत्याग की परिसमाप्ति का अर्थ है, 'कृष्णार्पणम्।' कुछ

काम मैंने किया है, उसके फल का मुझे अधिकार है, लेकिन उस फलाधिकार को मैंने समाज को समर्पित कर दिया, यह फलत्याग का आरम्भ है। और मैंने क्या काम किया ? परमेश्वर ने जो कराया, वही किया, इसलिए मेरा कोई हक नहीं। जो कुछ है, वह ईश्वर का है, इसलिए ईश्वर को समर्पण !—ऐसी भावना फलत्याग की पराकाष्ठा है।

इस तरह भूदान यज्ञ का विचार बहुत ही सुन्दर आध्यात्मिक तत्त्व में प्रवेश करता है। इसीलिए मैंने कहा कि भूदान के विचारों से एस० आर० सी० का मामला यों ही हल हो जायगा। लेकिन आजकल लोगों की समझ-शक्ति इतनी अल्प हो गयी है कि उन्हें हमारी भाषा ही समझ में नहीं आती। खैर, जो भाषा हमारे पास है, उसीमें बोलना पड़ता है। हमारा विश्वास है कि भूदान-यज्ञ के मूल के विचार अगर लोग समझ जायें, तो हमारे कुल समाज का और दुनिया का भला-ही-भला है।

रातानुपल्ली (अनन्तपुर)
५-४-'५६

इतिहास-अध्ययन के दुष्परिणाम : ३२ :

विचार-स्वातंत्र्य के साथ विचार करने का ढंग आना चाहिए। विचार नाक, आँख, कान और मन से नहीं, बुद्धि से होता है। इसलिए हम मन और इन्द्रियों को वश कर बुद्धि की बात मानेंगे, तभी सोचने का ढंग हाथ में आयेगा। इसे 'विचारशास्त्र' कहते हैं। यह शास्त्र हरएक विद्यार्थी और नागरिक को सीखना चाहिए।

झूठे इतिहास के कारण पूर्वग्रह

आजकल जो तालीम दी जाती है, उसमें ऐसे तो कई दोष हैं। लेकिन एक बड़ा भारी दोष यह है कि उसमें लोगों के दिमाग में इतिहास के नाम पर कई चीजें ठूँसी जाती हैं। तालीम में सबसे बड़ा भारी खतरा इस इतिहास-शिक्षण ने खड़ा किया है। इतिहास जितने झूठे होते हैं, उतनी कल्पित कहानियाँ भी झूठी

नहीं होतीं, क्योंकि कहानी लिखनेवाला पहले ही लिख देता है कि सारी कहानी कल्पित है। इतनी तो सचाई उसमें होती ही है। किन्तु इतिहास लिखनेवाला दावा करता है कि 'मैंने सारा सत्य लिखा है और दूसरा झूठ लिखता है।' क्या आप समझते हैं कि इतिहास नाम की जो चीज पढ़ायी जाती है, वह भी कोई चीज है ? ये जो दो महायुद्ध हो गये, उनका इतिहास जर्मनी ने एक ढंग का लिखा होगा, तो रूस, इंग्लैण्ड ने दूसरे ढंग से। किसीने क्या गुनाह किया, क्या अन्याय किया, कौन-सी घटना कब घटी, यह सब झूठा लिखा जाता है। कुल महत्त्व के कागज जला दिये जाते हैं और फिर सबूत के लिए झूठे कागज तैयार किये जाते हैं।

अभी अखबार में एक मजेदार खबर पढ़ी कि रूस का इतिहास दुरुस्त करके फिर से लिखा जायगा। फिर से लिखेंगे, इसका मतलब क्या यह होता है कि स्टालिन मर गया, सो नहीं मरा, ऐसा लिखेंगे ? स्टालिन के जमाने में वह इतिहास का महागौरव बना। वह सब-का-सब झूठा समझकर फिर से लिखा जायगा। महात्मा गांधी एक क्रांतिविरोधी व्यक्ति है, ऐसा उनके इतिहास में लिखा जाता था। अब लिखा जायगा कि वे एक महापुरुष हो गये। ईश्वर की इतनी कृपा है कि 'वे हुए ही नहीं' ऐसा नहीं लिखते। यहाँ तक बदल वे न करेंगे, यही उनकी कृपा है।

सारांश, इतिहास अपनी-अपनी मर्जी से लिखे जाते हैं। केवल लोगों के दिमाग बनाने के लिए पुरानी घटनाओं का उपयोग कर वह लोगों के सामने रखा जाता है। यह सारा इतिहास बच्चों को सिखाया जायगा। इतिहास बनानेवाले मर गये और विद्यार्थियों के दिमाग कहानियों के बोझ के नीचे दबकर मर रहे हैं। आखिर मरे हुए राजाओं की नामावली रटने की जरूरत ही क्या है ? कौन-सी घटना कब घटी, यह सुनने की कोई जरूरत नहीं। कितने राजा हुए, कोई हिसाब नहीं है। इन पेड़ों पर जितनी पत्तियाँ है, उतने राजा हो गये। उनका इतिहास पढ़कर क्या करेंगे ? इतिहास के नाम से लोगों के दिमाग बनाये जाते हैं। परिणामस्वरूप कुल प्रजा पूर्वग्रह (Prejudice) से पीड़ित होती और पुरुषार्थ-हीन भी बनती है।

हम इतिहास बनानेवाले !

भूदान का काम जब शुरू हुआ, तब लोग पूछने लगे कि इस तरह माँग-माँगकर कब काम पूरा होगा ? और इससे मिलेगा भी क्या ? इतिहास में कभी ऐसा भी हुआ है ? तो हम कहते हैं कि इतिहास में बाबा भी कहाँ हुआ था ? बाबा ही नया जनमा है, इसलिए वह नया इतिहास बनाता है। तुम लोग इतिहास बनानेवाले हो या पुराने इतिहास पढ़नेवाले ? कर्तृत्वशून्य बनकर पुराना इतिहास पढ़ना और अनुमान निकालना हमारा धंधा नहीं। इतिहास में जो नहीं हुआ, वह कभी नहीं हो सकता, ऐसा क्यों कहते हैं ? रामचन्द्रजी ने बंसी नहीं बजायी, इसलिए क्या कृष्ण ने भी नहीं बजायी ? रामचन्द्रजी ने जो किया, वही कृष्ण को भी करना था, तो कृष्ण का जन्म ही क्यों होता ? पुराने लोगों ने जो किया, वही करना था, तो हम लोगों ने जन्म क्यों पाया ? फिर परमेश्वर ने हमें जन्म दिया, तो हमने कौन-सा पुरुषार्थ किया ? इसलिए पुराने इतिहास का कोई भी दबाव हमारे दिमाग पर न पड़ना चाहिए। एक तो ये सारे इतिहास एकपक्षीय (Prejudiced) होते हैं। उसमें कह नहीं सकते कि सत्यता कितनी है। सत्यता है, तो दिमाग पर दबाव पड़ने का कोई कारण नहीं, क्योंकि हमारा जन्म नये सत्य की सिद्धि के लिए, नये प्रयोग के लिए है। इसलिए विद्यार्थी और नागरिकों को इतिहास का दबाव दिमाग पर से हटा देना चाहिए।

इतिहास के अभिनिवेश से ही झगड़े

बल्लारी कर्नाटक में है या आन्ध्र में ? यह जानना हो, तो इतिहास क्या कहेगा ? कुल आन्ध्रवासी इतिहास का निरीक्षण कर चुके हैं कि बल्लारी आन्ध्र में है ! कुल कन्नड़ निरीक्षण कर चुके हैं कि वह कर्नाटक में है। अब क्या इतिहास को चाहते हो ? भूगोल क्या कहता है ? बल्लारी तो जिस जगह है, उसी जगह है। अब इतिहास से क्या सिद्ध होगा ? हरएक प्रांतवाले अपने-अपने प्रांत की हद दूसरे प्रांत में घुसाते हैं। कर्नाटकवाले कहेंगे कि हमारा प्रांत 'गोदा' से लेकर 'कावेरी' तक है और थोड़ा-सा तमिल, महाराष्ट्र और आंध्र का भी हिस्सा आना चाहिए, तभी सन्तोष होगा। महाराष्ट्रवाले कहेंगे कि हमारा प्रान्त 'नर्मदा'

से 'तुंगभद्रा' तक है। उसमें थोड़ा-सा गुजरात का हिन्दी भाषा का और कर्नाटक का हिस्सा आना चाहिए। जैसे किसान अपनी हद एक हाथ दूसरे के खेत में बढ़ाकर उसे बढ़ाना चाहता है। कैसा हास्यास्पद प्रयत्न है! यहाँ बच्चा-बच्चा हँस रहा है, पर आपकी असेम्बली में जोरों के साथ ये दावे कहे जाते हैं। जानते हैं कि ये सब निकम्मी बातें हैं, लेकिन एक भूत का आवेश जो हो गया है। इसका कारण यह इतिहास ही है। ये पुराने इतिहास जिस ढंग से लिखे जाते हैं, उसी ढंग से पढ़ते हैं, तो अपना-अपना अभिमान बनता है। काश्मीर के प्रश्न में पाकिस्तान के बहुत-से अखबार लिखते हैं कि हिन्दुस्तान की ओर से बड़ा भारी जुल्म हो रहा है, आक्रमण हो रहा है और पण्डित नेहरू जो बोल रहे हैं, वह सरासर झूठ है। हिन्दुस्तान के अखबारवाले लिखते हैं कि पाकिस्तान का जुल्म और आक्रमण है। दोनों तरफ से झूठ ही झूठ चल रहा है, क्या किया जाय? फैसला किस तरह हो? सारांश, इतिहास का अभिनिवेश इसी तरह बनता है। इसमें सत्यनिष्ठा टिक नहीं सकती।

जब तक इतिहास का यह आग्रह और अभिनिवेश टलता नहीं, तब तक आप लोग प्रगति न कर सकेंगे। एक सादी-सी बात है। आपकी तेलुगु लिपि और कन्नड़ लिपि में थोड़ा-सा फर्क है। दोनों में जरा-सा परिवर्तन कर दें, तो दोनों की एक लिपि बना सकते हैं। एक कमेटी की जाय और तय करें, तो यह हो सकता है। आज लोग ये दोनों प्रान्त एक बनाने की बातें करते हैं, पर पहले जरा हृदय तो एक बनाओ। फिर राज्य बड़ा बनाना चाहो, तो बना सकते हो। किन्तु तेलुगु-वाले कहेंगे कि तेलुगु का 'तलकट्टु' ऊपर चढ़ना चाहिए और कन्नड़वाले कहेंगे कि उतना ऊँचा अच्छा नहीं लगता, वह नीचे रहना चाहिए। फिर पुरानी पोथियाँ लाकर देखेंगे कि तलकट्टु कितना ऊँचा है। फिर इतिहास का अभिमान बीच में आयेगा, तो कुछ काम न बनेगा। इसके लिए दोनों को कुछ छोड़ना पड़ेगा।

इतिहास का सार ग्रहण करें

पुराना इतिहास देखकर काम करना चाहेंगे, तो परिणाम ऐसा ही होगा।

इसलिए सचमुच प्रगति करना चाहते हों, तो इस युग में पुराने इतिहास का सार लेकर असार छोड़ देना चाहिए। इतिहास का बिलकुल उपयोग नहीं, ऐसा हम नहीं कहते। भगवान् व्यासजी ने एक सुन्दर इतिहास 'महाभारत' लिखा है। मनुष्य के विविध स्वभाव किस प्रकार हो सकते हैं, इस पर अपना दर्शन लिखा है। इस प्रकार के इतिहास से लाभ हो सकता है। लेकिन इतिहास का भूत सिर पर दबाव डालेगा, तो समाज की प्रगति कभी न होगी। यह ठीक है कि पुराने लोगों ने जो पराक्रम किये, उससे ताकत आती है। लेकिन पुराने लोगों ने अच्छे काम किये, वैसे बुरे काम भी किये। तो, उनकी कुल-की-कुल चीजों का भार दिमाग पर क्यों डाला जाय? उनकी अच्छी चीजें लेकर बुरी चीजें छोड़नी चाहिए। यह विवेकशक्ति क्षीण हो जायगी, अगर हम पुराने इतिहास से चिपके बैठेंगे।

इतिहास में बुराइयों का रेकॉर्ड

विद्यार्थियों से कहा जाता है कि इतिहास में Read between the lines. बीच का पढ़ा करो और छपी हुई पंक्तियों lines को छोड़ दो। बीच में जो कोरा भाग है, वही पढ़ो। एक भाई ने एक सुन्दर काव्यग्रन्थ हमें भेजा। शुरू में बीच-बीच में थोड़ा लिखा था और चारों ओर थोड़ी-थोड़ी जगह छोड़ दी थी। वह सुन्दर कविता थी, लेकिन कविता के आसपास जो कोरा हिस्सा था, उसमें ज्यादा काव्य था। इसी तरह जो इतिहास लिखा जायगा, उससे ज्यादा महत्त्व का इतिहास वह होगा, जो न लिखा जायगा। कोई माता अपने बच्चे को प्रेम से आलिंगन देती और अच्छी तरह से खिलाती-पिलाती है, तो उसका कोई टेलिग्राम अखबार-वालों को न भेजा जायगा। किन्तु यहाँ अगर किसीका खून हुआ या चोरी हुई, तो फौरन टेलिग्राम भेजा जायगा और इतिहास में भी वह लिखा जायगा। मानव अपनी मानवता का इतिहास लिखता ही नहीं है। मानवता पर जितना प्रहार होता है, उतना ही इतिहास में लिखा जाता है। इसलिए मानव स्वभाव का ज्ञान इतिहास से हो नहीं सकता। मानव स्वभावविरोधी जितनी घटनाएँ होती हैं, सबका उसमें 'रेकार्ड' (Record) होता है। फिर जो इतिहास निर्माण

आज भूदान-यात्रा को पाँच साल पूरे हुए हैं। हम सतत पैदल घूमकर लोगों को एक विचार समझा रहे हैं। ढाई हजार साल पहले अशोक के जमाने में, भारत एक छत्रच्छाया में था। उसके बाद आज हमें यह पहला ही अवसर मिल रहा है, जब समूचे देश में एक राज्य चल रहा है। विज्ञान के इस जमाने में दुनिया में कहीं भी पुण्य या पाप-कार्य हो, उसका असर पूरी दुनिया पर होता है। इसलिए अगर हम पराक्रमी और पुरुषार्थी होंगे, तो अपने देश में पुण्य-योजना कर उसका असर दुनिया पर भी डाल सकते हैं। नहीं तो दुनिया की हवा का असर हम पर हो जायगा। भूदान-यज्ञ में अभी तक कुछ बहुत ज्यादा पराक्रम नहीं हुआ है, फिर भी दुनिया के लोग इसे देखने के लिए आते और पूछते हैं कि हम इसमें क्या मदद दे सकते हैं? हम उनसे कहते हैं कि आप इस विचार को समझकर इसे अपने देश में फैलायें।

भूदान की बुनियाद कृष्णार्पण

भूदान-यज्ञ की बुनियाद में यह विचार है कि सारे समाज को अपना सर्वस्व समर्पण करना व्यक्ति का कर्तव्य है। इसीको हमारे पुराने लोग 'कृष्णार्पण' कहते हैं। याने अपनी कुल शक्ति, सम्पत्ति, बुद्धि और ताकत समाज की सेवा में समर्पित या कृष्णार्पण करें और भगवान् कृष्ण की कृपा से समाज से जो वापस मिले, उसे प्रसाद के तौर पर ग्रहण करें। आप सब परिवार में बँटे हुए हैं, तो उसे तोड़ने की कोई जरूरत नहीं। हमें उसी परिवार को व्यापक बनाना है। सारे गाँव को हम परिवार समझें और अपने परिवार की सेवा गाँव को समर्पित कर अपनी मालकियत छोड़ दें। हम कहें कि 'न मम' यह मेरा नहीं, भगवान् का है। यह समाज का है, यह सृष्टि का है। मैं उसका सेवक मात्र हूँ। चंद दिनों के लिए मैं इस दुनिया में आया हूँ और सेवा करना ही मेरे आने का उद्देश्य है। यह सेवा समर्पित कर जब भगवान् का बुलावा आयेगा, तब चला जाऊँगा।

इसीको 'कृष्णार्पण' कहते हैं। कृष्णार्पण में सब-का-सब देना होता है यानी मालकियत छोड़नी होती है। यही बात भूदान-यज्ञ के मूल में है। हम मालिक नहीं हैं, मालिक तो परमेश्वर है। परमेश्वर की तरफ से समाज मालिक है और हम सेवक हैं—इस तरह जब मनुष्य सोचेगा, तभी मनुष्य-मनुष्य के बीच का झगड़ा मिट जायगा। मनुष्य अपनी अलग-अलग मालकियत रखते हैं, इसीलिए झगड़े होते हैं।

दुनिया की कुल सम्पत्ति सबकी

सिर्फ मनुष्य ही अकेला व्यक्तिगत मालकियत रखता है, सो बात नहीं; समाज भी मालकियत रखता है। एक समाज दूसरे समाज के साथ झगड़ा करता है। देश भी अपनी मालकियत रखता है और एक देश दूसरे देश के साथ झगड़ता है। किन्तु हमें समझना चाहिए कि कुल दुनिया में जितनी जमीन है, वह सब सारी दुनिया की है। जो लोग जहाँ रहते हैं, उनको सेवा करने मात्र का अधिकार है, मालकियत का कोई अधिकार नहीं। दुनिया के किसी भी देश में जो भी जमीन पड़ी है, वह सब दुनिया की है। जहाँ जो हवा है, वह भी सारी दुनिया की है। पर लोग इसे पहचानते नहीं। इसका भयंकर परिणाम आज के 'ऐटम' और 'हाइड्रोजन' के प्रयोग हैं, जिनका लड़ाई में उपयोग होगा। वैज्ञानिक लोग कहते हैं कि इन प्रयोगों के परिणामस्वरूप एक हजार मील की हवा खराब होती है। वास्तव में इस तरह दुनिया की हवा बिगाड़ने का किसीको हक ही नहीं, पर इन सब बातों का भान अब किसे है ? सब अपने-अपने को बड़े मालिक मानते हैं।

किन्तु यह सारा विचार गलत है। जो लोग जहाँ रहते हैं, वहाँ की जमीन को सेवा करने का उन्हें हक है। उन्हें वहाँ से हटाकर कोई सेवा करना चाहे, तो वह नहीं हो सकता। पर यदि दुनिया के किसी देश में जमीन कम है और मनुष्य ज्यादा हैं, तो वहाँ के लोगों को ऐसी जगह पर जाने का हक है, जहाँ जमीन ज्यादा हो। किन्तु आज देशों की मालकियत बनी हुई है। एक देश में से दूसरे देश में जाने नहीं देते। उसके लिए परवाना लेना पड़ता है। आज एक देश के विरुद्ध दूसरा देश खड़ा है। हमें यह सब मिटाना है

और हमें जरा भी सन्देह नहीं कि इस विज्ञान-युग में जब तक मालकियत कायम रहेगी, तब तक कभी भी शान्ति नहीं होगी। मान लीजिये, किसी देश में पेट्रोल है। अब यह नहीं हो सकता कि उस पेट्रोल की मालकियत उसी देश की रहे और सारी दुनिया टापती रहे। किसी देश में रबर बहुत ज्यादा है, तो यह नहीं हो सकता कि रबर पर उसी देश की मालकियत मानी जाय और सारी दुनिया उससे वंचित रहे। दुनिया की कुल संपत्ति कुल दुनिया की है, कुल प्राणियों के लिए है।

भारत के सामने ईश्वरीय कार्य का अवसर

यह तो बहुत बुलन्द विचार हो गया और यह जरा आगे की बात है। किन्तु फिलहाल कम-से-कम हमारे देशवासियों को यह समझना चाहिए कि हम दूसरे समाज का द्रोह न करें। अपने समाज में व्यक्ति से व्यक्ति का झगड़ा न हो। सब व्यक्तियों की सेवा करना समाज का काम है और समाज की सेवा करना व्यक्ति का काम। हरएक व्यक्ति को जीवन का जो अधिकार है, वह समाज कबूल करे और हरएक व्यक्ति अपने जीवन का कुल कार्य समाज को अर्पित करे। सारांश, पहला विचार है, दूसरे समाज का द्रोह न हो और दूसरा विचार है, एक ही समाज में व्यक्ति से व्यक्ति का विरोध न हो। यह भूदान-यज्ञ का मूलभूत विचार है, जो बड़ा ही क्रान्तिकारी है। वैसे तो इसे पुराना विचार कहा जा सकता है, क्योंकि ऋषि त्रिकालदर्शी होते हैं और उनके वचनों में यह बात मिलती है कि कुल दुनिया की कुल संपत्ति सबकी है। इसलिए यह नया विचार नहीं, फिर भी सामाजिक तौर पर इसका अभी तक उपयोग नहीं हुआ। इसे अमल करने का अब अवसर आया है, क्योंकि यह विज्ञान का जमाना है। विज्ञान के जमाने में वस्तु व्यापक हो सकती है। दूसरी बात यह कि हिन्दुस्तान को एक विशेष मौका मिला है, जो दो हजार वर्षों में नहीं मिला था। इसलिए हिन्दुस्तान के नागरिकों को इस समय बड़ा ही उत्साह मालूम होना चाहिए कि हम भी कुछ हैं। हम लोगों में भी कुछ पुरुषार्थ है। कोई नवीन कार्य हमारे सामने उपस्थित है। हम केवल खाने-पीने और मरने के लिए ही नहीं आये हैं। एक ईश्वरीय कार्य हमारे सामने है। जैसे रामचन्द्र के जमाने में

एक परमेश्वरीय कार्य हुआ, इसलिए सारे बंदर देवता ही थे, वैसे ही इस जमाने में भी एक अवतारी कार्य हमारे सामने उपस्थित है। यह सर्वोदय-विचार एक अवतार है और हम सब उसकी सिद्धि के लिए बंदर बने हैं। इस प्रकार की हिम्मत, वृत्ति और स्फूर्ति हममें होनी चाहिए।

भारत-माता से भूमि-माता की ओर

हमें कहने में खुशी होती है कि जब हिन्दुस्तान के लोगों को यह बात समझायी जाती है, तो वे समझ जाते हैं। उन्हें उत्साह मालूम होता है। किन्तु कुछ गलतियाँ हमारे देश में आज भी हैं। एक तो यह कि बीच के जमाने में हिन्दुस्तान में जो आपस-आपस के झगड़े चलते थे और जो अनेक प्रांत बने थे, उनका असर आज तक हम पर है। अपने-अपने प्रान्त में राज्य की कहानी इतिहास में पढ़ायी जाती है और लोग अपने को सीमित मानते हैं। अभी भाषानुसार प्रांत-रचना की बात चली, तो यही सब देखने को मिला। यह ठीक ही है कि एक भाषा के लोग एक प्रान्त में एकत्र रहते हैं, तो राज्य चलाना आसान होता है, क्योंकि लोगों की भाषा में कारोबार चलता है, जिससे लोगों को स्वराज्य का अनुभव होता है। इस दृष्टि से यह अच्छा काम है। पर उसमें अभिमान का कितना प्रदर्शन हुआ! परस्पर द्वेष कितना प्रकट हुआ और हिंसा कितनी चली, जिनकी कोई जरूरत न थी। हम समझते हैं कि ये छोटी-छोटी हिंसाएँ भारत के लिए अत्यन्त कलंक हैं। इनसे हिन्दुस्तान को जो काम करना है, उसके लिए हम नालायक सिद्ध होंगे, अगर ऐसी छोटी-छोटी वृत्तियाँ हमारे मन में रहीं। हममें कम-से-कम हम भारतीय हैं, ऐसी भावना रहनी चाहिए। वास्तव में तो हम मानव हैं, इतना ही भाव होना चाहिए, पर कम-से-कम इतना चल जायगा कि हम भारतीय हैं। लेकिन इससे कम कोई चीज न चलेगी।

मैं आपसे कहना चाहता हूँ कि 'मैं भारतीय हूँ' यह बात भी बहुत दिनों तक न चलेगी। क्योंकि इस वृत्ति में हिन्दुस्तान के छोटे-छोटे अभिमान मिट जायेंगे। कितने आश्चर्य की बात है कि जब हमारे देश में इधर से उधर जाने के लिए न रेल थी और न कोई दूसरा साधन, उस समय भी पूरे भारत का

गौरव गाया जाता था कि "दुर्लभम् भारते जन्म।" लेकिन अब तो घण्टे में इधर से उधर चले जाते हैं। इतने निकट आ जाने के बाद भी हम 'भारत-माता' को भूल गये और 'आंध्र-माता', 'कन्नड़-माता' को ही याद करते हैं! आज हम भारत-माता को इसलिए कबूल करते हैं कि इससे छोटी-छोटी माताएँ लुप्त हो जायँगी। पर हमें तो आखिर में भारत-माता भी कबूल नहीं। हमें तो "माता भूमिः पुत्रोऽहम् पृथिव्याः" यह भूमि हमारी माता है, यह वैदिक ध्वनि ही काम देगी। फिर भी हमें अपना काम ऐसे ढंग से हाथ में लेना चाहिए कि दिल संकुचित न बनें।

हिंसा से बचाना भारत का काम

भारत के सामने यह काम है कि वह सारी दुनिया को हिंसा से बचाये। *इसी दृष्टि से सारी दुनिया भारत की ओर देखती है। भारत को स्वातंत्र्य मिला,* उसमें भी अहिंसा का प्रयोग हुआ और भारत के समग्र इतिहास में उसने कभी किसी देश पर हमला नहीं किया है। यही कारण है कि सारी दुनिया भारत की *ओर आशा की दृष्टि से देखती है। बहनें, लड़के और लड़कियों को यह नहीं* समझना चाहिए कि वे एक कुटुम्ब के हैं। उनको यही समझना चाहिए कि हम 'विश्व-नागरिक' हैं। सारे विश्व की सेवा के लिए हमें अपना सर्वस्व देना है। यही कृष्णार्पण की भावना है और यही है भूदान-यज्ञ का सार!

प्रोडेट्टूर (कडप्पा)
१८-४-'५६

जातिभेद के शव की सादर दहन-विधि

आज देश में जाति-भेदों के कारण समाज बन ही नहीं पा रहा है। भारत की यह संस्कृति है कि मानव-मानव के बीच कोई उच्च-नीच भाव न हो। सारा समाज एक परिवार के समान बने। सबका हृदय एक हो। इसके लिए मिसाल विश्वरूप-दर्शन की दी गयी है, जो भगवान् ने गीता में दी है। विश्वरूप-दर्शन के वर्णन में विश्वात्मा के अनेक हाथ, नाक, मुँह, सिर आदि बताये गये हैं, पर हृदय एक ही है। अगर हृदय भी अनेक दिखाते, तो विश्वरूप ही टूट जाता। एक जमाना था, जब जातिभेद होते हुए भी हृदय की एकता बनी रहती थी। उन दिनों जाति-भेद का कुछ उपयोग भी हुआ होगा। प्राचीन वर्ण-व्यवस्था से 'स्पर्धारहितता' का गुण हम ले सकते हैं, पर जाति-भेद, जो पग-पग पर हमारे विकास में बाधा डालते हैं, खतम होने ही चाहिए। आज ग्राम परिवार बनने में जाति-भेद रुकावट डाल रहा है और उसे बनाना, इस विज्ञान-युग के लिए अत्यन्त आवश्यक है।

आज का जातिभेद बुद्धिहीन, प्राणहीन

हिन्दुस्तान में मांसाहार-परित्याग का एक महान् प्रयोग हुआ है। उस प्रयोग की मर्यादा हम छोड़ना नहीं चाहते। लेकिन फलाने के हाथ का खाना, फलाने के हाथ का न खाना, यह सब गलत है। स्वच्छ, निर्मल, सात्त्विक, निरामिष आहार किसीके भी हाथ से खाने में कोई हर्ज नहीं। ऐसे कई हरिजन हैं, जिन्होंने मांसाहार छोड़ दिया है। इससे उल्टे ऐसे कई उच्चवर्णीय हिन्दू हैं, जो मांसाहार करते हैं। फिर भी वे हरिजनों को नीच मानते हैं। इस तरह आज जातिभेद बुद्धिहीन, प्राणहीन बन गया है। जब उसका आरम्भ हुआ, तो उसमें बुद्धि रही होगी, पर आज वह निकल चुकी है। इसलिए यह जातिभेद का शव बन गया है। अपने पिताजी का शव है, इसलिए कोई उसे रख नहीं लेता। उसे आदरपूर्वक जलाना चाहिए, तिरस्कारपूर्वक नहीं।

हम जानते हैं कि एक जमाने में उसने उपकार किया है। लेकिन आज उसमें से प्राण निकल गया है, इसलिए हम उसे रख नहीं सकते, उसे जलाना ही चाहिए। परन्तु वह हमारे पिताजी का शव है, इसलिए अत्यन्त आदरपूर्वक उसकी दहन-विधि करनी चाहिए।

कुडूर (कडप्पा)
१-५-'५६

सत्याग्रह: करुणा, सत्य और तप : ३५ :

हम जिस काम को करने जा रहे हैं और जो पाँच साल से शुरू हुआ है, वह एक विकट चढ़ाव है। जैसे हिमालय पर चढ़ने के लिए कोशिश करनी पड़ती है, वैसे ही यह काम भी यत्न की पराकाष्ठा करने लायक है। हमें भूदान का यह काम सहज ही सूझ पड़ा, परमेश्वर ने ही उसे उपस्थित किया। इस बारे में दान के जरिये भू-समस्या हल करने का हमने सोचा नहीं था। हम यह जरूर चाहते थे कि जमीन का बँटवारा हो और उस बारे में हमारे विचार सालों से बने थे। किन्तु उसके हल के लिए हम तेलंगाना में नहीं पहुँचे थे। हम वहाँ अहिंसा की शक्ति की तलाश में गये थे। यह हमारे जीवन का ध्येय है।

हिंसा के विकास की परिसीमा

मनुष्य-समाज ने साधारण धनुष-बाण और बन्दूक से लेकर ऐटम, हाइड्रोजन बम तक शक्ति का विकास किया है। अनेक वैज्ञानिकों की बुद्धि उसमें खर्च हुई है, अनेक कूटनीतिज्ञों ने अपनी ताकत उसमें लगायी है, अनेक वीर पुरुषों ने उस काम में अपनी जान दे दी है। इस तरह हिंसा की शक्ति हजारों सालों से विकसित की गयी और उसमें लाखों लोगों ने अपनी बुद्धि खर्च की है। किन्तु वह एक मूढ़ शक्ति थी। जहाँ वह बहुत विकसित हो गयी और करीब-करीब पूर्ण रूप में पहुँच गयी, वहीं उसका राक्षसी, आसुरी रूप समाज के सामने स्पष्ट हुआ। इसलिए अब दुनिया को उस शक्ति का इतना आकर्षण नहीं है। अब अगर हिंसा का आकर्षण नहीं है और सारे

मसले वैसे के वैसे मोजूद हैं, तो अहिंसा की शक्ति से उन्हें हल करने की सूरत निकलनी चाहिए। उसका केवल आरम्भमात्र हुआ है। इसका मतलब यह नहीं कि सारे इतिहास में अहिंसा की शक्ति की तरफ किसीका ध्यान नहीं गया था या उसके विकास के लिए कुछ सोचा नहीं गया। फिर भी अहिंसा की शक्ति का विकास करने के प्रयत्न व्यक्तिगत तौर पर हुए और महापुरुषों के जरिये हुए। यही कारण है कि समाज में अहिंसा की प्रतिष्ठा है, उसका आदर बना हुआ है। किन्तु उसके जरिये सामाजिक प्रश्न हल हो सकते हैं, ऐसा विश्वास पैदा करने लायक कोई प्रयोग नहीं हुआ।

आज चुनाव की आजादी

अब हमें उस शक्ति के विकास का चिंतन-मनन करना होगा और उसकी तलाश करनी होगी। गांधीजी ने उसका आरम्भ किया और उसमें एक प्रकाश दिया। उससे सामूहिक अहिंसा की राह खुल गयी। पर वह तो केवल आरम्भमात्र था। आज तो उसका बहुत विकास करना बाकी है ही, लेकिन संभव है, वह सैकड़ों वर्षों तक बाकी रहेगा। याने इस शक्ति के विकास की हमें खोज करनी होगी। स्वराज्य-प्राप्ति के पहले हमारे पास हिंसा की शक्ति भी नहीं थी।

एक शख्स अहिंसा का नाम लेकर आया, तो लोगों ने श्रद्धा रख ली और उसके पीछे जाने की कोशिश की। तो उस अहिंसा और प्रेम की उस शक्ति पर विश्वास होने के कारण लोगों ने ऐसा किया, सो नहीं। उनमें हिंसा की शक्ति ही न थी, इसलिए लाचार होकर उन्हें यह करना पड़ा। फिर महापुरुषों पर तो हमारे देश में श्रद्धा है ही। इस तरह कुछ लाचारी, तो कुछ महापुरुष पर श्रद्धा, दोनों मिलाकर हमने गांधीजी के पीछे जाने का एक नाटक किया। किन्तु अब स्वराज्य-प्राप्ति के बाद ऐसा नाटक न चलेगा। आज तो हमारे हाथ में यह चुनने की ताकत आ गयी है कि देश को किस तरफ ले जाना है। अगर हम चाहते हैं कि हिंसा के रास्ते पर देश को ले जाना है, तो वैसा भी कर सकते हैं। स्वराज्य का अर्थ ही यह है कि हम अपनी इच्छा के अनुसार देश को बना सकें। अगर हम अहिंसा के जरिये देश को आगे बढ़ाने का तय करते हैं, तो यह भी बुद्धिपूर्वक कर सकते हैं। इसीका नाम स्वराज्य है।

जनता अभी तक अहिंसा के लिए तैयार नहीं

पाकिस्तान ने हिंसा-शक्ति बढ़ाने का तय किया है। अब हम भी वैसा तय करें, तो फिर से हिंसा के प्रयोग चलेंगे। उनका अन्त न होगा और दुनिया आगे न बढ़ेगी। याने आज तक बहुत-से देश जिस तरह के भ्रम और चक्कर में पड़े थे और आज भी पड़े हैं, उसमें हम भी पड़ेंगे और उससे छुटकारा नहीं होगा। किन्तु हिन्दुस्तान की खुशनसीबी है कि यहाँ के नेताओं का अहिंसा-शक्ति पर विश्वास है, यद्यपि उन्होंने हिंसा-शक्ति छोड़ी नहीं और न वैसी मानसिक तैयारी ही उनकी हुई है। इसमें हमारे नेताओं की व्यक्तिगत ताकत या श्रद्धा का सवाल नहीं है। अगर देश में अहिंसा पर पूरी श्रद्धा बैठती है और उसकी ताकत पैदा होती है, तो वे भी उसके लिए तैयार हो जायँगे और उसको पसन्द करेंगे। याने जब हम कहते हैं कि वे हिंसा-शक्ति से पूर्ण संन्यास लेने की तैयारी नहीं कर सकते, तो उससे यही सिद्ध होता है कि हमारा देश और हमारी जनता पूरी तैयारी नहीं कर सकती। फिर भी हमारे नेता और हममें से बहुत से सोचनेवाले जानते हैं कि हिंसा-शक्ति से हिन्दुस्तान आगे न बढ़ सकेगा। इससे उसे किसी-न-किसी देश का अनुयायी बनना पड़ेगा और हिंसक गुरु का शिष्य बनना पड़ेगा। फलतः हिन्दुस्तान अपनी उन्नति न कर पायेगा।

सारांश, आज हमारी सरकार और देश की जनता इस हालत में हैं कि इधर अहिंसा पर विश्वास है और उधर हिंसा की ताकत छोड़ नहीं सकते। इसी हालत में दुनिया के कुल देश भी हैं। किन्तु हमारे देश की विशेषता यही है कि यहाँ हिंसा-शक्ति विकसित करने का कोई मौका नहीं है। दूसरी विशेषता यह है कि यहाँ हमारी सभ्यता और गांधीजी के कारण अहिंसा-शक्ति पर कुछ अधिक विश्वास है। इसलिए अगर सामाजिक समस्याएँ अहिंसा-शक्ति से हल करने की कोई युक्ति मिल जाती है, तो हिन्दुस्तान के लिए वह अत्यन्त आवश्यक है। दुनिया को भी इससे लाभ होगा। हमारे मन में यही बात थी कि गांधीजी की मृत्यु के बाद इस अहिंसा की शोध में हम अपनी बुद्धि लगायें। यह केवल बुद्धि का ही सवाल नहीं, इसमें अपना जीवन भी अर्पण करना होगा, हृदय की वृत्ति तन्मय करनी होगी।

सत्याग्रह : करुणा, सत्य और तप

इस अहिंसा-शक्ति की तलाश में इसी दृष्टि से घूमते-घूमते बीच में भूदान-यज्ञ उपस्थित हुआ, तो हमें बड़ी खुशी हुई। हमें लगा कि इस मसले का आधार लेकर अहिंसा-शक्ति विकसित करने का हमें मौका मिला। मैं इतना विस्तृत बयान इसलिए दे रहा हूँ कि यहाँ के कार्यकर्ताओं ने पूछा था कि सरकार इसके लिए कुछ करे, तो आपका क्या कहना है ? स्पष्ट है कि जमीन का मसला कत्ल, कानून और करुणा से हल हो सकता है। ये तीनों रास्ते हम आरम्भ से लोगों के सामने रखते और कहते आये हैं कि भूदान-यज्ञ करुणा के जरिये भूमि की समस्या हल करने की कोशिश है। कुछ लोग कहते हैं कि "इन तीनों के अलावा चौथा 'सत्याग्रह' का भी रास्ता है।" इस पर हमारा दावा है कि सत्याग्रह करुणा के अन्तर्गत है और दान के लिए हमारी जो यात्रा चल रही है, वह भी सत्याग्रह का एक रूप है। इसमें करुणा, सत्य और तप भी हैं। इसके साथ और भी दूसरे प्रकार का तप करना पड़े, तो उसमें भी करुणा होनी चाहिए और होगी। जिसमें सत्य, करुणा और तप होता है, उसीका नाम 'सत्याग्रह' है। भूदान-यज्ञ का वही एक मार्ग है। हमारा चिन्तन उस पर रोज चलता है।

कत्ल और कानून के असफल मार्ग

तात्पर्य, भूमि-समस्या हल करने के तीन मार्ग हैं, इसमें कोई शक नहीं। इनमें कत्ल के मार्ग का अनुसरण दुनिया के दूसरे देशों ने किया है, लेकिन हम उसे नहीं चाहते। उसका कुछ आरम्भ अपने तेलंगाना में भी हुआ था, पर वह रुक गया। इसकी हमको बड़ी खुशी है। कानून का भी एक मार्ग है और हम वह करने के लिए सरकार को रोकते नहीं। बल्कि हमारे काम से कानून को बल ही मिलता है। किन्तु इसमें कई बाधाएँ हैं। आध्यात्मिक दृष्टि से देखा जाय, तो उससे हमारा मुख्य सवाल हल नहीं होता, क्योंकि इसमें जनता की आन्तरिक शक्ति पैदा नहीं होती। उसमें अपने भाई के लिए करुणा पैदा नहीं होती, बल्कि कुछ कटुता ही पैदा होती है; क्योंकि कानून में जोर है। उसके बदले करुणा का कुल वातावरण तैयार करने के और बहुत सारा काम जनता के जरिये

हो जाने के बाद अगर कानून की मुहर लगती है, तो वह कानून करुणा के अन्तर्गत आ जाता है। नहीं तो कानून के मार्ग में कुछ दोष जरूर रह जाते हैं।

इसके अलावा हम देखते हैं कि पाँच साल से भूदान-आन्दोलन चला है, फिर भी कानून से कुछ अधिक न हो पाया। इतना वातावरण बनने और सबका ध्यान खींचने के बाद भी कानून के जरिये यह समस्या हल नहीं हो रही है। इसका कारण यही है कि आज सरकार जिन लोगों की बनी है, उनके हाथ में भी जमीन है। उन्हें अपनी जमीन त्याग देने की एकदम प्रेरणा नहीं हो पाती। फलतः सरकारी ढंग से धीरे-धीरे कुछ 'सीलिंग' बनाने की बात चलती है और 'सीलिंग' का कानून बनते-बनते लोग अपनी जमीन भाइयों में बाँट देते हैं। इतना ही नहीं, वे बाँट भी चुके हैं। इन पाँच सालों में उन्हें काफी समय मिल गया है। फिर 'सीलिंग' बनेगा, तो बड़ा ही बनेगा। इसलिए उस कानून का कुछ अधिक उपयोग न होगा। वह एक प्रकार का ढोंग हो जायगा। अभी बिहार में ऐसा ही नाटक हो रहा है, बावजूद इसके कि वहाँ भूदान यज्ञ से खूब वातावरण तैयार हुआ है। वहाँ 'सीलिंग' के कानून से गरीबों को कोई ज्यादा जमीन मिलेगी, सो बात नहीं। सारांश, कानून के इस दोष से जनता की आंतरिक शक्ति नहीं बनेगी। उसमें बाधा ही आयेगी। इसलिए हम कानून के बारे में बहुत ज्यादा उत्साह नहीं रखते। हम तो भूदान, करुणा, जन-शक्ति और हृदय-परिवर्तन के जरिये ही यह मसला हल करने जा रहे हैं। भूमि का मसला हल करने के लिए यही रास्ता है।

इसके अलावा अहिंसा की शक्ति को विकसित करने की सबसे बड़ी आवश्यकता है, जो इसीसे सधेगी। आप लोग देखते हैं कि इन पाँच सालों में बहुत ही कम, चन्द लोगों ने ही इसमें कुछ काम किया है। इतनी अल्प ताकत लगाने पर भी ५ लाख लोगों से ४४ लाख एकड़ जमीन दान में मिली। अवश्य ही पाँच करोड़ के हिसाब से यह बहुत कम काम हुआ, फिर भी दुनिया के दूसरे लोगों का ध्यान इस ओर खिंचा और बाहर के लोग यहाँ आकर यात्रा में दो-दो, तीन-तीन दिन रहते हैं। भूमिहीनों को भूमि मिलती है, यही देखने के लिए वे नहीं आते। जमीन तो कानून के जरिये भी मिल सकती है। किन्तु भू-समस्या

के निमित्त से अहिंसा की शक्ति विकसित करने का जो यत्न हो रहा है, अहिंसा के जरिये समाज के मसले हल करने की जो तरकीब ढूँढ़ी जा रही है, उसीके लिए सारी दुनिया का ध्यान इस ओर आकृष्ट हुआ है। भूमि का इतना बड़ा सवाल अगर अहिंसा की शक्ति से हल हो जायगा, तो निश्चय ही एक कुंजी हाथ में आ जायगी और उससे सारी दुनिया को हिंसा से मुक्ति मिलेगी। आज दुनिया हिंसा-मुक्ति का मार्ग ढूँढ़ रही है।

खादी करुणा से विकसित हो

जो दृष्टि भूदान यज्ञ में है, वही दृष्टि खादी और दूसरे उद्योगों में है। जबर्दस्ती से खादी लादने पर हम नहीं समझते कि उससे अहिंसा विकसित होने में कुछ मदद मिलेगी। यह ठीक है कि कानून की इस काम में जरूर मदद मिल सकती है और आर्थिक और ग्रामोद्योग-योजना का काम बन सकता है। लेकिन वह भी जनता से ही होना चाहिए। याने लोगों में ही खादी की भावना निर्माण होनी चाहिए। उसके अनुकूल सरकार कुछ करे, यह अलग बात है। जनता में जो-जो शक्ति निर्मित हो, उसे अनुकूल बनाना सरकार का काम ही है। किन्तु हमें उनकी शक्ति के विकास में ध्यान देना होगा। खादी अगर अहिंसा की शक्ति विकसित करनेवाली बनती है, तभी उसमें रस है। अतः खादी भी करुणा की शक्ति से हिंदुस्तान में विकसित हो, यही हम चाहते हैं। उसमें भी सरकार जो कुछ मदद दे सके, उसे भी हम चाहेंगे।

हम हिंसा के पण्डित नहीं बन सकते

हमारा मुख्य मसला यह है कि करुणा की शक्ति कैसे निर्माण हो? हमारे स्वराज्य का भविष्य करुणा की इसी शक्ति पर आधृत है। यह शक्ति कितनी विकसित हो सकती है, इसी पर सब कुछ निर्भर है। आखिर कानून में भी जन-शक्ति और करुणा-शक्ति के अलावा क्या है? एक और सैनिक शक्ति ही तो है। फिर अगर हम कानून के जरिये समाज के मसले हल करना चाहें, तो उसका मतलब यह हुआ कि हम हिंसा-शक्ति पर विश्वास, श्रद्धा पैदा करते हैं। ऐसी सैनिक शक्ति पर फिर से लोगों का विश्वास बैठाना चाहते हैं। इससे हमारा

देश आगे नहीं बढ़ सकता। इतना ही नहीं, इससे जो देश आगे बढ़े हैं, उनमें हम पीछे ही छूट जायेंगे, क्योंकि इसका मतलब यह हुआ कि हमारी श्रद्धा हिंसा पर भी बैठी, पर हिंसा की ताकत हम उतनी विकसित नहीं कर सकते। याने दूसरे बलवान् देशों से हमारी दशा बिलकुल उल्टी होगी। उनके पास हिंसा-शक्ति अत्युत्तम है, लेकिन उस पर उनका विश्वास नहीं है। हमारी हिंसा में श्रद्धा बैठी है, पर हम उसे विकसित नहीं कर पाते। याने वे लोग हिंसा-शक्ति उत्तम होते हुए भी उसके प्रति अविश्वासी बन गये हैं और हम हिंसा-शक्ति कमजोर होते हुए भी उसके विश्वासी हो गये हैं।

सारांश, हम हिंसा में भी पण्डित न बनेंगे और न अहिंसा के ही पण्डित होंगे। हिंसा में पण्डित तो वे अवश्य हैं, पर हम उसमें पण्डित नहीं बन सकते। गरीब देश की ताकत ऐसी नहीं कि यह हिंसा-शक्ति बढ़ा पाये। इस तरह स्पष्ट है कि हिंसा-शक्ति के लिए प्रयत्न करने पर भी हम उसके पण्डित नहीं बन सकते। लेकिन अहिंसा की शक्ति में पण्डित अवश्य बन सकते हैं, बशर्ते हम उस पर श्रद्धा रखें और उस मार्ग को विकसित करने में अपना जीवन लगायें। अगर हम अपनी पूरी ताकत जनशक्ति के विकास में, अहिंसा-शक्ति की खोज में लगायेंगे, तो हमारा देश ऊपर उठेगा, यह हमारा दृढ़ विश्वास है।

आमंडु (चित्तौर)
३-५-'५६

यह एक अखिल भारतीय संस्कार-केन्द्र है। इस तरह के संस्कार-केन्द्र, जहाँ भारत की संस्कृति का दर्शन होता है, हिन्दुस्तान मे चन्द ही हैं। जैसे उधर काशी है, इधर जगन्नाथ, तो उधर द्वारिका। इसी तरह यह तिरुपति भी हमारी संस्कृति का निदर्शक है।

'संस्कृति' का अर्थ

'संस्कृति' में क्या-क्या आता है, यह जरा समझने की जरूरत है। उसमें कितने ही अच्छे विचार और कुछ गलत विचार भी चलते हैं। जो विचार प्राचीन काल से सतत चला आया हो, वह हमेशा संस्कृति प्रकट करता है, सो नहीं। मनुष्य की एक प्रकृति होती है, एक संस्कृति और एक विकृति। भूख लगने पर मनुष्य खाता है, यह उसकी प्रकृति है। भूख न लगने पर भी मनुष्य खाता है, यह उसकी विकृति है। और भूख लगने पर भी आज एकादशी है, इसलिए भगवत्-स्मरण के लिए नहीं खायेंगे, यह उसकी संस्कृति है। हम मेहनत करेंगे और मेहनत करके खाते हैं, यह हमारी प्रकृति है। हम मेहनत टालेंगे, दूसरे की मेहनत लूटेंगे और भोग भोगते रहेंगे, यह हमारी विकृति है। यद्यपि यह बात बहुत से मानवों में दीखती है, फिर भी वह मनुष्य की प्रकृति नहीं, विकृति है। इसी तरह चाहे इस प्रकार की विकृति प्राचीन काल से आज तक दीखती हो, फिर भी वह कभी भी संस्कृति नहीं हो सकती। लेकिन अपने श्रम से पैदा की हुई चीज भी दूसरे को दिये बिना न खायेंगे, देकर ही खायेंगे, यह मानव की संस्कृति है। ये चन्द मिसालें मैंने इसलिए दीं कि जहाँ भारतीय संस्कृति है, जो केन्द्र भारतीय संस्कृति के नाम से प्राचीन काल से चला आया है, वहाँ कुल भारतीय संस्कृति है, ऐसा न मानना चाहिए। इसलिए यह छानबीन जरूरी है कि हमारे भारत की संस्कृति क्या है, विकृति क्या है और प्रकृति क्या है?

भारतीय संस्कृति का प्रतीक, भगवान् की मूर्ति

यह तिरुपति भारतीय संस्कृति के दर्शन के स्थानों में से एक है। यदि हमने अपनी संस्कृति का सार सर्वस्व किसी एक चीज में कर दिया है, तो वह है, भगवान् की मूर्ति। हिन्दुस्तान के लोगों ने अपनी सारी कला-शक्ति, साहित्य-शक्ति और चिन्तन-शक्ति परमेश्वर का गौरव करने में ही खर्च की है। भारत के लोग बगीचा लगाते और फूलों की बड़ी कदर करते हैं। किन्तु उन्हें तोड़कर गले में डालना पसन्द नहीं करते, बल्कि उन्हें परमेश्वर की पूजा में ही लगाते हैं। उत्तम-उत्तम फूल ले लिये और अपने बालों में लगा दिये, यह प्रकृति है। फूलों की परवाह न करना, उन पर पाँव देकर चलना, उन्हें तुच्छ समझना विकृति है। और फूल का उपयोग भगवान् की मूर्ति सजाने में करना, यह मानवीय संस्कृति है। अपने लिए सुन्दर मकान बनाकर रहना 'प्रकृति' है। उस मकान को ऐसा सजाना कि नजदीक की झोपड़ियों की परवाह ही न की जाय 'विकृति' है।

अभी इसी तिरुपति में यह 'विकृति' हमने देखी। हम इसी प्रार्थना-सभा के लिए आ रहे थे, तब रास्ते में बड़े-बड़े आलीशान मकान देखे और उन्हींके सामने झोपड़ियाँ भी देखीं। वे ऐसी बनी हैं, मानो मुर्गियों को इकट्ठा करने के लिए दरबे बनाये गये हों। अन्दर प्रवेश करने के लिए छोटा-सा दरवाजा है। बहुत ज्यादा झुकने पर ही उसमें हम प्रवेश कर सकते हैं। इतना दारिद्र्य सामने देखते हुए अपना मकान सजाना प्रकृति नहीं है। यह मानवता ही नहीं, भारतीयता भी नहीं। अगर वैभव दिखाना चाहते हों, तो मन्दिर सजाये जायँ और मकान सादे रखें। ऐसा करना 'संस्कृति' है।

आप देखें कि इस तिरुपति की कितनी संस्कृति है, कितनी प्रकृति और कितनी विकृति है। हमें कहने में दुःख होता है कि भारत की संस्कृति के केंद्र में जितनी 'विकृति' हम देखते हैं, उतनी कहीं नहीं देखते। मानो यहाँ अनेक प्रकार की बुराइयाँ ही एकत्र हो गयी हों। शायद ये भगवान् की परीक्षा लेते होंगे। वह 'क्षमाशील' कहलाता है, सो देखें, कहाँ तक क्षमाशील है—हम अपराध करते चले जायँ, दोष करते चले जायँ? मैं टीका करना नहीं चाहता। दूसरे के दोषों

को अपने ही दोष मानता हूँ। अलावा इसके मैं जानता हूँ कि मुझमें भी अनंत दोष हैं। इसलिए मैं दोष-दर्शन पसंद नहीं करता। सिर्फ विचार-विश्लेषण के लिए ये बातें आपके सामने रख दीं।

त्यक्तेन भुंजीथाः

मैं कहना चाहता हूँ कि हिन्दुस्तान की संस्कृति का सर्वोत्तम अंश भगवान् की मूर्ति सजाने में है। 'त्यक्तेन भुंजीथाः' त्याग करके ही भोग करना हमारी संस्कृति है। जो भी भोग हम करना चाहते हैं, प्रकृति के अनुसार वह हम भगवान् को अर्पित करके ही सेवन करेंगे। भगवान् को विकृति का समर्पण नहीं हो सकता। सुन्दर-सुन्दर फल विकृत करके शराब बनाते हैं। उत्तम-से उत्तम अंगूर की शराब बनाना संस्कृति नहीं, न वह प्रकृति ही है, वरन् विकृति है। भगवान् को मदिरा का भोग नहीं चढ़ाया जा सकता। जो मनुष्य की प्रकृति है, उसीका भोग भगवान् को चढ़ाया जायगा, समर्पित किया जायगा।

रवीन्द्रनाथ ने एक सुन्दर मिसाल अपनी संस्कृति और पश्चिम की संस्कृति के लिए दी है। उन्होंने कहा है कि पश्चिम के लोग विज्ञान में काफी आगे हैं। उसमें से लेने लायक हमारे लिए बहुत है। किन्तु उसमें विकृति का भी अंश पड़ा है, उसे 'संस्कृति' समझने की गलतफहमी हम न करें। दुनियाभर की संस्कृति लेनी चाहिए, पर अपने यहाँ की विकृति भी न लेनी चाहिए। मिसाल उन्होंने दी है कि हिन्दुस्तान का मजदूर दिनभर काम कर थकान आती है, तो शाम को भजन कर सो जाता है। पर यूरोप का मजदूर दिनभर काम करता और रात में थकान दूर करने के लिए शराब पीता है। यह यूरोप-अमेरिका की संस्कृति नहीं, विकृति है। प्राचीन काल से एक चीज चली आयी है, पर वह यदि विकृति हो, तो उसे स्वीकार न करना चाहिए। इसी तरह दूसरे भी जो वैभवशाली देश हैं, उनकी भी विकृति न लेनी चाहिए। विकृति सब प्रकार से वर्ज्य कर प्रकृति को ले सकते हैं, किन्तु उसका भी शोधन करना चाहिए। प्रकृति को संस्कृति का रूप देना चाहिए। खाना नहीं छोड़ सकते, कारण वह प्रकृति है। पर मांसाहार छोड़ सकते हैं। उसे जरूर छोड़ा जाय, तो संस्कृति

आयेगी, अगर खाने में संयम कर सकते हैं, तो वह जरूर करना चाहिए। उतनी संस्कृति तो आयेगी। खाने का अंश भगवदर्पण करते हैं, तो वह जरूर करना चाहिए, वह संस्कृति है।

भक्तों के दर्शन का स्थान

तिरुपति जैसे स्थानों में बाहर के लोग आकर क्या देखते हैं? कहते हैं, हम भगवान् के दर्शन के लिए आये हैं। यह कैसा पागलपन है! किन्तु यही हिन्दुस्तान का वैभव है, जिसके आधार पर वह टिका है। लोग भगवान् के दर्शन के लिए प्यासे होते हैं, लेकिन परमेश्वर किसी स्थानविशेष में नहीं रहता। हर स्थान, हर काल और हर हृदय में उसका सुंदर दर्शन हो सकता है। फिर भी हम लोगों ने भगवान् के दर्शन के कुछ स्थान निर्माण किये हैं। लोगों में श्रद्धा है और उन्हें ऐसे स्थानों में दर्शन का आनन्द भी मिलता है। आखिर भगवान् के दर्शन का स्थान याने क्या? इसका अर्थ है, भगवद्भक्तों के दर्शन का स्थान। भगवान् के दर्शन हर जगह हो सकते हैं, पर जहाँ भगवान् के भक्त इकट्ठे हुए हों और जहाँ संस्कृति का सर्वोत्तम आदर्श हो, ऐसा स्थान भगवान् के दर्शन का स्थान है।

हम इस स्थान में आकर सहज सोचने लगे कि यहाँ के लोग भाग्यवान् होंगे। यहाँ भारत की सर्वोत्तम संस्कृति होगी। और शास्त्रकारों ने भी बड़ी आशा पैदा की है कि तीर्थ-स्थानों में सर्वोत्तम धर्म होना चाहिए। लेकिन साथ ही एक बड़ा ही भयानक वाक्य उन्होंने लिखा है, जिसका अर्थ है कि 'दूसरी जगह हम पाप करते हैं, तो तीर्थ-स्थानों में वह धोया जा सकता है; पर तीर्थ-स्थान में ही पाप करते हैं, तो उसे धोने के लिए कहीं जगह नहीं है।' इसलिए ऐसे तीर्थ-स्थानों में आप रहते हैं, तो सचमुच धन्य हैं; क्योंकि आपने बहुत बड़ी जिम्मेवारी उठायी है। यह जिम्मेवारी उठायी है कि भारतीय संस्कृति का सर्वोत्तम दर्शन आप जीवन में करायेंगे और यहाँ भगवद्-भक्ति का वातावरण ही दिखायेंगे।

भूखे को खिलाना भगवत्पूजा

मेरा नम्र दावा है कि मैंने जो काम उठाया है, उसमें भारतीय संस्कृति का

दर्शन होता है और वह एक भगवद्-भक्ति का कार्य है। भारतीय संस्कृति का सर्वोत्तम शब्द है, 'कृष्णार्पण'। इसके मानी यह नहीं कि शब्द मात्र बोला जाय। बल्कि हम जो भोग भोगेंगे, जो काम करेंगे, कुल भगवान् के लिए करेंगे। अगर हम खाते हैं, तो भगवत्प्रसाद समझकर खायेंगे। भगवत्सेवा के लिए शरीर में बल रहे, इसीलिए खायेंगे। यह भगवान् कहाँ है? वह हमारे इर्द-गिर्द अनन्त रूपों में प्रकट है। वह भूखों के रूप में, बीमारों के रूप में हमारे सामने है। आज यहाँ आते समय रास्ते में कोढ़ी लोगों की सेवा का स्थान देखा। हमें उसे देखकर खुशी हुई। इसी तरह का कार्य वर्धा में भी हमारे मित्रों ने चलाया है। इस प्रकार का सेवा-कार्य जहाँ हम देखते हैं, वहाँ हमें भगवान् का दर्शन होता है। दुःखियों की सेवा भगवान् को प्रिय है। भूखों को खिलाना भगवत्पूजा है।

भूदान : सर्वोत्तम दान

आज एक भाई हमारे पास आये थे। उन्होंने एक सुन्दर कहानी सुनायी। उनके पास कुछ जमीन है। उससे जो पैदावार आती है, उसे वे जो भी भूखा आ जाय, उसे खिलाते हैं। उनका नाम ही 'अन्नदानम्' पड़ा है। उस भाई ने अपनी जमीन का आधा से ज्यादा हिस्सा अपनी माता की और पत्नी की सम्मति से भूदान में दिया है। तब क्या उनका 'अन्नदानम्' नाम मिट जायगा? नहीं, वह नाम तो वास्तव में यथार्थ होगा। दान ऐसा देना चाहिए कि जिसे वह दिया, उसे पुनः पुनः न देना पड़े। हमने उसे दिया भी और उसे बार-बार माँगना बाकी रहा, तो हमने क्या दिया? भगवान् का वर्णन भक्तों ने किया है, 'रामजी, आप इस तरह के राजा हैं, जिन्हें आप देते हैं, उन्हें माँगने की जरूरत नहीं रही।' अगर आपने भूखों को खिलाया, तो अच्छा किया। किन्तु थोड़ी देर बाद उसे फिर भूख लगे, वह माँगता रहे और आप देते रहें, तो कहना पड़ेगा कि आपने कायम के लिए दानत्व का अहंकार ले लिया। हम इसे सर्वोत्तम दान नहीं कह सकते। किन्तु यदि हम उसे उत्पादन का साधन देते हैं, तो उसे फिर माँगना नहीं पड़ेगा। उसे हम अच्छी जमीन देते हैं, तो वह उस पर काश्त करके अपने बाल-बच्चों का पालन-पोषण करेगा और फिर माँगने न आयेगा। इसीलिए भूमिदान सर्वोत्तम दान माना गया है। इसीलिए विद्या-दान को सर्वोत्तम दान माना गया, क्योंकि

हम किसीको विद्या दे दें, तो वह पराश्रित न रहेगा, खुद विचार करेगा। जिसे हम औजार देंगे, वह औजार से काम करेगा, फिर से न माँगेगा। इसलिए वही सर्वोत्तम अन्नदान हुआ। इस तरह हमें अपनी संस्कृति का सर्वोत्तम दर्शन भूदान में होता है। और हम यह भी कहना चाहते हैं कि इसमें कृष्णार्पण का अभ्यास होता है। इसीलिए हम उसे 'भक्ति-मार्ग' कहते हैं।

लोभासुर के विनाश का कार्य

आप जानते हैं कि पाँच साल हुए, हम पैदल-ही-पैदल यात्रा कर रहे हैं; फिर भी हमें थकान महसूस नहीं होती। बल्कि रामजी जब तक काम लेना चाहेंगे, तब तक हम घूमते रहेंगे। हम बार-बार राम का ध्यान करते हैं, तो हमें बल मिलता है। रावण से मुक्ति दिलाने के लिए १४ साल उन्हें घूमना पड़ा। जिस राक्षस से हम मुक्ति चाहते हैं, वह रावण से कम नहीं है। लोभासुर से कम राक्षस कोई नहीं है। काम, क्रोध और लोभ, इन तीनों में भी मनुष्य का सबसे बड़ा शत्रु 'लोभ' है।

इसकी कहानी उपनिषद् में आती है। वहाँ मेघ-गर्जना से बोध दिया गया है। मेघ की गर्जना होती है: 'दद् दद्।' 'दाम्यत, दत्त, दयध्वम्' याने दमन, दान और दया! इन तीनों की मनुष्य को जरूरत है। कामरूपी शत्रु को जीतने के लिए दमन चाहिए, क्रोधरूपी शत्रु को जीतने के लिए दया चाहिए और लोभरूपी शत्रु को जीतने के लिए दान चाहिए। ये तीन शत्रु और उनके तीन उपाय बताये हैं। 'दान करो', क्योंकि उसमें लोभ की मात्रा अधिक है। साराश, यद्यपि काम, क्रोध और लोभ, ये तीनों असुर हैं, फिर भी सबसे बलवान् 'अर्थ-लोभ' है।

यह भूदान-आन्दोलन इसी लोभासुर के मोचन के लिए है। रावण से कमजोर असुर हमारे सामने नहीं है। रामजी को रावण जैसे असुर पर प्रहार करने के लिए इतना समय देना पड़ा, तो हमारे जैसे तुच्छ मनुष्य को लोभासुर जैसे पर प्रहार करने के लिए पाँच साल क्या ज्यादा समय है?

तिरुपति
५-५-'५६

मद्रास—कांजीवरम् सम्मेलन तक

[१५-५-'५६ से ४-६-'५६ तक]

आज दुनिया दो हिस्सों में बँटी है । एक है, अमेरिकी गुट और दूसरा है, रूसी गुट । यह गुटवाला उस गुटवाले से डरता है और वह इस गुटवाले से ।

हर कोई सत्याग्रही क्षत्रिय बने

हमें सोचना होगा कि सेना का स्थान क्या है ? जैसे-जैसे समाज का विकास होगा, क्षात्र-धर्म भी विकसित होता जायगा । क्षत्रिय का धर्म यही हो सकता है कि वह सबके रक्षण के लिए आत्मसमर्पण की तैयारी रखे । इसलिए उत्तम-से-उत्तम लोगों की गिनती क्षत्रिय में होनी चाहिए ।

फिर भी उनकी कोई जाति न होगी, वृत्ति रहेगी । क्षत्रिय का लड़ने का तरीका सत्याग्रह का होगा । इसलिए हम समझते हैं कि आज सेना की जो आवश्यकता है, वह आगे कम न होगी, बल्कि उसका रूप बदलता जायगा । अब समाज और सत्य के रक्षार्थ आत्मसमर्पण करने के लिए जो तैयार होंगे, वे क्षत्रिय होंगे । आगे के क्षत्रिय दूसरे को मारने और खुद भयभीत होनेवाले नहीं, वरन् दूसरे को निर्भय बनाने और खुद भी निर्भय बननेवाले होंगे । इसलिए हम तो समझते हैं कि क्षत्रिय के लिए उत्तम संहिता, उत्तम पुस्तक कोई है, तो वह भगवद्गीता है । भगवद्गीता जैसी पुस्तक उसे बाह्यार्थ में भी काम देगी और अन्तरार्थ में भी । किन्तु इसके आगे चन्द लोग क्षत्रिय और चन्द लोग अक्षत्रिय न रहेंगे, हरएक को क्षत्रिय बनना होगा । यह नहीं होगा कि १० क्षत्रिय ६० लोगों की रक्षा करेंगे । यह भी न होगा कि पुरुषों पर स्त्रियों की रक्षा की जिम्मेवारी हो । बल्कि स्त्रियों में भी अपनी रक्षा का बल होना चाहिए ।

निर्भयता और सार्वभौम प्रेम में बल

यह बल दो प्रकार से आता है । एक निर्भयता से और दूसरा सार्वभौम प्रेम से । जिसमें सार्वभौम प्रेम और निर्भयता है, वह क्षत्रिय है । फिर लड़ने के औजार तो आज तक बदलते रहे हैं और आगे भी बदलते रहेंगे । इसलिए आगे जो भी क्षत्रिय होंगे, चुने हुए लोग होंगे । यों तो क्षत्रिय सबको बनना होगा,

लेकिन चन्द लोग ऐसे होंगे, जिनमें चात्र-गुण का विशेष विकास हुआ होगा। वे कौन होंगे? जो हम लोगों से अधिक संयमी और इन्द्रिय-निग्रही होंगे।

ऐसे इंद्रिय-निग्रही और समर्थ ही देश के रक्षक होंगे, जैसे कि हनुमान्‌जी थे। क्षत्रिय और देश के रक्षक के लिए हनुमान् की मिसाल उत्तम है। हनुमान् जैसा निर्भय, धृतिमान् , सद्गुण-सम्पन्न और इंद्रिय पर जिसका काबू हो, ऐसे ही व्यक्ति को चुन-चुनकर सिपाही बनाना चाहिए। ऐसे ही सिपाही देश की रक्षा कर सकेंगे।

नैतिक शक्ति से ही लड़ना है

क्या आप समझते हैं कि हिन्दुस्तान की सेना शस्त्रास्त्र-सज्जित रूस और अमेरिका का सामना करेगी? नहीं, हमें देश की रक्षा शस्त्र से नहीं, निर्भयता, नीतिमत्ता और एकता से करनी होगी। हमारा देश इतना बड़ा नहीं कि वह भौतिक दृष्टि से सम्पन्न हो सके। वह नीतिमत्ता से ही संपन्न हो सकता है। जिस देश के पास प्रति व्यक्ति एक एकड़ भी जमीन नहीं, भला वह भौतिक शक्ति से दूसरे देश की बराबरी क्या करेगा? किन्तु हमारी सेना तो देवसेना होगी। उसका एक-एक वीर लाखों के लिए भारी होगा। अकेला हनुमान् लंका में गया और उस राक्षस-नगरी को भस्म करके चला आया। अंगद अकेला गया, पर रावण का आसन हिला आया। आखिर वह कौनसी शक्ति थी? और कोई नहीं, केवल नैतिक शक्ति थी। हिन्दुस्तान को इसके आगे की लड़ाइयाँ उसी शक्ति से लड़नी होंगी।

एकता की आवश्यकता

इसके लिए हिन्दुस्तान में एकता होनी चाहिए। सिपाही के मन में यह भावना हो कि मैं जनसेवक हूँ, भारतीय हूँ। 'मैं फलाने धर्म का हूँ, फलानी जाति का हूँ, फलानी भाषा का हूँ', ऐसी संकुचित भावना उसमें न होनी चाहिए। धर्मभेद, जातिभेद आदि की छोटी-छोटी कल्पना सिपाही के मन में हो, तो सिपाही खतम ही है। सिपाही तो भारतीयता की मूर्ति होना चाहिए। उसके इस प्रकार के गुण होने चाहिए, क्योंकि इसके आगे नैतिक लड़ाई लड़नी है। अभी हमारी सेना कोरिया में गयी, तो वह नैतिक काम के लिए ही गयी थी। यह तो आपके सामने की ही घटना है। इसके आगे भी दुनिया हिन्दुस्तान की मदद चाहेगी, तो दूसरे प्रकार की भौतिक मदद नहीं,

वरन् नैतिक मदद ही चाहेगी। इसलिए हमारे सैनिक आदर्श नीतिवान् पुरुष होने चाहिए।

भूदान से सत्याग्रह-शक्ति

आज दुनिया की हालत डाँवाडोल है। दुनिया में भ्रम फैला है। वह बहुत ज्यादा शस्त्र बढ़ा चुकी है। जितने शस्त्र एक के पास हैं, उतने ही सामनेवाले के हाथ में हैं। फिर भी उससे मसला हल नहीं हो रहा है। इसलिए जिस देश के लोग सत्याग्रह के तरीके सिद्ध करेंगे, वही देश दुनिया को राह दिखायेगा।

भूदान का छोटा-सा काम हुआ, तो दुनिया की नजर इस तरफ क्यों है! लोगों से संपत्तिदान, भूमिदान माँगा जा रहा है और लोग प्रेम से दे रहे हैं। इसमें किसी प्रकार का दबाव नहीं है। न डराने की बात है और न धमकाने की। पाँच लाख लोगों ने दान दिया है। इससे नैतिक शक्ति निर्माण हो रही है। नैतिक शक्ति से मसले हल होते हैं, तो दुनिया को बड़ी आशा होगी। मैं कहना चाहता हूँ कि हिन्दुस्तान को इसके आगे नैतिक युद्ध लड़ने होंगे। इसलिए हिन्दुस्तान के अंतर्गत मसले नैतिक शक्ति से हल करने के तरीके ढूँढ़ने होंगे। इसीमें से सत्याग्रह की शक्ति निर्माण होगी।

निर्भयता सबमें हो

पूँजीवादी समाज में पूँजी चंद लोगों के हाथ में रहती है, इसी तरह समाज में निर्भयता चंद लोगों के पास रहेगी, तो न चलेगा। जैसे-जैसे संपत्ति का विभाजन होगा, वैसे ही निर्भयता भी सबमें होनी चाहिए। यह न चल पायेगा कि बहुत लोग भयभीत रहें और चंद लोग उनकी रक्षा करें। बच्चे-बच्चे में यह शक्ति होनी चाहिए कि मैं अकेला दुनिया का मुकाबला कर सकता हूँ, अगर सत्य मेरे पक्ष में है। हम चाहते हैं कि सारे छोटे-छोटे लड़के हमारे सिपाही हो जायँ। जब देश के छोटे-छोटे बच्चों में ऐसी हिम्मत आयेगी, तभी स्वराज्य होगा।

आवडी (मद्रास)
१५-५-'५६

बहुत से लोग पूछते हैं कि 'यह माँग-माँग करके जमीन लाता है, लेकिन सरकार पर जोर डालने से यह काम जल्दी हो सकता है। फिर इससे जमीन भी अच्छी नहीं मिलती।' पर यह तो ऐसा ही विचार हुआ कि माँ बच्चे को सुलाने के लिए प्यार से थपकाती है, पर अगर बहुत देर तक वह नहीं सोता, तो उसे एक चाँटा भी जमा देती है। लेकिन जो थपकाने से नहीं सोया, क्या वह चाँटे से सो सकेगा?

कानून से जनशक्ति पैदा नहीं होती

समझने की जरूरत है कि जमीन हमें सिर्फ बाँटनी ही नहीं, प्रेम से बाँटनी है। समाज को जाग्रत करने का काम थपकाने से ही होगा। जापान से एक पत्र आया है। उसमें पाँच मनुष्य के हस्ताक्षर हैं। उसमें उन्होंने जापान का वर्णन लिखा है। दूर से जो जापान की प्रशंसा सुनते हैं, नजदीक जाने पर उन्हें वहाँ का सच्चा चित्र देखने को मिल सकता है। वहाँ कानून से जमीन बाँट ली गयी है, लेकिन मालिक और मजदूरों में कटुता पैदा हुई है। उससे ताकत नहीं बनती। किन्तु हमारा तो उद्देश्य है कि समाज में ताकत निर्माण हो। स्वराज्य के बाद लोग ज्यादा परतंत्र हुए हैं। हर बात में हम सरकार पर ही निर्भर रहने लगे हैं। सामाजिक, धार्मिक या पारिवारिक—किसी भी प्रकार के काम, छूत-अछूत भेद, हर बात सरकार ही करे और हम कुछ न करें, आज ऐसी हालत हो गयी है। जो जनता सरकार पर इतनी निर्भर रहेगी, वह शक्तिमान् कैसे बनेगी? कानून से मसला हल होगा, लेकिन शक्ति न बढ़ेगी। वास्तव में लोगों को आत्म-शक्ति का भान होना चाहिए। यह तभी होगा, जब लोग एक मसला हल करेंगे।

'पॉवर पॉलिटिक्स' और 'स्ट्रेंग्थ पॉलिटिक्स'

कुछ लोग हमसे कहते हैं कि आपके भूदान में जितने लोग लगे हैं, उन सबकी परीक्षा १६५७ के चुनाव में हो जायगी। तब मालूम होगा कि कितने लोग

टिकेंगे और कितने चुनाव में जायेंगे। चुनाव में जाना पाप नहीं, यह काम बुरा नहीं। फिर भी इसमें कोई शक नहीं कि जो लोग इसमें से उसमें जायँगे, वे जन-शक्ति का पहलू खो देंगे। समझने की बात है कि 'पावर पॉलिटिक्स' एक बात है और 'स्ट्रेंग्थ पॉलिटिक्स' दूसरी। ये लोग 'पॉवर पॉलिटिक्स' के पीछे जाते हैं, लेकिन 'पॉवर' में 'स्ट्रेंग्थ' का क्षय होता है। 'स्ट्रेंग्थ' निष्काम सेवा से बढ़ती है। देखिये, उत्तम से उत्तम सेवक की, जो पॉवर में गये हैं, शक्ति बढ़ी है या घटी है? शास्त्र में लिखा है, तपस्या करने पर इन्द्र-पद प्राप्त होता है, तो उसी दिन से उसके क्षय की शुरुआत हो जाती है। 'क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं विशन्ति' पुण्य का क्षय हो जाने पर उसे लात मारकर मृत्युलोक में भेज दिया जाता है। इसलिए अगर हम जनता की शक्ति निर्माण करेंगे, तो वास्तव में वह 'स्ट्रेंग्थ पॉलिटिक्स' होगा।

लोग कहते हैं कि 'बाबा राजनीति में पड़ता नहीं, लेकिन उसने जे० पी० (श्री जयप्रकाश नारायण) को भी राजनीति से भूदान के काम में लाया है।' लेकिन यह कहनेवाले सोचते नहीं कि जे० पी० कोई लड़का नहीं है। सब प्रकार के शास्त्रों का अध्ययन किया हुआ क्रान्तिकारी ज्ञानी है। उसने रूस का इतिहास और चीन का इतिहास देखा है। वह पहचानता है कि लोगों की ताकत नहीं बनती, तो काम नहीं बनता। एक जमाना था, जब रूस में लोग स्टालिन की स्तुति करते थे। इतिहास उसकी स्तुति से भरा पड़ा था। लेकिन आज स्टालिन के मरने के बाद उसके हाथ के नीचे काम करनेवाले ही उसकी निंदा करने लगे हैं। अब वे कहते हैं कि चन्द दिन इतिहास न पढ़ाया जायगा, क्योंकि नया इतिहास लिखना है। वे नये इतिहास में यही लिखेंगे कि पहला इतिहास गलत था। सोचिये कि अब इसमें लोगों की क्या ताकत बनी? जो सरकार करेगी, वही वहाँ होगा। इसीलिए हम कहना चाहते हैं कि उस देश में आजादी नहीं, बुद्धि की स्वतंत्रता नहीं है। इंग्लैंड, रूस, अमेरिका ये सब देश अपनी प्रजा का कल्याण कर लें, पर वहाँ जन-शक्ति निर्माण नहीं हो सकती।

भूदान-यज्ञ जन-शक्ति बढ़ाने का आन्दोलन है। इसलिए इसमें राजनीति का अभाव नहीं है। फिर भी यह आन्दोलन आज की राजनीति का खंडन

करनेवाला है। हम आज की प्रचलित राजनीति से अलग रहकर नयी राजनीति निर्माण करना चाहते हैं। उस नयी राजनीति को हम 'लोकनीति' कहते हैं। हम राजनीति का खंडन कर लोकनीति बनायेंगे।

समुद्र का विरोध नदी नहीं कर सकती

इस पर पूछा जाता है कि आप लोकनीति स्थापन करने की बात करते हैं, पर उसका भी विरोध करने की वृत्ति कहीं-कहीं दिखाई देती है। उस हालत में हम क्या करेंगे? इस पर मेरा उत्तर यही है कि लोकनीति ऐसी व्यापक नीति है कि उसका विरोध करनेवाला ही गिर जायगा। उसीकी क्षति होगी। समुद्र का विरोध नदी नहीं कर सकती। जो नदी ऐसा करेगी, वह स्वयं सूख जायगी। इसलिए यह डर रखने की जरूरत नहीं कि जो काम हम करेंगे, उसके विरुद्ध दूसरे लोग खड़े होंगे। लोकनीति की स्थापना अभावात्मक (निगेटिव) नहीं। उसका मतलब यह नहीं कि आज की राजनीति का खंडन कर उसके दोष दिखाये जायँ। समझने की बात है कि 'आज की राजनीति' यद्यपि 'लोकनीति' नहीं, फिर भी 'लोकमान्य' अवश्य है। इसलिए जब लोग बदलेंगे, तभी वह बदलेगी। इसलिए हम राजनीति के दोष ही दिखाते चले जायँगे, तो अपनी शक्ति व्यर्थ खर्च करेंगे।

मान लीजिये कि हम कोई स्कूल चलाते हैं। वह स्कूल आकर्षक हुआ, तो वहाँ पालक अपने लड़के भेजेंगे और उसी गाँव के सरकारी स्कूल में लड़के कम जायँगे। फलतः सरकारी स्कूल वहाँ न चलेगा। लोग अपने बच्चे ही न भेजेंगे, तो सरकार क्या करेगी? वह अपना स्कूल वहाँ से उठा लेगी और मेरा कब्जा करने के लिए एक युक्ति सोचेगी। वह मुझे एक चिट्ठी लिखेगी कि आपका स्कूल बहुत अच्छा चलता है। हमारी तरफ से आप दस हजार रुपया लीजिये। पर अगर मैं वह पैसा लूँगा, तो खतम हो जाऊँगा। इसलिए मैं उसे पत्र लिखूँगा कि "हमारी सरकार हमसे प्रेम करती है, इसलिए हम उसका शुक्रिया अदा करते हैं, पर हम जो काम करने जा रहे हैं, वह सरकार-निरपेक्ष है। इसलिए आप मदद देंगे, तो हमारे काम की क्षति ही पहुँचेगी। इसलिए हम आपकी 'ऑफर' स्वीकार नहीं कर सकते। जरूरत होगी, तो

सलाह जरूर लेंगे।' इस तरह हम पत्र लिखेंगे, तभी जन-शक्ति बढ़ेगी। नहीं तो हम अपनी शक्ति खो देंगे।

इसका यह अर्थ नहीं कि अगर काम को बाधा न पहुँचती हो, तो भी हम मदद न लें। मदद लेना हराम नहीं है। इसमें असहयोग की बात नहीं है। पर जहाँ तक हो सके, अपनी ताकत से काम करना ज्यादा सुरक्षित है। इसलिए ऐसी मदद न लेने में ही हम ज्यादा सुरक्षित हैं।

मद्रास
१८-५-'५६

अद्वैत, जनसेवा और भक्ति का योग : ३६ :

आज श्री रामकृष्ण परमहंस का जन्मदिन है और कल श्री शंकराचार्य का जन्मदिन था। इस तरह अपने इस भारत देश पर भगवान् की बहुत कृपा हुई। उसने हर जमाने और हर स्थान में सत्पुरुषों की वर्षा की है। जहाँ शंकराचार्य ने अद्वैत सिखाया याने भूतमात्र का हृदय एकरूप है, इस बात पर जोर दिया, वहीं रामकृष्ण परमहंस ने उसे स्वीकार किया और उसके साथ मानव-सेवा को भी जोड़ दिया। इस जमाने में यह बहुत बड़ी बात हुई। अद्वैत और जनसेवा, दोनों एक-दूसरे के पूरक हैं। अद्वैत का प्रकाश जनसेवा के रूप में भलीभाँति प्रकट होता है। जनसेवा से अद्वैत का प्रकाश फैलता है, तो अद्वैत से जनसेवा को आधार मिलता है। एक है बुनियाद, तो दूसरी है, उस पर की गयी रचना। दोनों अत्यंत स्वाभाविक हैं। किंतु बीच के जमाने में अद्वैत-विचार सुप्त हो गया था। उसका प्रकाश सेवा के रूप में फैलने के बजाय छिप गया था। शाब्दिक वाद-विवाद में ही उसकी समाप्ति हो गयी। इसलिए अद्वैत से जिस ताकत की अपेक्षा थी, वह पैदा न हो सकी।

संन्यासी और करुणा

शंकराचार्य का अद्वैत सचमुच अपूर्व रहा। उनके हृदय में अद्भुत भूत-करुणा थी। इसीलिए वे हिन्दुस्तानभर पैदल घूमे। उन्होंने जगह जगह पहुँच-कर लोगों को अद्वैत का प्रेममय संदेश सुनाया। बच्चा खेल में मग्न हो जाता

है, तो माता ही उससे कहती है : 'चल लाड़ले ! खाने का समय हो गया, भूख लगी होगी !' इसी तरह शंकराचार्य ने किया। वे खुद होकर उनके पास गये। करुणा के बिना ऐसा कार्य हो नहीं सकता। लोग अपने ही संसार में मग्न थे, अपना-अपना स्वार्थ देखते थे। शंकराचार्य ने उनका तिरस्कार नहीं किया, उन्होंने यह भी नहीं कहा कि लोगों को जरूरत होगी, तो वे आयेंगे। बल्कि वे खुद होकर निकल पड़े और जिन्दगीभर घूमते रहे। उन्होंने लोगों के लिए भक्ति-स्रोत आसान बना दिये। उनका अद्वैत प्रेममय और आर्द्र था।

किन्तु बीच के जमाने में वह झरना सूख गया। लोगों ने संन्यास का उल्टा ही अर्थ मान लिया। संन्यास स्वयं कोई मिथ्यातत्त्व नहीं। उसका अर्थ है, अपना अहंकार बिलकुल छोड़ना और दुनिया से एकरूप हो जाना। संन्यासी के शब्दकोश में 'मैं' और 'मेरा' यह शब्द हैं ही नहीं। न मेरा स्वार्थ है और न मेरा लोभ ही। जो कुछ है, परमेश्वर का है, मेरा नहीं। मैं तो सेवक मात्र हूँ। मुझे अपनी कोई वासना या अहंकार नहीं। वास्तव में इसीका नाम संन्यास है, पर बीच के जमाने में लोगों ने उल्टा ही अर्थ समझ लिया। वे न केवल जनसेवा से विमुख हो गये, बल्कि जनता का तिरस्कार भी करने लगे। उन्होंने 'संन्यास' का अर्थ लगाया, लोगों की तरफ से अपना मुँह मोड़ लेना। पर अगर माता बच्चे का तिरस्कार करने लगे, तो बच्चे की हालत क्या होगी ? और फिर माता का भी क्या हाल होगा ? माता प्रेम छोड़ेगी, तो बच्चा रक्षणहीन हो जायगा। साथ ही जिस माता ने प्रेम खोया, उसने अपना मातृत्व ही खो दिया। बीच के जमाने में अद्वैत-सम्प्रदाय की यही हालत हो गयी।

सेवा का सर्वोत्तम आधार, अद्वैत

उस हालत में रामकृष्ण ने इस विचार का उद्धार किया। उन्होंने अद्वैत के साथ दरिद्रनारायण की, भूतमात्र की सेवा जोड़ दी। यह भूत-सेवा ईसाई-धर्म में चल पड़ी थी, उसीका आधार लिया गया। ईसा की आज्ञा से उसके संबंध में लोगों में श्रद्धा उत्पन्न हुई। इस तरह ईसा के व्यक्तित्व के साथ जिनका हृदय जुड़ गया, उन्होंने भूतदया का काम उठा लिया। किन्तु अद्वैत के आधार पर भूतदया का किला और भी मजबूत बनता है। जहाँ अद्वैत नहीं, वहाँ हम सेवा करनेवाले हैं और जिनकी सेवा करते हैं,

वे अलग-अलग हो जाते हैं, दोनों का भेद बना रहता है। किन्तु अद्वैत में वह भेद ही मिट जाता है। याने जिसकी हम सेवा करते हैं, उसे अपने से अलग नहीं समझते, मानो हम अपनी ही सेवा करते हैं। इसीलिए अहंकार का भी लेश नहीं रहता। सेवा में हमने किसी दूसरे पर उपकार नहीं किया, अपनी ही सेवा करते हैं, तो अहंकार को स्थान ही कहाँ! इस तरह जहाँ निरहंकार सेवा की जाती है, वहाँ उसका बोझ नहीं रहता, थकान नहीं रहती।

हम समझते हैं कि इस सेवा-विचार का उद्गम-स्थान ईसाई-धर्म में है। किन्तु उससे वह प्रेरणा लेकर रामकृष्ण ने उसे अद्वैत का अतिसुंदर आधार दिया। उन्होंने हिन्दुस्तान के समाज को समझाया कि ईसा का उदाहरण लेकर भूतमात्र की सेवा करने में जितनी स्फूर्ति आयेगी, उससे बहुत ज्यादा स्फूर्ति तब आयेगी, जब कि हम जिनकी सेवा करते हैं, उन्हें अद्वैत तत्त्व से एक ही समझेंगे। इसीलिए अद्वैत और सेवा का यह मिश्रण अत्युत्तम रसायन बन गया। उसके परिणामस्वरूप रामकृष्ण-मिशन के लोग इधर-उधर सेवा करते दीख पड़ते हैं।

अद्वैत, जनसेवा और भक्ति का योग

इसी विचार को महात्मा गाधीजी ने और भी व्यापक बनाया। हम ग्राम की सेवा करते हैं, वहाँ का मैला उठाते हैं, तो परमेश्वर की भक्ति ही करते हैं। भंगी का काम तो रामकृष्ण ने भी किया था और महात्मा गांधी ने भी किया। दोनों का उसमें विचार एक ही था। इस तरह हिन्दुस्तान का भक्तिमार्ग और अद्वैत बहुत ही पुष्ट हो गये। नहीं तो बीच में जैसे अद्वैत मार्ग शुष्क हो गया था, वैसे ही भक्तिमार्ग भी शुष्क हो गया था। भक्तिमार्गी लोग मूर्तिपूजा मे ही भक्ति समाप्त कर देते थे। मूर्ति को जगाना, स्नान कराना, खिलाना और सुलाना, इस तरह से मूर्ति की सेवा मे ही उन्होंने भक्ति की परिसमाप्ति कर दी थी। परिणामस्वरूप वे भी लोक विमुख बन गये। भूखों को खिलाने के बजाय मूर्ति को खिलाने का नाटक करने में ही वे अपनी भक्ति की इतिश्री समझते थे। याने वह एक प्रकार का नाटक ही होता था। मूर्ति को तो भूख लगती नहीं थी, फिर भी उसे खिलाते, तो स्पष्ट ही वे अपनी दयावृत्ति को धोखा देते थे।

मेरी कल्पना है कि हिन्दुस्तान में मूर्तिपूजा सारे समाज के मार्गदर्शन के लिए

ही चली। गाँव के बीच एक मंदिर रहता है, मंदिर के भगवान् सुबह चार बजे जगते हैं, तो सभी लोगों को सूचना मिलती है कि 'भाइयो, तुम भी जाग जाओ।' फिर दोपहर में भगवान् के भोजन के समय घंटी बजती है, पूजा होती है, तो सब लोग दर्शन के लिए आते हैं, बाद में घर जाकर भोजन करते हैं। फिर शाम को आरती होती है और उसके बाद कहा जाता है कि भगवान् सोते हैं, तो लोग भी उन्हें प्रणाम करके सोने के लिए चले जाते हैं। इस तरह गाँव का कुल कार्यक्रम जिस तरह होना चाहिए, उसी तरह मंदिर में होता है, वह एक तरह का 'किण्डर गार्टन' है। यानी उससे गाँव के जीवन का कुछ नियमन होता था।

सारांश, इस तरह मूर्तिपूजा का बहुत कुछ उपयोग होता था। किन्तु उतने में ही उसकी परिसमाप्ति हुई और उससे दुखियों के दुःख निवारण नहीं हुए। फलतः वह भक्तिमार्ग लोक-विमुख हो गया। भक्तिमार्ग का भी उत्तम विकास तभी होता है, जब वह अद्वैत और जनसेवा के साथ जुड़ता है। भक्ति के साथ अद्वैत और जनसेवा के जुड़ने पर ही भक्तिमार्ग परिपूर्ण होता है।

भूदान-यात्रा भी इसी प्रवाह में

यह सारा जीवन-विचार इस सदी में और गयी सदी में हिन्दुस्तान में हुआ। इसे आधुनिक समाज की देन समझना चाहिए। इसकी प्रेरणा रामकृष्ण ने दी। हम समझते हैं, आज की हमारी भूदान-यात्रा इसी प्रवाह में चल रही है। इसमें गरीबों की सेवा तो स्पष्ट ही है। इसमें परमेश्वर की भक्ति है, क्योंकि अंतर की प्रेरणा प्रकट होती है। इसमें हम मालकियत मिटाने की बात करते हैं, हम मालिक नहीं, समाज मालिक है; इसलिए अद्वैत भी इसमें आ जाता है। हम तो समाज के अंगमात्र बन जाते हैं, इसलिए अद्वैत का सुन्दर दर्शन इसमें होता है। इस तरह जब एक विचार परिपूर्ण होता है, तब उसमें से जीवन के कार्य की प्रेरणा मिलती है। इसलिए आज के दिन अपने गुरु रामकृष्ण परमहंस का हमने कृतज्ञतापूर्वक स्मरण किया।

अंनकनूर (मद्रास)
१९-५-'५६

सहूलियत का जीवन खतरे का

: ४० :

मैं मानता हूँ कि हमारा हिन्दी-प्रचार केवल भाषा का प्रचार न होना चाहिए। जब सरकार अपनी हो गयी, तो हर प्रान्त में हिन्दी की पढ़ाई आज नहीं तो कल शुरू करेगी ही। हिन्दी का विरोध पहले होता था। आज भी कहीं होता होगा, तो वह भी मिटेगा। स्कूल, कॉलेज में प्राथमिक श्रेणी के बाद हिन्दी जरूर पढ़ाई जायगी। स्कूल के अलावा भी लोग इसका अध्ययन करेंगे। जब तक हिन्दी को मान्यता नहीं थी, तभी तक हमें उसका प्रचार करना था। किन्तु अब तो उसे एक स्थान मिल गया, मान्यता मिल गयी। अब स्वराज्य के बाद भी उसी दृष्टि से हिन्दी सिखाने में विशेषता नहीं रही। स्वराज्य के पहले जो लोग केवल हिन्दी सिखाते थे, वे जरूर क्रान्ति करते थे। उससे लोक-मानस में क्रान्ति होती थी। सीखनेभर से ही इतना काम होता था। पर स्वराज्य के बाद अब उसका रूप बदलना चाहिए।

आश्रमान्तरण भी क्रान्ति

मनुष्य जवान होनेपर शादी करता है, तो क्रान्ति होती है, पर शादी के बाद उसी अवस्था में बने रहने से क्रान्ति नहीं होती। गृहस्थाश्रम के बाद वानप्रस्थाश्रम लेना चाहिए। इस तरह क्रान्ति का स्वरूप ही उत्तरोत्तर बढ़ता है। गृहस्थाश्रम में जिम्मेवारी आती है, लड़कपन का आलसी जीवन छोड़ना पड़ता है, कष्ट उठाना है, तो क्रान्ति होती है। किन्तु बाद में संसार जम जाय और सहूलियत हो जाय, तो उसे छोड़कर वानप्रस्थाश्रम में जाना ही क्रान्ति है।

दयालु शास्त्रकार !

शास्त्रकार इतने दयालु हैं कि वे किसीको चैन से बैठने नहीं देते। माता-पिता बच्चे का पालन करते हैं। फिर बच्चे को कोई दुःख रहे, तो शास्त्रकार उसे गुरु के घर भेजना चाहते हैं। वे उसे दुःख और तकलीफ में डालते हैं, तभी उन्हें

समाधान होता है। गुरु के घर में अध्ययन होता है, गुरु का प्रेम मिलता है, उसकी छत्रछाया होती है, सरल जीवन बनता है। फिर उसमें भी शास्त्रकार को समाधान नहीं होता। इसलिए उसे गृहस्थाश्रम में भेजना चाहते थे। गृहस्थाश्रम में बीमारों की सेवा, अतिथि सेवा, नागरिक की जिम्मेवारी का कार्य आदि उसे करना पड़ता है। धीरे धीरे फिर उस जीवन में आराम हो जाता और उसका जीवन सहूलियत का बनता है। फिर वह शास्त्रकार बेचैन होता है और वह उससे कहता है कि आसक्ति छोड़ो, छोटे भाई को अपना घर सौंप दो और घर छोड़कर बाहर आओ। गृहस्थ बनकर घर मे मस्त रहो। यह कहकर उसे और तकलीफ मे डाल देता है। वह गाँव के बाहर जगल मे वानप्रस्थाश्रमी बनता है। विद्यार्थियों की सेवा करता और शिक्षक का जीवन बिताता है। फिर उसे आराम होता है। वह बूढ़ा हो जाता है, तो शास्त्रकार कहते है कि अब घूमने निकलो। बूढ़े को बाहर निकलना चाहिए, उसे एक जगह रहने की इजाजत नहीं। वह तीन दिन से ज्यादा एक जगह नहीं रह सकता। इसलिए उसे दूर भगाता है। यही उसका प्रेम है, जो मनुष्य को एक जगह से दूसरी जगह भेजता है। शास्त्रकार कितने दयालु हैं! आजकल माँ बाप को लगता है कि घर में ही रहें। किन्तु शास्त्रकार को चिन्ता रहती है कि बच्चों की सेवा माता पिता न लें, क्योंकि बच्चों के भी बच्चे हैं। उनकी सेवा करने के लिए भी तो उन्हें समय चाहिए।

अगर जिन्दगी मे ऐसी व्यवस्था रहे, तो बुद्धि परिपक्व होती है, मनुष्य प्रज्ञावान् बनता है, उसे भय नहीं रहता। सब प्रकार का अनुभव आता है। दीपक जितना घना अन्धकार हो, उतना ज्यादा चमकता है, उसे ज्यादा उत्साह आता है। इसलिए जहाँ जायगा, वहाँ अपने तेज से प्रकाश फैलावेगा। ऐसी तेजस्विता मनुष्य मे आनी चाहिए। उसे कभी दीन न बनना चाहिए। शास्त्रकार की निष्ठुरता में मुझे करुणा दीखती है। कोई कहे : 'बाबा, आपको अब ठहरना चाहिए। एक जगह आराम लेना चाहिए। आपको सेवा की जरूरत है।' तो मुझे ऐसा लगेगा कि वह शख्स मेरा दुश्मन है, चाहे वह प्रेम से बात करता हो। इससे उल्टे कोई अगर मुझे कहेगा : 'यात्रा में भी अब तुम्हें सुख मिलता है, इसलिए वह आराम का हो गया। इसलिए अब तुम्हें दुबारा शाम को भी

घूमना चाहिए। एक दिन एक जगह रहने के बदले एक दिन दो जगह रहो', तो बाबा को लगेगा कि यह शख्स मेरा मित्र है। मुझे दीन नहीं बनने देता, तेजस्वी बनाता है।

माता कौशल्या की सदिच्छा

तुलसीदासजी ने वर्णन किया है ! जब रामचन्द्र को राज्याभिषेक होनेवाला था, उसके पहले पाँच मिनट उन्हें मालूम होता है कि वन में जाना है। वे ऐसे खुश होते हैं, मानो कोई नव-गजेन्द्र कस करके लाया हो, उसे जकड़ रखा हो और एकाएक अब वह अपनी जंजीर फेंककर जंगल में चला जाता हो। उनके उर में आनन्द होता है कि अब मुझे उस जंगल में जाना है। वे मानते हैं कि जंगल ही मेरा घर है। फिर माता के पास इजाजत लेने जाते हैं। माता को वह खबर सुनकर धक्का लगता है, पर उसने अपने को सँभाला है और पूजा कर रही है। वहाँ रामचन्द्रजी पहुँचते हैं, तो वह कहती है : "तेरे पिता की आज्ञा है और तेरी दूसरी माँ की इच्छा है, तो जरूर जाओ। आखिर हम लोगों को जंगल जाना ही पड़ता है। राजवंश का वह धर्म ही है। पर तुझे जवानी में जाना पड़ रहा है, इतना ही फर्क है।" ऐसी भाषा कौशल्या माता बोलती है। यह प्रेम का लक्षण है कि माता यह इच्छा करे कि मेरा लड़का निस्तेज न बने, त्याग करे।

कष्ट, त्याग और दुःख में खतरा नहीं, जितना सुख में है। इसे पहचानना चाहिए। दुःख में सहानुभूति मिलती है, तो खतरा है। लेकिन इन दिनों यह खतरा बतानेवाला न बाप मिलता है, न मित्र और न माँ। बल्कि सुख मिलने पर अभिनन्दन करने के लिए सब मिल जाते हैं। पर शास्त्रकार दयालु हैं। वे मानव को बचा लेते हैं, निस्तेज नहीं होने देते।

सहूलियत के जीवन में खतरा

मैं कहना चाहता हूँ कि जब अंग्रेजी राज था, उस हालत में दक्षिण भारत में जाकर हिन्दी का प्रचार करने में जीवन तेजस्वी बनता था, क्योंकि वह एक मिशन था। तब एक एक तमिल भाई को हिन्दी सिखाना भी क्रान्तिकारी काम था।

लेकिन अब स्वराज्य मिल गया, हिन्दी को मान्यता मिल गयी। हर जगह उसके शिक्षक मिलते हैं। अब उन्हें हासिल कराने में कोई तेज नहीं रहा। फिर भी हम वही करते रहेंगे, तो हम निस्तेज बनेंगे, राजाश्रित बनेंगे। इसलिए हमें खतरा मालूम पड़ रहा है।

सन् १६४५ में हम वेलूर मे आखिरी जेल में थे। वहाँ सब प्रकार की सहूलियतें मिलती थीं। लोगों के माँगने पर सरकार की ओर से मदद मिलती थी। हमने कहा : 'हमारे आन्दोलन को तेजोहीन बनाने के लिए यह बेहतर तरीका है। हम सहूलियत माँगें और वे देते रहें, यह हमें अच्छा नहीं लगा। उससे हमारा जीवन निस्तेज बनता था। उधर बंगाल में अकाल पड़ा था, लेकिन इधर हम चौपाई, कुरसी माँगते। अगर वह न मिले, तो उसके लिए झगड़ा करते और उसे लड़ने का नाम देते। आखिर सरकार कबूल कर ही लेती, तो लगता कि हमारी विजय हुई, फतह हुई। पर इसमें कैसी विजय और कैसी फतह? इसमें तो निरी मूर्खता और हमारी पराजय थी। सारांश, जीवन सहूलियत का कभी न बनना चाहिए। यहाँ पहले देखा था, लोग झोंपड़ियों मे रहते थे। अब सहूलियत हो गयी, इसलिए सहूलियत में रहते हैं।

नित्य नूतन तपस्या आवश्यक

इसका यह अर्थ नहीं कि हमें इसका मत्सर है। किन्तु जैसे कालिदास ने कहा है :

"क्लेशः फलेन हि पुनः नवतां विधत्ते"

जहाँ एक तपस्या पूरी होती, पूर्ण होती है, वहाँ दूसरी शुरू होनी चाहिए। क्लेश के बाद फल मिलता है, तो दूसरा क्लेश शुरू होना चाहिए, तभी वह सच्चा साधक सिद्ध होगा। वेदों में पर्वतारोहण का वर्णन आया है। एक पहाड़ हम चढ़ते हैं। ऊपर देखते हैं, तो आभास होता है कि यह उस अमुक जगह पर खतम हुआ है। लेकिन जब वहाँ पहुँचते हैं, तो दीखता है कि उतना ही ऊँचा दूसरा पहाड़ है। फिर उसे भी चढ़ने लगते हैं। उसके बाद तीसरा पहाड़ दीखता है। इस तरह ऊपर-ऊपर चढ़ना आरोहण है और हमें आरोहण ही करना है।

हम कहना चाहते हैं कि हमारे रचनात्मक कार्यकर्ताओं को तपस्या के बाद सहूलियत मिली है, तो अब नयी तपस्या करनी चाहिए। तभी हमारा जीवन तेजस्वी बनेगा।

हमारा तो एक मिशन है। पहले हिन्दी का प्रचार करना हमारा काम था। लेकिन हिन्दी-प्रचार सर्वोदय-विचार का एक अंग रहा। अब वह सरकार के पास चला गया। इसलिए अब उसमें कुछ ज्यादा कहने का नहीं रहा। आपने अपने उस मासिक पत्र में 'रसखान' की चर्चा की है, लेकिन हमें उसमें रुचि नहीं आती। अब हमें जरा बाहर देखना चाहिए। हमें शोषण-हीन और शासन-मुक्त समाज बनाना है। इसलिए साम्ययोग क्या है ? इसके विचार का प्रचार करना होगा। और हिन्दी भाषा का तो आपको एक निमित्त मिला, इसलिए उसे साधन मानना चाहिए। उस साधन को लेकर आप सर्वोदय-विचार का प्रचार कर सकते हैं।

आपने देखा कि हमने पहले 'तिरुवाय' ग्रन्थ पढ़ा। तेलुगु में 'पोतना' का भागवत पढ़ा। उड़ीसा मे 'जगन्नाथ' का भागवत पढ़ा। हिन्दी मे 'तुलसी-रामायण' पढ़ा। तात्पर्य पानी मे रहनेवाली मछली हमेशा पानी में ही रहनी चाहिए। हम आध्यात्मिक प्रेमी हैं, तो हमें हमेशा वही लेना चाहिए। केवल भाषा आने की दृष्टि न होनी चाहिए। आध्यात्मिक प्रेरणा है, तो उस तरह का साहित्य पढ़ना चाहिए। आपका पत्रक हम पढ़ते हैं। उसमें फलाना कवि यह कहता है, फलाना कवि यह, यह चर्चा मामूली है। वह कुछ गलत है, ऐसी बात नहीं। फिर भी उसमें हमारी तपस्या नहीं है। हम तो यही चाहते हैं कि हमे नया काम, नया कार्यक्रम करना चाहिए, हममें नयी स्फूर्ति आनी चाहिए।

सर्वोदय-विचार की अनेक शाखाएँ

मेरा कहना यही है कि सर्वोदय-विचार एक परिपूर्ण विचार है। उसकी अनेक शाखाएँ हैं, जो खूब फैलनी चाहिए। हमें इसी दृष्टि से सोचकर कोई योजना करनी चाहिए। भूदान एक क्रान्तिकारी कार्य है, इसे आपको उठाना होगा। आप यह न समझें कि हम हिन्दी के ही प्रचारक हैं। जब आप यह सोचेंगे कि

हम सर्वोदय विचार के प्रचारक हैं और हिन्दी-प्रचार उसका साधन है, तो आपके काम का रूप ही एकदम बदल जायगा। अवश्य ही यह काम आप सभी न कर पायेंगे। कुछ हिन्दी-प्रचार का काम करेंगे, तो कुछ ऐसे होंगे, जो सर्वोदय-प्रचार के लिए बाहर निकलेंगे। जो हिन्दी-प्रचार का काम करेंगे, उन्हें यहीं रहना होगा। लेकिन जो बाहर निकलेंगे, वे सर्वोदय विचार का व्रत और एक मिशन लेकर ही घूमें। तब देखें कि आपके जीवन में कैसी क्रान्ति आती है।

मद्रास
१६-५-'५६

रामानुज का महान् कार्य : ४१ :

यह रामानुज का स्थान है, जो न सिर्फ तमिलनाड के लिए, बल्कि समस्त भारत के लिए पवित्र है। यूरोप में ईसामसीह का जो स्थान है, वही रामानुज का तमिलनाड में है; न केवल तमिलनाड में, बल्कि समस्त भारत में है। तमिलनाड में तो रामानुज अद्वितीय ही हैं।

भक्ति के क्षेत्र में अद्वितीय स्थान

जितने भक्ति-संप्रदाय हुए, सब पर रामानुज का प्रभाव है। उत्तर हिन्दुस्तान के सबसे बड़े दो महापुरुष तुलसीदास और कबीर, दोनों रामानन्द के शिष्य थे और रामानंद रामानुज की ही परंपरा के रहे। इस तरह हिन्दुस्तान के कुल भक्ति-मार्ग पर ज्यादा-से-ज्यादा असर रामानुज का हुआ है। यहाँ के तत्त्वज्ञान पर ज्यादा-से-ज्यादा असर भगवान् शंकराचार्य का है, जो केरल के हैं। तत्त्व-विचार के क्षेत्र में शंकराचार्य और भक्ति के क्षेत्र में रामानुज हिन्दुस्तान में अद्वितीय हैं। यहाँ जो बहुत-से संत पुरुष हो गये, उन पर इन्हीं दोनों का प्रभाव है। आप जानते हैं कि रामानुज के मन में जातिभेद नहीं था। सबसे निचली जाति के लोग भी उनके शिष्यों में थे और उनके साथ रामानुज का समान बर्ताव था।

प्रवर्तक सांप्रदायिक झगड़ों के जिम्मेवार नहीं

मैं नहीं जानता कि रामानुज संप्रदाय के लोगों में जातिभेद कहाँ तक है। लेकिन हम लोगों को दूर से जो मालूम है, वह यही है कि रामानुज-सम्प्रदाय में जाति-भेद है। हम जानते हैं कि रामानुज-संप्रदाय में भी "बडगल" और "तैंगल" ये दो मार्ग निकले। इस कारण विचार-भेद और झगड़े हुए। हर सम्प्रदाय में यही हुआ करता है। मुसलिम-धर्म में भी शीआ और सुन्नी और ईसाई-धर्म में प्रोटेस्टेंट और कैथोलिक के मतभेद और विचार-भेद पाये जाते हैं। बुद्ध-संप्रदाय में भी हीनयान और महायान, ये दो पंथ निकले थे। इस तरह हर धर्म और हर संप्रदाय की यह दशा है। किन्तु हीनयान और महायान के लिए भगवान् बुद्ध जिम्मेवार नहीं, प्रोटेस्टेण्ट और कैथोलिक के झगड़े के लिए ईसामसीह जिम्मेवार नहीं और न शीआ-सुन्नी के झगड़ों की ही जिम्मेवारी मुहम्मद पर आती है। इसी प्रकार रामानुज के संप्रदाय के झगड़ों की जिम्मेवारी रामानुज पर नहीं है।

स्वतन्त्र धर्म-स्थापना से दूर

रामानुज की सबसे बड़ी बात यह थी कि वे 'संप्रदाय' स्थापन करना न चाहते थे। ईश्वर की भक्ति और धर्म-विचार स्थापन करने की ही उनकी इच्छा थी। लेकिन आज उनके भक्त कानून भी बनाते और राज्य भी चलाते हैं। उन्होंने बाहरी कानून के बल से काम करना नहीं चाहा। इसलिए उनकी तुलना ईसामसीह से नहीं होती। ईसामसीह ने ईसाई-धर्म खूब आगे बढ़ाया। इसी प्रकार से रामानुज का विचार-प्रचार भी राजाओं ने किया और उन्होंने कई राज्य-व्यवस्थाओं में रस लिया। फिर भी जो समाज-सुधारक होते हैं, वे अंतर से ही सुधार चाहते और उसके लिए जनशक्ति बढ़ाते हैं। इसीलिए गौतम बुद्ध के हाथ में राज्य था, तो उन्होंने उसे छोड़ दिया। अगर उन्हें यह मालूम पड़ता कि राज्य-शक्ति से हम क्रान्ति कर सकते हैं, तो वे राज्य क्यों छोड़ते ! उन्होंने समझ लिया कि जन-शक्ति अलग है और सरकार अलग। ठीक यही बात रामानुज की है। किन्तु रामानुज की तुलना बुद्ध के साथ भी नहीं हो सकती,

क्योंकि बुद्ध के बाद उनके शिष्यों ने और ईसा के शिष्यों ने स्वतन्त्र धर्म बनाये। पर रामानुज के शिष्यों में यह भावना नहीं रही कि हम स्वतन्त्र धर्म-स्थापन करें। जैसे ईसा के नाम पर ईसाई-धर्म चला और बुद्ध के नाम पर बुद्ध-धर्म या मुहम्मद के नाम पर मुसलिम-धर्म चला, वैसे रामानुज के नाम पर 'रामानुजी धर्म' नहीं बना। इसलिए हम रामानुज की महिमा और अधिक मानते हैं। उन्होंने समाज में सुधार करना चाहा और भगवान् की भक्ति की महिमा गाकर वे छूटे। इसलिए उनकी महिमा बहुत ही अद्वितीय है।

राजसत्ता छोड़ गीता का आश्रय

जिस जमाने में वे पैदा हुए, उस जमाने में कट्टर जाति-भेद था। किन्तु उन्होंने उसे हटाने की कोशिश की। उस समय राज्यसत्ता का बहुत जोर था, फिर भी रामानुज ने गीता का आश्रय लिया। बड़े-बड़े राजा भी उनके शिष्य हुए, पर उनका जितना कार्य हुआ, सब भिक्षा पर ही हुआ।

आपको वह कहानी मालूम ही होगी। रामानुज एक घर के सामने भिक्षा माँगने गये, तो दरवाजा बन्द हो गया। तो वहाँ उन्होंने गीता गायी। जहाँ उनका वह भजन समाप्त हुआ, वहीं दरवाजा खुला और अन्दर से एक स्त्री आयी। रामानुज ने समझ लिया कि वह लक्ष्मी है और उन्होंने उससे भिक्षा ले ली। उन्होंने जो गीत गाया, वह हमें बहुत प्रिय लगा। मैंने उसे कंठ भी कर लिया है।

पेरम्बुदुर (चिंगलपेट)
२२-५-'५६

भगवान् गौतम बुद्ध के निर्वाण को आज ढाई हजार साल हो रहे हैं। इसलिए सारी दुनिया में उनका उत्सव मनाया जा रहा है। विशेषकर एशिया-खण्ड के बहुत से देशों में, जो बौद्ध-धर्म को माननेवाले हैं, बड़े उत्साह से यह उत्सव हो रहा है। हमारे इस देश में भी जगह-जगह यह उत्सव मनाया जा रहा है।

गौतम बुद्ध का जन्म, निर्वाण, ज्ञानप्राप्ति का स्थान और उनका विहार, सभी हिन्दुस्तान में हुआ है। इसलिए यह उत्सव हिन्दुस्तान में बड़े प्रेम से मनाया जा रहा है। सरकार भी इसमें भाग ले रही है। हमारे देश में जो अनेक सत्पुरुष हो गये, निस्सन्देह उनमें बुद्ध भगवान् का विशेष स्थान है। धर्म-प्रचारक एक हजार साल बुद्ध का सन्देश इस कोने से उस कोने तक सतत फैलाते रहे। आपका यह कांची भी एक जमाने में बौद्धों का स्थान रहा। आज यद्यपि ऊपर-ऊपर देखनेवालों को दीखता है कि हिन्दुस्तान में बौद्ध-धर्म नहीं है, पर यह केवल भासमान है। यहाँ बुद्ध भगवान् की मुख्य शिक्षा सारी-की-सारी आत्मसात् कर ली गयी है। उन्होंने तीन बहुत बड़ी बातें हमारे सामने रखीं।

वैर से वैर नहीं मिटता

एक स्पष्ट विचार उन्होंने यह रखा कि वैर से कभी वैर शान्त नहीं हो सकता। यह कोई नयी बात न थी। उनके पहले भी यह बात हिन्दू-धर्म के मूलग्रन्थ में हम देखते हैं। लेकिन बुद्ध ने अत्यन्त स्पष्टता के साथ किसी प्रकार के अपवाद के बिना इसे रखा। निरपवाद धर्म के तौर पर उन्होंने यह बात दुनिया के सामने रखी। यही बात ईसामसीह ने ५०० साल बाद स्पष्ट शब्दों में रखी। और उसे सन्तों ने भी बार-बार दोहराया है। फिर भी दुनिया में लोग निःसंशय न बन सके। वे सोचते हैं कि मौके पर वैर का प्रतिकार वैर से ही करना पड़ता है। वह टल नहीं सकता। लेकिन अब विज्ञान के कारण लोगों के मन में इस बारे में शंका उत्पन्न हो गयी है कि हिंसा से

प्रश्न कहाँ तक हल होगा? इसलिए इस समय बुद्धदेव का यह सन्देश बड़ा ही महत्त्व रखता है। दीख रहा है कि उसके अमल के लिए दुनिया तैयार हो रही है। बीच में हजार साल नाहक नहीं गये, लोग चिंतन-मनन करते आये हैं। लेकिन अब समय आया है कि सामाजिक तौर पर उसका अमल कैसे किया जाय, यह सोचा जाय। अब निर्वैर प्रतिकार सूझ रहा है और उसका भी एक शास्त्र सूझ रहा है। हम उम्मीद करते हैं कि बुद्ध भगवान् का अवतार-कार्य अब शुरू हो रहा है।

तृष्णा बढ़ाने से दुःख बढ़ेगा

दूसरी बात हमारे सामने उन्होंने यह रखी कि हम तृष्णा बढ़ाते जायेंगे, तो दुःख बढ़ेगा। इसलिए उत्तरोत्तर आवश्यकताएँ बढ़ाते चले जाने से लाभ नहीं। यह बात सन्तों ने दुहराई है और धार्मिक पुरुषों ने भी मानी है। लेकिन कहना पड़ता है कि इस बात के लिए अभी लोकमानस तैयार नहीं है। हिंसा मिटनी चाहिए, यह भावना तो लोगों में आयी है; पर तृष्णा न बढ़नी चाहिए, यह बात निश्चय के तौर पर नहीं आयी है। बल्कि इससे उल्टी आशा करते हैं कि हम आवश्यकता खूब बढ़ा सकते हैं, फिर भी निर्वैर जीवन बिताने की युक्ति निकाल लेंगे।

मैं मानता हूँ कि यह मृगजल है। अन्त में यही सिद्ध होगा कि तृष्णा से वैर अवश्य बढ़ेगा। हर हालत में तृष्णा बढ़ाने से दुःख ही पैदा होगा। यह दूसरी बात है कि परिस्थिति के अनुसार साधन और औजार में फर्क पड़े। पहले पालकी में बैठने की सहूलियत थी। इन दिनों हवाई जहाज में बैठते हैं। लेकिन पालकी के लिए तृष्णा थी और वह सताती थी, वैसे ही हवाई जहाज में बैठने की तृष्णा भी होगी और समाज को सतायेगी। पहले लोगों को गहने पहनने की वासना थी। मान लीजिये, अब उसी तरह हम गहने पहनेंगे, तो जंगली मालूम होंगे। इस तरह वह वासना दूर हो जायगी, ऐसी आशा करते हैं। किन्तु उसके बदले कैमेरा होना चाहिए, यह वासना भी तकलीफ देगी। तात्पर्य, बाह्य पदार्थ के उपयोग के विषय में जीवन उत्तरोत्तर बदलता चला जायगा, इसमें हर्ज

नहीं। किन्तु वासना बढ़ाने से अवश्य पतन होगा। जीवन सुधारने का प्रकार बाहर से जरूर करना चाहिए, पर वह तृष्णारहित हो। मुझे डर है कि यह विचार अभी स्पष्ट रूप से लोगों के सामने नहीं आया। जब मनुष्य को निर्वैर-वृत्ति की प्यास लगेगी और मैत्रीभाव की जरूरत मालूम होगी, तभी तृष्णारहित होने की प्यास लगेगी।

बुद्धि की कसौटी की आवश्यकता

तीसरी बात बुद्ध भगवान् ने हमारे सामने यह रखी कि हर चीज को बुद्धि की कसौटी पर ही कबूल करना चाहिए। तीनों सिखावनें हिन्दुस्तान के लिए नयी नहीं हैं। उन्हें विचार के तौर पर हिन्दू-धर्म ने स्वीकार कर लिया है। वे चीजें हमारे आचरण में नहीं आयीं, पर वह हमारे विचार में अवश्य हैं और हिन्दू-धर्म ने उसे उत्तम अश भी माना है। अगर हम ठीक ढंग से देखें, तो स्थितप्रज्ञ के लक्षणों में भी यही चीज है। कहना यह चाहिए कि बौद्ध-साहित्य में जिन तीन शब्दों का बार-बार उपयोग आता है, वे तीनों शब्द स्थितप्रज्ञ के लक्षणों में आते हैं। प्रज्ञा, भावना और निर्वाण, ये तीनों शब्द स्थितप्रज्ञ के लक्षणों में आते हैं।

बौद्धधर्म में इन तीन शब्दों का जो संग्रह किया गया, उसका मूळ आधार गीता है। इसमें जो निर्वैरता का भाव है, वह सारा गीता के 'भावना' शब्द में आ जाता है। उसका अर्थ भक्ति और प्रेम भी है। उसके बिना शान्ति नहीं हो सकती, ऐसा स्थितप्रज्ञ के लक्षण में कहा गया है। तृष्णा के निरसन की बात तो बुद्ध भगवान् ने बार बार कही। 'पहले से आखिर तक कामना से मुक्ति' का अर्थ है, निर्वाण। तीसरी बात स्पष्ट शब्दों में कही गयी। प्रज्ञा पर बहुत जोर दिया गया है। 'स्थितप्रज्ञ' शब्द ही बताता है कि प्रज्ञा स्थिर किया हुआ मनुष्य। इस तरह यह सिखावन हमारे समाज में मान ली गयी है। उस पर अमल नहीं हुआ, परन्तु होना चाहिए। इसलिए मान्यता के निदर्शन के तौर पर हमने बुद्ध भगवान् को सर्वोत्तम अवतार माना है।

बुद्ध भारत की दुनिया को सर्वोत्तम देन

बुद्ध भगवान् की सब सिखावनें 'धम्मपद' नामक ग्रन्थ में आती हैं। 'धम्मपद' में हमें एक भी गाथा ऐसी नहीं मिली, जिसे एक हिन्दू के नाते मैं कबूल न करूँ। यह बात मैं सामान्य विचारक के नाते नहीं, एक हिन्दू के नाते बोल रहा हूँ। यह सही है कि बुद्ध भगवान् के शिष्यों ने सृष्टि-विज्ञान, उसकी उत्पत्ति के विषय में काफी बातें कही हैं। उसमें तत्त्वज्ञान का अंश था और उसका खंडन-मंडन यहाँ हुआ। लेकिन वह इस अर्थ में नहीं कि बुद्ध भगवान् ने जो धार्मिक सिखावन कही, उस पर आक्षेप था। *यह हिन्दुस्तान की प्राचीन विशेषता* है और स्वतन्त्र बुद्धिमत्ता का लक्षण है कि यहाँ स्वतंत्र विचार चला। संस्कृत भाषा का जिसे ज्ञान है, वह इस विचार-स्वातंत्र्य की महिमा जानता है। इतनी विचार स्वतन्त्रता शायद ही दूसरी भाषा में मिले। कपिल, कणाद आदि महान् *तत्त्वज्ञानियों का विचार अलग-अलग था, उनका भी खूब खंडन-मंडन चला,* किन्तु उनका धार्मिक विचार माना गया है, उस पर आक्षेप नहीं है। इसी तरह बुद्ध के विचार की काफी छानबीन और और खंडन-मंडन हुआ। किन्तु भगवान् बुद्ध ने जो सामाजिक, नैतिक और धार्मिक शिक्षा दी, उसके लिए अगर कुछ भी विरोध होता, तो बुद्ध की गणना अवतारों में कभी न होती।

आज हम गौरव के साथ कहते हैं कि हिन्दुस्तान की तरफ से दुनिया को अगर कोई सर्वोत्तम देन है, तो वह बुद्ध भगवान् की है। हम कहना चाहते हैं कि बुद्ध भगवान् यहाँ के समाज के सर्वोत्तम प्रतिनिधि थे। उनकी तालीम यहाँ के सत्पुरुषों ने और शैव-वैष्णवों ने भी अच्छी तरह मान्य कर ली है। जो हिन्दुस्तान का इतिहास जानता है, उसे मालूम है कि विचारों की कशमकश बहुत चली, तो भी बौद्ध-धर्म का जो सर्वोत्तम अंश था, वह हमने पूरा मान्य किया। अगर 'धम्मपद' को माननेवाला ही बौद्ध कहा जाय, उसे ही बौद्ध कहलाने की कसौटी मानी जाय, तो मुझे कहने में बिलकुल हिचक नहीं कि प्रत्येक हिंदू अपने को बौद्ध कह सकता है। इस तरह बुद्ध की सिखावन हमने परिपूर्ण स्वीकार कर ली है। और वह हमारे लिए और दुनिया के लिए तारक है, ऐसा हमारा मन्तव्य है।

समन्वय की जरूरत

अब हमें करने की चीज यही है कि बुद्ध भगवान् ने जो जीवन-चर्या दी है, उसके साथ एकरूप हों। उसके साथ यहाँ का वेदान्त, ब्रह्मविद्या का कितना मेल है, यह जानें। इन दोनों के बीच कोई विरोध तो नहीं है? हमारा विश्वास है कि ब्रह्मविद्या के आधार पर करुणा, भूतदया और निर्वैरता की जो सिखावन दी गयी, वह अच्छी तरह चल सकी। इसीलिए हमने कहा था कि वेदान्त और गौतम बुद्ध के विचार का समन्वय हिन्दुस्तान के लिए सर्वोत्तम रसायन सिद्ध होगा।

जब हमने बिहार में प्रवेश किया, तो हमने सतत यह अनुभव किया कि बुद्ध भगवान् हमारे साथ यात्रा में हैं। इसलिए सहज प्रेरणा से 'समन्वय-आश्रम' की कल्पना सूझी। वह छोटे प्रमाण में शुरू हुआ है। किन्तु महत्त्व की चीज समन्वय-आश्रम नहीं, महत्त्व समन्वय का है। हमारा विश्वास है कि वेदान्त और अहिंसा के समन्वय से हिन्दुस्तान का और दुनिया का कल्याण होगा। हमें यह प्रेरणा होती है कि इस विचार के लिए हमारा जीवन बीते। इसीलिए भूदान के सिलसिले में जो काम हुआ, वह अल्प होते हुए भी बुद्ध भगवान् की आत्मा को शान्ति देता होगा, ऐसा हमें विश्वास है।

कारुण्य धर्म की शरण में

बुद्ध भगवान् ने ऐन जवानी में सब ऐश्वर्य का और राज्य का त्याग किया और सतत परिव्रज्या करते रहे। आज ही यहाँ एक ऐसी घटना घटी कि उससे बुद्ध भगवान् की आत्मा को संतोष होगा। करुणा का कार्य करते हुए आज चंद भाई यहाँ बम्बई से पैदल आये हैं। बहुत सारे जवान हैं, उनमें चौदह साल के दो लड़के भी हैं और वे नौ सौ मील से ज्यादा चले हैं। उन्हें इस प्रकार की तपस्या की आदत तो नहीं थी। फिर वे रोज २०-२५ मील क्यों चले? उन्होंने सोचा, सर्वोदय-सम्मेलन को जाना है, तो सर्वोदय का कार्य करते-करते जाना चाहिए। लोगों को करुणा का संदेश देते हुए, सर्वोदय का विचार समझाते हुए वे यहाँ आये, उन्हें करीब साढ़े सात सौ एकड़ जमीन मिली और कुछ संपत्तिदान भी मिला। हम लोग ज्ञानविहीन पामर हैं। हम तो बुद्ध भगवान् के सामने बोलने की

हिम्मत न करेंगे। कहाँ उनकी शान्ति और कहाँ हमारी टूटी-फूटी मनःस्थिति ! लेकिन इतना निःसंशय हम कह सकते हैं कि हम उनके बच्चे हैं और जो टूटा-फूटा काम कर रहे हैं, वह उनकी राह पर हो रहा है। बहुत बड़ी तपस्या के बाद जो करुणा का दर्शन हुआ, उसका उदय हमारे हृदय मे हुआ और वही करुणा की भावना इन छोटे-छोटे लड़कों को ६०० मील लायी है।

इसीलिए मैंने दावा किया था कि बुद्ध भगवान् ने जो 'धर्म-चक्र-प्रवर्तन' चलाया है, उसे हम आगे चला रहे हैं। शब्द बहुत बड़ा है, हम बिलकुल तुच्छ हैं, फिर भी उसके उच्चारण की हिम्मत बुद्ध भगवान् की कृपा से होती है। हम बहुत क्षीण हैं, हम तो पापी-जन हैं, हम खुद करुणा के पात्र हैं। फिर भी हम करुणा का महत्त्व समझते हैं। इसलिए जिस करुणा का दर्शन भगवान् को हुआ, उस पर श्रद्धा रखकर वही काम कर रहे हैं। करुणा का राज्य बनाये बिना हमारे दिल को संतोष न होगा और समाज में स्थिरता नहीं आयेगी। हम भगवान् की प्रार्थना करते हैं कि हम बच्चों को उनका आशीर्वाद रहे। हमने 'बुद्ध भगवान्' कहा और हमारे तरजुमा करनेवाले ने 'ईश्वर' कहा। लेकिन यह गलत नहीं है। क्योंकि हमारे लिए दोनों एक ही चीज है। एक अंतर्यामी है और दूसरा उसीका एक रूप है, जो बाहर प्रकट हुआ है। उनका स्मरण कर हम आशा करते हैं कि भूदान के जरिये करुणा का राज्य प्रस्थापित करने का मार्ग खुल जायगा। हम बुद्ध भगवान् की शरण मे हैं, हम कारुण्य धर्म की शरण में हैं, हम सर्वोदय-समाज की शरण में हैं।

सेन्नेरी (चिंगलपेट)
२४-५-'५६

सर्वोदय का आधार 'ब्रह्मविद्या'

आज हम आपके स्थान में आये हैं, जो हिन्दुस्तानभर का एक तीर्थस्थान है। यहाँ रामानुज और वेदान्तदेशिकन् के जन्म हो गये हैं। यहाँ आलवार लोगों ने भक्ति की है। यह शैव-यात्राओं का भी स्थल रहा है। यहाँ शंकराचार्य ने अपना मठ स्थापित किया है। बौद्ध भिक्षु और जैनों ने भी अपने विचार फैलाये हैं। ऐसे पवित्र स्थान में कल से सर्वोदय-सम्मेलन होने जा रहा है। कोई खास विचार किसी एक स्थान में केन्द्रित रहता है, ऐसा हम नहीं समझते। विचार कहीं, किसी भी स्थानविशेष में कैद नहीं होता। वह दुनिया की कुल हवा में रहता और वहीं फैलता है। फिर भी कुछ स्थानों मे सज्जनों की तपस्या का एक अंश होता है, इसलिए वह स्थान हवा के विचार को शीघ्र ग्रहण करता है। इसलिए हमने आशा की है कि तमिलनाड के इस महान् केन्द्र में सर्वोदय-विचार का बीज गहरा जायगा।

'सर्वोदय' एक स्वयंभू जीवन-विचार

यह विचार ही उतना उन्नत है कि स्मरणमात्र से हमारा हृदय उत्साह से भर जाता है। हमारा दावा है कि भारत की प्राचीन परम्परा का उत्तम परिणाम सर्वोदय में देखने को मिलता है। हम सर्वोदय को 'साम्ययोग' भी कहा करते हैं। 'साम्यवाद' भिन्न है और 'साम्ययोग' भिन्न। साम्यवाद वैषम्यवाद, साम्राज्यवाद और पूँजीवाद की प्रतिक्रिया है, जब कि साम्ययोग एक जीवन-विचार और स्वयंभू है। यूरोप की पूँजीवादी समाज-रचना में जो विचार फैले, उनमें कई बुराइयाँ रहीं। उसीकी प्रतिक्रिया के रूप में वहाँ साम्यवाद पैदा हुआ। पर इस प्रकार का प्रतिक्रियावाद 'जीवन-विचार' नहीं हो सकता। वह तात्कालिक वस्तु होती और एक समय के लिए उसका उपयोग भी होता है। हम समझते हैं कि उसका कार्य करीब-करीब पूरा हो चुका है और अब दुनिया को उसका सार मिल गया है, उसका सारांश अब दुनिया खींच रही है। जिसे हम 'सर्वोदय' कहते और

'साम्ययोग' नाम देते हैं, वह एक जीवन-विचार है और सदा के लिए उपयोग में आनेवाला है, क्योंकि उसका आधार आत्मा की एकता है। 'आत्मैक्य' का यह सिद्धान्त हिन्दुस्तान के ऋषियों ने मानव को अपने अनुभव से समझाया है। यह इस भूमि का—भारत का बुनियादी विचार है। इसे 'ब्रह्मविद्या' और 'वेदान्त' भी कहते हैं। इसी बुनियादी विचार पर 'सर्वोदय' की इमारत खड़ी है।

लोकशाही की बुनियाद वेदान्त

हम बहुत बार कहते हैं कि आज की लोकशाही ने जो तरीका अख्तियार किया है, उसके मूल में भी वेदान्त का ही सिद्धान्त है और वह कुछ अंश में प्रकट भी होता है। आप सभी जानते हैं कि हिन्दुस्तान और दुनिया के कुल देशों में मानवों को 'वोटिंग' का हक दिया गया है और हरएक को एक ही वोट देने का अधिकार है—फिर चाहे वह पढ़ा लिखा हो या अपढ़, चाहे गरीब हो या अमीर, चाहे नगरवासी हो या ग्रामीण। इस तरह एक ही मत का अधिकार दिया जाता है। अगर हम सोचें कि आखिर इसकी बुनियाद क्या है, तो सिवा 'वेदान्त' के और कोई बुनियाद न मिलेगी। आप जानते हैं कि मनुष्यों की बुद्धि में बहुत फर्क होता है। एक मनुष्य की जितनी बुद्धि-शक्ति और चिंतन-शक्ति होती है, उससे सौगुनी बुद्धि-शक्ति और चिंतन-शक्ति दूसरे मनुष्य की हो सकती है। अतः कहना पड़ता है कि बुद्धि के आधार पर हरएक को एक वोट का अधिकार नहीं मिलता। हम जानते हैं कि हरएक की शरीर-शक्ति में फर्क है। एक मनुष्य कमजोर है, तो दूसरा बलवान्। इसलिए शरीर के आधार पर भी यह वोट का अधिकार नहीं। हम यह भी जानते हैं कि हरएक के पास अभी तक दुनिया में अलग अलग संपत्ति है और इसलिए संपत्ति के आधार पर भी हरएक को एक वोट का यह अधिकार नहीं मिला है। पूछा जा सकता है कि फिर उसका आधार क्या है? स्पष्ट है कि उसका आधार मानवों की आत्मा की एकरूपता मान्य करना है। चाहे मनुष्य पढ़ा लिखा हो या अपढ़, उसकी आत्मा में कोई फर्क नहीं है। उसकी बुद्धि, देह और संपत्ति का भेद उस आत्मा की एकता में कोई बाधा नहीं डालता। आत्मा की इस एकता के आधार पर हर मनुष्य

को एक वोट का अधिकार है। आप जानते हैं कि आपके प्रधानमन्त्री पर आपका कितना विश्वास है। लेकिन जहाँ वोट का सवाल आता है, वहाँ उन्हें एक ही वोट का अधिकार रहता है और उनके चपरासी को भी एक ही वोट का अधिकार मिलता है। यह मानव की मूर्खता है या वेदान्त? आप ही तय कीजिये कि यह क्या है। हम समझते हैं कि आत्मा की एकता का जो वेदान्त-सिद्धान्त है, उसकी इसमें मान्यता है।

लोकशाही की न्यूनता

किन्तु लोकशाही के इस विचार में एक न्यूनता रह गयी है। उसमें आत्मा की एकता को तो पहचान लिया गया और हरएक को एक वोट का अधिकार दिया गया। लेकिन फिर वोट गिनते समय ४९ की बात न मानकर ५१ को मान्यता देकर उन्हें राज्यसत्ता सौंप दी गयी। इसमें वेदान्त भुला दिया गया। कहना पड़ता है कि यह विचार चलानेवालों को वेदान्त अच्छी तरह पचा नहीं। उसका एक अंश उनके ध्यान में आया और दूसरा अंश ध्यान से उतर गया। जैसे उन्होंने आत्मा की एकता को मान्य किया, वैसे ही यह भी उनके ध्यान में आना चाहिए था कि आत्मा के संयोग से कोई वृद्धि नहीं होती, आत्मा की कोई गिनती नहीं होती। उन्हें यह समझना चाहिए था कि यह गणित का विषय नहीं, वेदान्त है। इसलिए इसमें संख्या का सवाल गौण होता है।

'सर्वोदय' ने यह कमी पूर्ण की है। वह कहता है कि भाई, जो वेदान्त तुम सीखे हो, उसे तुम पूरी तरह पूर्ण करो। सबका विचार मान्य कर काम करो। पाँच मनुष्यों में से तीन मनुष्यों की राय एक ओर और दो मनुष्यों की दूसरी ओर हो, तो तीन का विचार सत्य, यह विचार गलत है। इसी तरह चार मनुष्यों का अभिप्राय एक ओर और सिर्फ एक का अभिप्राय दूसरी ओर हो, तो चार के अनुकूल फैसला दिया जाना भी गलत है। पाँचों एक मत से जो राय देंगे, जो फैसला देंगे, वही मान्य होगा, इस विचार को कबूल न करने के कारण ही आज दुनिया के कुल देशों में

'मेजॉरिटी' और 'माइनॉरिटी' के झगड़े चले हैं। उनके कारण गाँव-गाँव में पक्षभेद होते हैं और गाँव-गाँव का छेद होता है।

पक्ष-भेदों का बुरा असर

इस भूदान आंदोलन में अब तक उड़ीसा जिले के 'कोरापुट' स्थान में पूरे-के-पूरे ६०० गाँव दान में मिले हैं। इतना उत्तम कार्य वहाँ हुआ है। किन्तु अब सवाल पैदा होता है कि आगे चुनाव आनेवाला है। इसलिए भिन्न-भिन्न राजनैतिक पार्टियाँ गाँवों में पहुँचकर वहाँ भेद पैदा करने की कोशिश कर रही हैं। ये इन गाँवों में, जो अपनी मालकियत छोड़ अपना एक परिवार बना लिये हैं, जाकर यह छेद बनाना चाहते हैं। वे यह नहीं समझते कि इस तरह की राजनीति से, जिससे गाँव के दो-दो टुकड़े हो जाते हैं, हिन्दुस्तान का क्या भला होगा? हिन्दुस्तान में जो प्रान्तीय भेद थे, क्या वे काफी नहीं? हिन्दुस्तान में भिन्न-भिन्न भाषाएँ हैं। उन भाषाओं के जो झगड़े चले, क्या वे भेद कम थे? जातिभेद की अग्नि तो समाज को लगी ही है, क्या वह कम है? सिवा धर्म के झगड़े भी यहाँ खड़े हैं, क्या वे काफी नहीं हैं? यहाँ असख्य मत-संप्रदायों के भेद थे, वे क्या कम हो गये? यहाँ ब्राह्मण-ब्राह्मणेतर के जो झगड़े चलते हैं, क्या वे कम थे? फिर यह पार्टी का नया भेद डालकर भारत की क्या उन्नति होगी? इसका परिणाम यही होता है कि एक भी अच्छा काम करने के लिए कोई इकट्ठा नहीं होता। कहते हैं कि इसमें उस मनुष्य के साथ हम काम करेंगे, तो उसका भी महत्त्व बढ़ेगा। इसलिए अच्छा काम करेंगे भी, तो हमारी संस्था को इसकी 'क्रेडिट' मिलनी चाहिए। इतना ही नहीं, सामनेवाला कोई अच्छा काम करता है, तो उसके हेतु पर आरोप करते हैं और उसका वह कार्य यशस्वी न हो, इसकी भी कोशिश की जाती है।

आत्मा की एकता और सर्वसम्मति

ये सारे भेद इसी कारण पैदा हुए कि 'डेमोक्रेसी' ने संख्या का आधार मान्य किया। आत्मा की एकता कबूल करके भी वे उसकी गिनती जो करने लगे! लेकिन गिनती उसकी की जाती है, जो एक नहीं, अलग-अलग होता है। इस

हालत में संख्या पर जोर देते हैं, तो बुद्धि पर क्यों नहीं देते ? क्या इक्यावन मनुष्य की बुद्धि मिलकर उनचास मनुष्यों की बुद्धि से हमेशा ज्यादा होती है, यह बात सही है ?

आजकल डेमोक्रेसी में जो 'मेजॉरिटी' का विचार चलता है, इस पर हमने एक बार विनोद में सवाल पूछा कि 'दुनिया में आज की हालत में अपने देश में कम-से-कम मूर्ख लोग ज्यादा हैं या अक्लवाले ?' इस पर उत्तर मिला कि 'मूर्खों की संख्या अधिक है।' इस पर मैंने कहा कि 'फिर भी आपने अधिक संख्या का सिद्धान्त उठाया, तो क्या आप यहाँ मूर्खों का राज्य चलाना चाहते हैं ?' इसलिए वेदान्त-सिद्धान्त को ठीक तरह से समझ लीजिये और उसे कबूल कर लीजिये। वह सिद्धान्त यही है कि आत्मा में भेद नहीं। इसलिए सबका समाधान जिसमें हो, वही करना चाहिए।

रामानुज और शंकर, दोनो का वाद चलता था कि अद्वैत पूरा-का-पूरा है कि थोड़ा भेद है ? याने ईश्वर के साथ हम पूरे एकरूप हैं या उससे अलग ? हम समझते हैं कि आज हम यह विचार करने के काबिल ही नहीं हैं। कारण हम आज अपने बाप और भाई के साथ भी झगड़ते हैं। फिर जिस ईश्वर को हमने देखा ही नहीं, उसके साथ एकरूप कैसे हो सकते हैं ? अस्तु, हाँ, तो रामानुज और शंकर, दोनों ने सिखाया कि आत्मा एक ही है। उनमे इतना ही फर्क रहा कि एक शख्स उसमे अपनी कुछ विशेपता मानता था, तो दूसरा कहता कि यह विशेपता भी गौण है, मिथ्या है। फिर भी उसकी एकरसता और एकता दोनों आचार्यों ने मानी है। हरएक की अपनी-अपनी कुछ विशेपताएँ होती हैं, यह माना गया और उसका महत्त्व कम है, यह भी माना गया। परन्तु वह चीज है, इसलिए हरएक को राय लेना उचित है, क्योंकि आत्मा को एकता होते हुए भी हरएक मे विशेपता होती ही है। यह है विशिष्टाद्वैत। अगर इतनी विशेपताएँ न होतीं—फर्क न होता, तो राय लेने का सवाल ही न उठता। लेकिन चूँकि हर-एक की अपनी-अपनी कुछ विशेपता होती है, इसलिए हरएक की राय लेना उचित है। किन्तु अद्वैत और आत्मा की एकता है, इसलिए सबका समाधान करके काम करना चाहिए, ऐसा व्यावहारिक जीवन-सूत्र उसमें से निकलता है।

नास्तिक और आस्तिक

बहुत-से लोगों ने हमसे कहा कि यहाँ एक ऐसी जमात है, जो ईश्वर को नहीं मानती। लेकिन यह इस प्रान्त की विशेषता नहीं, सारे भारत में और कुल दुनिया में भी यह बात है। यह इस काल की भी विशेषता नहीं, वरन् सदैव यह रही है। किन्तु हमें इसकी कोई चिन्ता नहीं, क्योंकि वे ईश्वर को नहीं मानते, पर ईश्वर तो उन्हें मानते ही हैं। चिन्ता का विषय तो तब होता, जब ईश्वर ही हम लोगों को भूल जाता। बच्चा माँ को भूल जाय, तो कोई बड़ी बात नहीं। माँ बच्चे को भूल जाय, तो वही बड़ी बात है। इसीलिए हमें इसकी कोई चिन्ता नहीं है। दूसरी बात यह कि ईश्वर को न माननेवाले ये लोग यह तो कहते हैं कि हम सज्जनता मानते हैं, हम मानवता मानते हैं। इसलिए भी हमें कोई चिन्ता नहीं है। इसका अर्थ यही होता है कि हम 'मदर' को नहीं मानते, 'ताया' को मानते हैं। हम कहते हैं कि जो मानवता मानते हैं, वे ईश्वर को न मानें, तो भी हमें कोई चिन्ता नहीं। क्योंकि मानवता को मानना और ईश्वर को मानना एक ही चीज है। हाँ, जब कोई यह कहता है कि हम मानवता और प्रेम को भी नहीं मानते, तभी वह चिन्ता का विषय हो सकता है। तीसरी बात यह कि ईश्वर ऐसा विचित्र है कि वह 'अस्ति' के रूप में तो रहता ही है, लेकिन 'नास्ति' के रूप में भी रहता है। हम परमेश्वर का वर्णन करने बैठते हैं, तो कहते हैं : 'वह है भी, नहीं भी और दोनों से परे भी है।' जैसे ईश्वर का एक भक्त 'शैव' कहलाता है, क्योंकि वह शिव का नाम लेता है, दूसरा 'वैष्णव' कहलाता है, क्योंकि वह विष्णु का नाम लेता है। ठीक वैसे ही ईश्वर का एक भक्त ऐसा भी है, जो 'नास्तिक' कहलाता है, क्योंकि वह ईश्वर को 'शून्य' नाम देता है। ईश्वर के अनन्त नाम हैं ही। इसलिए इसे भी हम भक्ति का एक प्रकार मानते हैं। 'सर्वोदय' का सिद्धान्त यही है कि जो भी काम हम करें, ऐसा ही करें, जिसमें सबका समाधान हो। सिवा इसके जो ईश्वर को नहीं मानता और उसके बदले में मानवता मानता है, वह सच्चा भक्त है। अगर हम ईश्वर को मानते हैं, तो हमारा कर्तव्य है कि उसकी जो देनें हैं, सब मिलकर उनका उपभोग करें। उनकी मालकियत छोड़ दें।

सर्वोदय-समाज में मालकियत छोड़नी होगी

हमसे सवाल पूछा जाता है कि हम आपके सर्वोदय-समाज में आना चाहते हैं, तो क्या ईश्वर को मानना पड़ेगा ? हम कहते हैं कि आपको मानवता माननी पड़ेगी और सामूहिक मालकियत मानकर व्यक्तिगत मालकियत छोड़नी होगी। जो अपनी व्यक्तिगत मालकियत मानता है, वह ईश्वर की जगह स्वयं ले लेता है। इसलिए हम उसे ईश्वर का शत्रु समझते हैं। जो अपने को मालिक मानता है, वह ईश्वर को मालिक नहीं मानता। कारण ईश्वर का अर्थ ही मालिक है। 'मैं इस भूमि का मालिक हूँ' यह कहने का अधिकारी ईश्वर ही हो सकता है। मानव भूमि को छोड़कर चला जाता है और भूमि यहीं रहती है, फिर भी वह कहे कि 'मैं भूमि का मालिक हूँ', तो इससे बढ़कर आश्चर्य की बात क्या होगी ! इसलिए सर्वोदय का सिद्धान्त ही है कि मानवता सबके लिए आदरणीय है और हमें मालकियत का हक नहीं।

सर्वोदय के दो सिद्धान्त

सारांश, हमने दो सिद्धान्त आप लोगों के सामने रखे : एक तो आत्मा की एकता, जो सर्वोदय की बुनियाद है और दूसरा उसीका ही एक अंश है; वह यह है कि आत्मा में भेद नहीं। हमें जो भी काम करना होगा, वह सबके समाधान के साथ करना होगा, यह एक सिद्धान्त होगा, दूसरा सिद्धान्त यह होगा कि हम अपनी व्यक्तिगत मालकियत नहीं रख सकते। हमें अपनी सभी चीजें समाज को समर्पित करनी चाहिए। सर्वोदय के ये दो बड़े सिद्धान्त हैं। दोनों मिलकर के अहिंसा बनती है। इसलिए कहा जाता है कि 'सर्वोदय की बुनियाद अहिंसा पर है।'

सर्वोदयपुरम् (कांचीपुरम्)
२६-५-'५६

सीमा में से असीम की ओर : ४४ :

[अ० भा० सर्व सेवा-संघ की प्रबन्ध-समिति में]

इस आन्दोलन की प्रक्रिया में तंत्रमुक्ति का एक आवश्यक स्थान है। इस सम्बन्ध में हमारे अन्दर विचार की कोई न्यूनता न रहे। यह तो ठीक है कि कोई एक ऐसा स्थान हो, जहाँ से जानकारी हासिल हो सके और दानपत्र आदि जब तक रखने हों, रखे जायँ। बाकी कुल काम जनता पर सौंप दिया जाय। उसके लिए कोई खास कार्यकर्ता न रखे जायँ। काम चलानेभर के लिए इतनी ही व्यवस्था कर देनी चाहिए।

सम्पत्तिदान का यही क्रम रहे

हमने सम्पत्तिदान शुरू कर दिया है, पर उसका केन्द्रीकरण करने की कोई जरूरत नहीं। अपने-अपने स्थान पर लोग सम्पत्ति इकट्ठी करते और उससे वहाँ-वहाँ का काम बढ़ता है। अगर भूदान में भी ऐसा ही हो, तो आज जिस तरह भूदान-आन्दोलन चल रहा है, उसके बदले वह असीम में पहुँच जाय। याने जनता उसे उठा ले। इसलिए वह विचार हमें छोड़ना नहीं है। उसके छोड़ने में हम अधिक अनुकूलता नहीं देखते। इसलिए उस बारे में कोई आग्रह नहीं।

पूरे प्रयत्न पर संशोधन का मौका

किन्तु इस बात पर हमें जरूर सोचना चाहिए कि एक निश्चित मुद्दत के अन्दर हमारा काम हो। यह जो हमने इच्छा रखी, वह एक तीव्र प्रेरणा की बात है, भावना का विषय है। उस मुद्दत में काम होता है, तो संशोधन के लिए मौका मिलता है, यदि उसमें पूरा प्रयत्न किया गया हो। अगर पूरा प्रयत्न ही न किया गया हो, तो अक्ल ही कुछ न बोलेगी—कोई भी नयी बात सूझ न पायेगी। इसलिए पूरा प्रयत्न होना ही चाहिए।

तन्त्र-मुक्ति की ओर

जब हमने यह विचार रखा कि एक निश्चित मुद्दत में हमारी सारी ताकत लगे, तो हमें यही लगा कि हमारे संगठन के कारण आरंभ में तो शायद रक्षण हुआ, पर इसके आगे उसका विस्तार रुक गया। इसीलिए हमारा मन पूछने लगा कि क्या वह विचार को रोकेगा और प्रचार में बाधा डालेगा ?

यों तो संगठन के बारे में हमारे मन में कुछ बुनियादी विचार भी हैं और वे भी इसमें काम करते होंगे, लेकिन उन विचारों को यहाँ हमने ज्यादा आने नहीं दिया। हम संगठन को नहीं मानते। उसे न मानकर भी सोचते हैं यद्यपि अनेक राजनीतिक पक्ष के कार्यकर्ता और पक्षातीत व्यक्ति भी हमें मौके पर मदद देते थे, फिर भी अभिक्रम (इनीशियेटिव) की बात आने पर वे यही कहते हैं कि भूदान-समिति की ओर से आवाहन होने पर ही हम मदद देंगे। इस तरह मानो यह आन्दोलन जकड़ में आ गया है। इसलिए हमारे मन में आया कि बनाया हुआ यंत्र अगर हम तोड़ दें, तो जनता पर जिम्मेदारी डाल देते हैं। घूमनेवाले घूमते रहेंगे और काम करनेवाले काम करते रहेंगे। यह बात कोई एक साल से मेरे मन में चल रही है।

ढेबर भाई का सुझाव

ढेबर भाई ने सुझाया कि हम प्रचार करते हैं, तो कुछ काम होता है, कुछ हवा भी तैयार होती है। किन्तु यह तो साक्षात् युद्ध की बात है। समरस्थल पर जाकर काम किये बिना युद्ध नहीं होता। इसलिए हममें से हरएक के जिम्मे एक-एक जिला होना चाहिए। यह नहीं कि हर जिले के लिए किसी मनुष्य को खड़ा किया जाय। हममें से जो लोग कुछ ताकत रखते हैं, वे कहें कि 'हम अमुक जिले में अपनी जिम्मेवारी महसूस करते हैं। आपकी भूदान-समिति वहाँ हो या न हो, हम वहाँ अपनी ताकत लगायेंगे।' इस तरह यहाँ जितने लोग हैं, वे अपना-अपना सम्बन्ध एक एक जिले से जोड़ लें।

मान लीजिये कि यहाँ ५० आदमी हैं और हिन्दुस्तान में ३०० जिले हैं। अब एक-एक जिले के लिए एक-एक मनुष्य न मिलने पर भी ऐसे ५० आदमी

निकल ही आये, जिन्होंने कहा कि हम अपना काम सँभाल लेंगे। हमारे जिले का कोटा हमें कह दीजिये।' तो वे मेरिट हासिल करके ही काम करेंगे, तब शायद काम अधिक हो।

यह कहकर उन्होंने सुझाव पेश किया, उसके साथ अपना नाम जोड़ दिया और कहा कि 'मेरे जिम्मे आप एक जिला लगा दीजिये। कांग्रेस-अध्यक्ष के नाते जो भी काम है, करूँगा, पर यह काम भी करूँगा और जरूरत पड़े, तो सब काम छोड़ करके भी यह काम पूरा करूँगा। इस तरह ५-५० लोग तैयार हो जायँ और बाकी जिलों में जैसा चलता है, वैसा चले। आन्दोलन के लिए यह अच्छी चीज रहेगी।' उनके विचार में सार है। अगर ढेबर भाई एक जिला उठा लें, तो उस जिले में आज जितना काम होता होगा, उससे बहुत ज्यादा काम होगा, इसमें कोई शक नहीं।

क्रान्ति का 'नाटक' तो करके देखें

पर मेरे सुझाव में यह बात है कि यह एक क्रान्ति का आन्दोलन है। इस नाते हम क्रान्ति का नाटक भी क्यों न करें? ध्यानयोग करते हैं, तो क्या उसी समय ध्यान या समाधि लगती है? महीनों और वर्षों वह 'नाटक' चलता है और होते-होते कभी सध जाता है। हम प्रार्थना करते हैं, तो चित्त हमेशा एकाग्र होता है, ऐसा नहीं। चलता है वह नाटक, पर हमने तय किया है कि उसमें हमारी श्रद्धा है, तो उसे हम करते रहेंगे। और एक दिन आयेगा, जिस दिन हम एकाग्र हो जायेंगे। वैसे ही हम क्रान्ति का यह नाटक कर दें कि इस आन्दोलन के लिए हमारे पास कोई संस्था ही नहीं है। वैसे हम कहते भी हैं, जिससे किसी भी संस्था के व्यक्ति को काम पूरा न करने पर हम धमका भी पाते हैं। आखिर हममें धमकाने की यह शक्ति क्यों आयी? कारण हम किसी एक पक्ष में सम्मिलित नहीं हैं। ऐसा काम उठाया है, जिसमें सबका भला है। इसलिए हम सबकी मदद हासिल कर सकते हैं।

चुनाव और भूदान

इस तरह 'भूदान-समिति' जनता पर सारा भार छोड़कर स्वयं साहित्य, ज्ञान-

फारी देना आदि का ही भार ले। पर इससे आन्दोलन का नैतिक वजन बढ़ेगा या नहीं, यह सवाल मन मे उठता है, क्योंकि आखिर हमारे जो मनुष्य होते हैं, उनकी कुछ सीमाएँ हैं, जो वे उस काम को भी लग जाती हैं। याने एक मनुष्य के व्यक्तिगत गुण और दोष, सबके साथ भूदान-आन्दोलन मिल जाता है। उस बारे मे लोग कभी शिकायत भी करते हैं कि आपका फलाँ व्यक्ति ऐसा था, इसलिए हमारा सहयोग नहीं मिला। पर हमारे तो सभी हैं और यह तो समुद्र है, यह अगर हो जाय, तो सम्भव है कि इसका कुछ नैतिक वजन बढ़े।

हमसे कोई कहता है कि आपका क्या भरोसा ? आपका फलाना मनुष्य इलेक्शन में खड़ा होगा या नहीं, इसकी परीक्षा १९५७ में होगी। हम समझाते हैं कि हमारी भी परीक्षा १९५७ में करियेगा या नहीं ? परीक्षा तो हरएक की होनेवाली है, मरने के दिन तक होनेवाली है। हमारे लोग अगर इलेक्शन मे खड़े हो जायँ, तो कोई बुरा काम करते हैं, ऐसा तो हम न कहेंगे। अगर इलेक्शन बुरी चीज है, तो इलेक्शन में किसीको भी खड़ा ही नहीं होना चाहिए। अगर वह अच्छी चीज है और सारे देश के लिए आयोजन किया जाता है, तो हमारा मनुष्य भी खड़ा हो सकता है। हाँ, वह यदि कहे कि भूदान-समिति के कार्यकर्ता के नाते खड़ा हूँ, तो मैं कहूँगा कि यह गलत है। हमारी समिति किसीको खड़ा न करेगी। परन्तु कोई स्वतंत्र रूप से खड़ा होता है और उसने बड़ा अच्छा काम किया है, ऐसा असर अगर लोगों पर हो और इसलिए लोग उसे चुन भी दें, तो क्या वह कोई बुरा काम करता है ?

यह एक उदाहरण दिया। किन्तु अब साथ-साथ हम यह भी सोचें कि हमारे लोगों के बारे में इस प्रकार की कल्पना लोग क्यों करते हैं ? ऐसी स्थिति क्यों आती है ? इसलिए कि हमारे चन्द ही लोग हैं। लेकिन जब कुल ही लोग हमारे हो जायँ, तो फिर यह सवाल न उठेगा और आन्दोलन शुद्ध मनुष्यों के जरिये स्वाभाविक ही आगे बढ़ेगा। इसीलिए हमने अभी कहा कि यह क्रान्ति का नाटक है और अगर इससे काम बना, तो जोरदार दर्शन होगा।

रास्ता बतायें

सम्भव है कि यह टूट भी जाय और काम भी न हो। लेकिन उससे क्या

काम रुकेगा ? बाबा पहले अकेला घूमता ही था। आरम्भ में बाबा का स्वागत, व्यवस्था, भूदान-प्राप्ति आदि कौन करता था ? तब न तो कोई भूदान-समिति थी और न 'सर्व-सेवा-संघ' ने ही एक संस्था के नाते इसका पूरा भार उठाया था। ये काम कहीं पर खादीवालों ने किये, तो कहीं काग्रेसवालों ने। जहाँ समाजवादियों का वजन था, वहाँ उन्होंने मदद दी। इस तरह जैसे उस वक्त काम चला, वैसे ही फिर चलेगा।

उस समय तो एक ही मनुष्य काम कर रहा था, इसलिए वह उस तरह सीमित था। अब इसमें बहुत-से लोग और सर्व सेवा-संघ भी काम करता है। आम जनता से उनका सीधा सम्बन्ध आया है, तो अब आगे आम जनता में से कोई भी यह काम करेगा। तब कोई यह न कह पायेगा कि 'हमें आदेश नहीं मिला, इजाजत नहीं मिली।' यदि मिलेगी, तो इससे गति ही मिलेगी, ऐसा मेरा मानना है। फिर भी इसके बारे में मेरा आग्रह नहीं है। जँचे, तो करें और न जँचे, तो छोड़ दें। लेकिन फिर उसके बदले में ऐसी कोई युक्ति सुझायें, जिससे आन्दोलन के सीमित होने का प्रश्न न आये। उसके व्यापक बनने की राह खुल जाय।

सर्वोदयपुरम् (कांचीपुरम्)
२१-५-'५६

आज दुनिया को, अपने देश को इस बात की प्यास है कि दुनिया में जो अशान्ति और वैर-विरोध हुआ है, वह किस तरह मिटे। इसलिए इन दिनों बहुतों को भगवान् बुद्ध का स्मरण बार बार होता है। हमने अभी देखा कि बुद्ध भगवान् की पुण्य-तिथि के निमित्त सब राष्ट्रों में और अपने इस देश में भी जगह-जगह उत्सव किये गये। हर जगह कहा गया कि करुणा बढ़े और भेद मिटें। दुनिया को आज यही भूख और प्यास है।

दुष्ट-चक्र से मुक्ति कैसे मिले ?

किन्तु एक दुष्ट-चक्र चलता है, जिसमें से मुक्ति किस तरह हासिल की जाय? यह बहुतों की समझ में नहीं आता। भिन्न-भिन्न देश दूसरे का डर रखते हैं और यह जाहिर करते हैं कि दूसरे के निमित्त से हम लाचारी से शस्त्रास्त्र बढ़ाते हैं। पाकिस्तान समझता है कि हिन्दुस्तान की ताकत पहले से बढ़ी है, इसीलिए हमें शस्त्रास्त्र बढ़ाने चाहिए। इस तरह भारत भी सोच सकता है। ऐसा ही अमेरिका और रूस के बीच भी एक-दूसरे के डर के कारण हो रहा है। अब इस दुष्ट-चक्र को हिम्मत के साथ तोड़ना होगा। हमारे भय से दूसरे लोग शस्त्रास्त्र बढ़ाते जा रहे हैं और उनके डर से हम भी वैसा ही कर रहे हैं। दोनों पक्ष मिलकर दोनों की सम्मति से कुछ घटाव करने का तय कर रहे हैं। यह प्रयत्न भी प्रामाणिक हो, तो इससे कुछ बन सकता है, लेकिन उसमें भी परस्पर अविश्वास रहा, तो वह सफल नहीं होगा।

किन्तु वास्तविक छुटकारा परस्पर सम्मति से काम करने से नहीं, बल्कि अपनी अकेली हिम्मत से काम करने पर होता है। मैं नहीं कहता कि परस्पर-सम्मति से इस प्रकार काम करने की वृत्ति गलत है। वह भी एक वृत्ति है और उसका भी एक उपयोग है। पर उसकी राह देखते हुए अगर हम बैठे रहेंगे, तो निस्तार नहीं। इसीलिए आसपास की परिस्थिति शान्ति के लिए अनुकूल

है, ऐसा विश्वास हो और ऐसा समझकर किसीको आगे बढ़ना होगा। हम समझते हैं कि सर्वोदय-समाज के सामने अगर सबसे बड़ी समस्या है, तो यही है।

सर्वोदय-समाज का कर्तव्य

सर्वोदय-समाज का कर्तव्य है कि अपने देश में ऐसी हवा तैयार करे, जन-मानस ऐसा बनाये कि हम यह हिम्मत कर सकें कि हमारा देश और हमारी सरकार जिस राह पर दूसरे देश नहीं चलते, उस रास्ते पर कदम रखे। इस विषय का जिक्र मैंने दो-तीन दफा सार्वजनिक तौर पर किया है। मैंने कहने की हिम्मत की है कि अगर सामनेवाला बल बढ़ाने के लिए लश्कर बढ़ा रहा है, तो हमें अपना बल बढ़ाने के लिए शस्त्र घटाने की बात सोचनी चाहिए। सामने अगर घने अंधकार का दर्शन हो रहा हो, तो उसका अर्थ यही मानकर कि हमारे पास का प्रकाश कम है, उसे बढ़ाना चाहिए। मुझे कहने में खुशी होती है कि आज इसी विचार को राजाजी ने अपना बल दे दिया है।

इसमें हम अपनी सरकार को भी उपदेश देने नहीं जा रहे हैं, क्योंकि हम जानते हैं कि आज सरकार में हमारे नेता हैं। जो विचार हम आपके सामने पेश कर रहे हैं, उसके लिए अगर देश राजी हो जायगा, तो वे भी बिलकुल राजी हो जायँगे। इसमें दोनों बातें होती हैं, कुछ सरकार की हिम्मत होती है, तो लोगों की हिम्मत बढ़ती है और कुछ लोगों की हिम्मत होती है, तो सरकार की भी हिम्मत बढ़ती है। दोनों की हिम्मत बढ़ सकती है, अगर सर्वोदय-समाज जैसी विचारक संस्था उन्हें उस दिशा में ले जाने की सोचे।

आज देश के सामने अनेकविध समस्याएँ हैं, लेकिन इस बड़ी समस्या के सामने सब समस्याएँ फीकी पड़ जाती हैं। इसलिए सर्वोदय-समाज को अपनी जिम्मेवारी ठीक महसूस करनी चाहिए। सर्वसामान्य चिंतन का जो स्तर है, आज के राजनैतिक पक्षों का जो स्तर है, वह इस मामले में काम न देगा। इसलिए राजाजी ने एक कड़े शब्द का इस्तेमाल किया। उन्होंने कहा कि जिस मनुष्य के मन में पाकिस्तान का डर होगा, उसे सर्वोदय-समाज छोड़ देना चाहिए। यह उन्होंने जो कहा, वह किसी एक व्यक्ति के भय के लिए नहीं कहा। उनके कहने

का तात्पर्य यही था कि सर्वोदय-समाज अगर यह मानता है कि आज की स्थिति में हमारे देश को शस्त्र बढ़ाना उचित है, तो वह अपने दावे के लिए लायक नहीं।

सेना घटाने से शान्ति

इस विषय के दो पहलू हैं। एक पहलू यह है कि बाहर के किसी आक्रमण का भय न रखें और इसलिए हमारी तैयारी शान्ति की हो। हमारे पड़ोसी और आसपास के देशों के लिए हमारी निर्भय और शान्त मनःस्थिति होनी चाहिए। दूसरा पहलू यह है कि अपने देश के अन्तर्गत हम जितने काम करेंगे, वे 'शान्ति-शक्ति' के पोषक हों। आपने देखा कि मैंने 'शान्ति' के साथ 'शक्ति' शब्द को जोड़ दिया। नहीं तो देश में शान्ति रखने का अर्थ करीब-करीब स्थितिस्थापक हो जाता है, जिसमें आगे बढ़ने की कोई गुंजाइश नहीं रहती। किन्तु देश में जो समस्याएँ हैं, उन्हें हल करने की आवश्यकता है और वह शान्ति के जरिये होनी चाहिए। इसलिए मैंने शान्ति के साथ 'शक्ति' शब्द जोड़ दिया। तात्पर्य यह है कि वह शान्ति 'निगेटिव' नहीं, 'पॉजिटिव' होगी, याने वह मसले का सामना करने की और उसमें से हल निकालने की शक्ति रखती होगी। इस तरह इसके अन्तर्गत सर्वोदय-समाज में शान्ति-शक्ति का प्रकाशन हमारा एक कार्य होना चाहिए।

हम समझते हैं कि सर्वोदय-समाज के सामने यह एक बड़ा ही कर्तव्य उपस्थित है। हमें उम्मीद है कि जो राजनैतिक पक्ष भिन्न-भिन्न तरीके से सोचते हैं, उन्हें भी इस बात का महत्त्व महसूस होगा। हम जानते हैं कि वे भी शान्ति चाहते हैं। चाहे शान्ति की स्वतंत्र कीमत वे न समझते हों, फिर भी शान्ति की जरूरत महसूस करते हैं। अगर वे इतना ही समझते हैं कि शान्ति की आवश्यकता है, तो इस मामले में सर्वोदय-समाज के साथ बात हो सकेगी। हम समझते हैं कि वे निर्भयता के साथ यह कह सकते हैं कि हमारे देश के पास आज जितनी शस्त्र-शक्ति है, उससे हरगिज अधिक नहीं बढ़ायेंगे। चाहे उधर पाकिस्तान अपनी ताकत बढ़ाता जाय, तो भी हम शस्त्रास्त्र नहीं बढ़ायेंगे और उसका हमें कोई भय न होगा। इससे पाकिस्तान को भी भान हो जायगा कि जो अपना शस्त्र-बल बढ़ाता चला जायगा, वह स्वयं ही खोयेगा। इस बात का हमें दुःख जरूर होगा

कि अपना पड़ोसी देश विनाश की राह ले रहा है। उसे विनाश से बचाने का उपाय यही है कि हम शस्त्रास्त्र न बढ़ायें। हिम्मत के साथ घटा सकें, तो घटायें।

हम जानते हैं कि इस बात के लिए देश को तैयार करना होगा, चाहे आज वह इसके लिए तैयार न हो। हम यह भी जानते हैं कि जो. सरकार में हैं, उनके सामने कई प्रकार के विचार उपस्थित होंगे, कई प्रकार की जानकारी हासिल होगी, जो हमें नहीं होगी। इसलिए हमने कहा कि इसमें हम किसी पर टीका करने की कोई वृत्ति नहीं रखते। लेकिन सिर्फ अन्तर्निरीक्षण की दृष्टि रखते और सोचते हैं। लेकिन दुनिया की परिस्थिति का जो अवलोकन हम कर सके हैं, उसी पर से हमारा विश्वास हुआ है कि हिन्दुस्तान अगर अपनी सेना आधी और कम कर देगा, तो दुनिया के लिए एक राह खुल जायगी और हिन्दुस्तान के लिए भी अत्यन्त शान्ति होगी। आज दुनिया का जो हमारा दर्शन है, वह यह कह रहा है कि जैसा कदम हम कह रहे हैं, वह उठाने के लिए यह समय बहुत ही अनुकूल है।

हम चाहते हैं कि हमारे देशवासी और सर्वोदय समाज के सेवक इस बात पर गम्भीरता से सोचें। ऊपर-ऊपर से सोचने का यह विषय नहीं, बहुत गहराई में जाना होगा। आज की चुनाव की पद्धति भी इसके साथ संबंध रखती है। देश की सामाजिक और आर्थिक व्यवस्था का भी इससे संबंध है। अतः सबका विचार करना होगा, तभी इससे निस्तार होगा।

सर्वोदयपुरम् (कांचीपुरम्)
२७-५-'५६

चलना चाहिए, ऐसा हम चाहते हैं। आप जानते हैं कि इस समय रूस ने अपना सैन्यसम्भार कुछ कम करने का सोचा है। हम नहीं जानते कि ईश्वर की प्रेरणा किस दिशा में, कैसे काम कर रही है। पर इतना अवश्य जानते हैं कि उसकी प्रेरणा हमारे काम के लिए बहुत ही अनुकूल है। इसीलिए हमने कहा कि जिन्होंने बुद्ध भगवान् का स्मरण किया, उन्होंने हमारे काम को आशीर्वाद दिया ही। यह हमारे भूदान के काम के लिए बहुत ही बड़ी ताकत है।

हमने बहुत नम्रता से एक दावा किया था और उसका प्रथम उच्चारण उसी दिन किया, जिस दिन बुद्ध भगवान् की जयन्ती थी। हम लखनऊ में थे। हमने कहा था, हम बुद्ध भगवान् का धर्म-चक्र-प्रवर्तन का कार्य आगे चलाने की कोशिश करेंगे। बुद्ध भगवान् ने जो प्रेरणा दी, उसीसे बिहार का काम आगे बढ़ा, यह हमने अपनी आँखों से देखा। एक दिन बिहार में हमें एक लाख एकड़ जमीन मिली। वह बुद्ध-जयंती का दिन था। एक दिन हमने संकल्प किया था कि गया जिले में एक लाख एकड़ जमीन हासिल करेंगे। वह प्रेरणा बोधगया में हुई, जो बुद्ध भगवान् का स्थान है। उसी प्रेरणा की स्मृति में 'समन्वय-आश्रम' का छोटा-सा प्रयत्न भी शुरू किया। हम आशा करते हैं कि हिन्दुस्तान के लोग इस स्मृति से प्रभावित होकर भूदान के काम में पूरी तरह जोर लगायेंगे। यह प्रेरणा काम कर रही है, उसका अनुभव हृदय में प्राप्त कर काम करना है।

व्यापक परिमाण में ग्रामदान

इस आन्दोलन की दूसरी घटना हमारे लिए बहुत ही आशादायक है, और वह है व्यापक परिमाण में ग्रामदान, जो उड़ीसा में हुआ। इससे जमीन की मालकियत की जड़ें हिल गयीं, 'ग्रामराज्य' किस तरह बनाया जा सकता है, यह सोचने के लिए सामग्री मिली और उसकी कल्पना करने के लिए कुछ चिंतन भी इस साल हुआ। एक भाई ने हमें पत्र लिखा कि 'अब तक हम आपके इस आन्दोलन की तरफ कुछ शंका की दृष्टि से देखते थे, पर जब से व्यापक परिमाण से ग्रामदान शुरू हुआ, तब से विश्वास हो गया कि यह क्रान्ति-

कारी आन्दोलन है।' उड़ीसा के बाद हमने आन्ध्र में प्रवेश किया, जहाँ बहुत से हमारे कम्युनिस्ट भाई काम करते हैं। हमें कहने में खुशी होती है कि बहुत से हमारे कम्युनिस्ट भाई इसमें काम करने के लिए तैयार हुए हैं। कुछ लोग इसमें भय देखते हैं, पर हम कोई भय नहीं देखते, क्योंकि हमारे मन में आत्मविश्वास है। जिसके मन में आत्मविश्वास नहीं होता, उसे ही भय मालूम होता है। किन्तु हम इससे बहुत ही उत्साहित होते हैं कि वे भाई हमारे साथ आवे। हम उनका स्वागत करते हैं। ग्रामदान में एक नया विचार ही खुल गया है। सिर्फ भारत के सामने ही नहीं, बल्कि दुनिया के सामने भी एक मार्ग खुल गया है। यह दूसरी घटना है, जो बहुत ही आशाजनक है।

वितरण की कुंजी हाथ लगी!

तीसरी घटना यह है कि हमारे हाथ में वितरण की कुंजी आ गयी है। कुछ लोग पूछते हैं कि आपने बहुत जमीन हासिल की, लेकिन उसका वितरण तो नहीं किया। हम कहते हैं कि जमीन प्राप्त करने की कुंजी हमें एकदम हासिल नहीं हुई, वह धीरे-धीरे हमारे हाथ मे आयी। इसी तरह जमीन के बँटवारे की कुंजी भी पहले हासिल नहीं थी, अब हासिल हुई है। हमने कहा था कि हिन्दुस्तान की कुल जमीन का बँटवारा एक दिन में करना है और वह एक दिन लाने के लिए हमें कोशिश करनी है। कुल गाँवों का बँटवारा एक ही दिन मे हो सकता है। जैसे हम सुनते और अनुभव भी होता है कि एक ही दिन में कई प्रान्तों मे और कुल जमीन पर बारिश हो जाती है। बारिश एक एक गाँव की जमीन भिगोकर आगे नहीं बढ़ती, एकदम कुल जमीन पर बरसती है। इससे बेहतर उपमा सूर्यनारायण की है। उसके उदय से एक ही समय सारे घरों में प्रकाश होता है। यह तो कुदरत की उपमा हुई। लेकिन मानव-समाज में भी ऐसी उपमा हम देखते हैं। एक ही दिन में हर घर में दीवाली मनायी जाती है। सभी घरों में दीपक जलते हैं। ऐसे ही लोगों में इसकी भावना पैदा हुई और वह जिस तरह लोगों को मालूम हो गयी है, उसी तरह एक दिन में कुल जमीन का बँटवारा भी होना चाहिए, हो रहा है और होगा। इसके कुछ प्रयोग करने

की हिम्मत कुछ भाइयों ने की है। बिहार में एक ही दिन में सौ दो सौ गाँवों की जमीन का बँटवारा किया गया और उसमें हमारे भाई यशस्वी हुए। किस तरह वह किया, यह वर्णन करने का यह समय नहीं। इससे लोगों को विश्वास हो गया कि एक ही दिन में कुल गाँवों की जमीन का बँटवारा हो सकता है। यह असंभव नहीं। इसीका प्रयोग उड़ीसा में भी हुआ। वहाँ सात आठ सौ ग्रामदान हुए। उनमें से चार सौ ग्रामों में जमीन बँटी। दान की प्राप्ति में जितनी मेहनत लगती है, उससे ज्यादा मेहनत बाँटने में है। लेकिन लोकशक्ति से यह कार्य भी हो सकता है, यह सिद्ध हुआ। इसलिए मैंने कहा कि यह कुंजी हमारे हाथ आ गयी है।

अखिल भारतीय नेतृत्व नहीं, स्थानिक सेवकत्व

भूदान की एक बड़ी खूबी यह है कि इसमें अखिल भारतीय नेतृत्व नहीं बनता, क्योंकि भूदान-आन्दोलन पैदल चलता है। इन दिनों कितने ही अखिल भारतीय नेता हुए। लेकिन बुद्ध भगवान् अखिल भारतीय नेता न बन सके। वे केवल पाली भाषा में बोलते और प्रयाग से लेकर गया तक घूमते। फिर भी उनका विचार विश्वव्यापक होने लायक था। वह इसीलिए फैला कि इस विचार के लायक उनका जीवन भी था। शिवाजी अखिल भारतीय नेता न बन सके। सतत प्रयत्न करने के बावजूद भी देश का छोटा-सा हिस्सा ही उनके हाथ आया। जनक्रान्ति का कार्य एक स्थान में बनता है और हवा के जरिये दुनियाभर जाता है। इस आन्दोलन की यह खूबी हमारे लिए बहुत मददगार है। पंजाब के लोगों को पूरा विश्वास हो गया है कि बाबा चंद दिनों में हमारे प्रान्त में न आयेंगे। अगर बाबा रेलगाड़ी से जाता, तो एक महीने में पहुँचता। किन्तु मैं पैदल यात्रा करता हूँ, इसलिए नेतृत्व स्थानिक ही होता है। बल्कि यह कहना चाहिए कि स्थानिक नेतृत्व भी नहीं, 'स्थानिक सेवकत्व' बनता है, क्योंकि हम सेवक बनकर लोगों के पास पहुँचेंगे, तभी जमीन मिलेगी। नेता के नाते पहुँचेंगे, तो जमीन न मिलेगी। आज ही सुबह हमने कहा था कि हमारी ताकत इसीमें है कि हम अपने स्वामी के सेवक हैं। तुलसीदासजी रघुनाथजी को जगाने के लिए क्या करते थे। वे गाते थे, "जागिये रघुनाथ कुँवर"। इसी तरह तमिल-भक्त भी गाते

हैं। उन्हें जगाने के लिए भजन गाते हैं। इस तरह प्रभु को जगाना है। लोक-हृदय में जो प्रभु विराजमान हैं, उन्हें जगाने के लिए हम भक्त होकर जायँ, तभी वे जाग सकते हैं।

गणसेवकत्व का आविष्कार

किन्तु इस साल जो कुछ हुआ, वह यह है कि व्यक्ति के सेवकत्व के बदले गण-सेवकत्व हो सकता है। आप लोग जानते हैं कि इन दिनों रूस में एक नयी खोज हुई है कि जिसे रूस का उपकारकर्ता माना जाता था, वह वास्तव में उसका उपकारकर्ता नहीं है, उसके स्तुति-स्तोत्र से इतिहास के पन्ने भरे थे। वहाँ इस इतिहास के बदलने की भी बात चली है। दुनिया के इतिहास में इतना बड़ा संशोधन पहला ही है। हमने अखबार में पढ़ा कि कुछ दिनों तक रूस में इतिहास न सिखाया जायगा, नया इतिहास संशोधनपूर्वक लिखा जायगा और उसके बाद वही पढ़ाया जायगा। याने 'मदहेसाहबा' का रूपान्तर 'तबर्रा' में हो गया।

मतलब यह कि इसलाम के दो पंथ हो गये हैं, एक सुन्नी और दूसरा शीआ। इसमें कुछ खलीफा हो गये हैं। इन दो पंथों में से एक पंथ के लोग उन खली-फाओं की स्तुति करना 'धर्म' मानते हैं, तो दूसरा पंथ उनकी निन्दा करना ही अपना धर्म मानता है। स्तुति करना धर्म माननेवाले 'मदहेसाहबा' हैं और निन्दा करना धर्म समझनेवाले 'तबर्रा' हैं यह स्तुति और निन्दा करने का दिन एक ही आता है। अगर वह एक ही दिन, एक ही जगह चलेगा, तो झगड़े और मार-पीट होगी ही। इसीलिए रूस की इस नयी खोज के लिए मैंने कहा कि "रूस में अब तक 'मदहेसाहबा' चलता था, अब 'तबर्रा' चलेगा।"

हाँ, तो तालीम में स्टालिन की स्तुति का विशेष महत्त्व नहीं, वह व्यक्तिगत विषय है। किन्तु वहाँ एक नयी बात सूझी, वही विशेष महत्त्व की है। कहते हैं, अब वहाँ 'कलेक्टिव लीडरशिप' चलेगी। याने व्यक्तिविशेष का नेतृत्व नहीं, 'गणनेतृत्व' चलेगा। यह एक नया विचार रूस में निकला। इसी तरह भूदान में भी गणसेवकत्व की खोज हुई है।

मध्यप्रदेश में कई कार्यकर्ता इकट्ठे होकर लोगों के पास पहुँचकर दान माँगते हैं। यह उनका व्यापक प्रयोग शुरू हुआ है, क्योंकि ईश्वर की कृपा से नये लोगों

को मौका देने के लिए वहाँ पुराने नेता उसमें शामिल नहीं हैं। मतलब, बने-बनाये नेता काम में नहीं आते और नये नेता एकदम बनते नहीं, तो छोटे-छोटे कार्यकर्ता काम करते हैं। उन लोगों ने सामूहिक तौर पर काम करना शुरू किया है। अनुभव आया कि यह गणसेवकत्व बड़ा सफल होता है। वहाँ के जो कार्यकर्ता हमसे मिले, हमने देखा, उनका आत्मविश्वास खूब बढ़ा है। हम आन्दोलन का नाप कितनी जमीन मिली, इस पर से नहीं करते। हम देखते हैं कि हमारे कार्यकर्ता की हिम्मत कितनी बढ़ी। इस तरह जनशक्ति के जरिये काम हो सकते हैं, व्यक्ति के नेतृत्व के अभाव में भी गणसेवकत्व सफल हो सकता है, यह पिछले साल में सिद्ध हुआ।

सम्पत्तिदान की प्रगति

एक और भी उत्तम अनुभव आया। हमें भूमिदान तो मिलता था, पर लोग कहते थे कि 'सम्पत्तिदान' मिलेगा या नहीं? पर जब संपत्ति मिली, तब इन लोगों का संदेह मिटा। पहले तो भूदान के बारे में भी ऐसा ही संदेह इनके मन में था। संदेही मनुष्य के लिए एक संदेह जहाँ समाप्त हुआ, वहीं दूसरा शुरू होता है। पैगम्बर ने लिखा है कि 'सन्देह करनेवाले लोगों को अगर स्वर्ग में ढकेला जाय, तो वे वहाँ भी सन्देह करेंगे कि यह स्वर्ग है या नरक? इसलिए इन्हें सन्देह होता है कि जमीन तो मिली, पर सम्पत्ति मिलेगी या नहीं? और सम्पत्तिदान मिले, तो भी वह सतत कैसे चलेगा? पर इसका अनुभव इस साल बहुत आया। अभी बिहार में जयप्रकाशजी की जो सभाएँ हुईं, उनमें हजारों सम्पत्तिदान-पत्र मिले। इसका अर्थ यह नहीं है कि वह काम किसी एक दिन का या किसी विशेष स्थान का था। पहले से ही तैयारी थी। फिर भी हजारों दानपत्र प्राप्त करना छोटी बात नहीं। कार्यकर्ता जुटे होंगे, गाँव-गाँव घूमे होंगे। यही अनुभव उड़ीसा के छोटे-छोटे गाँवों में आया। आज काफी तादाद में वहाँ सम्पत्तिदान-पत्र मिल रहे हैं। इसका भावार्थ यह है कि अभी लोकहृदय इसके लिए तैयार नहीं हुआ है कि कोई आते हैं, तो उसे दान की दीक्षा देते जायँ।

दोष मनुष्य में नहीं, समाज-रचना में

कुछ लोग तो कहते हैं कि इन दिनों लोगों का नैतिक स्तर गिरने लगा है।

इसी तरह का भाव कल राजाजी के व्याख्यान में भी था। हम कहना चाहते हैं कि यह ऊपर-ऊपर का भास है। वास्तव में समाज की रचना ही गलत है, इसीलिए पैसे का महत्त्व बढ़ा। पैसे की कोई स्थिर कीमत नहीं होती। सभी देखते हैं कि पैसा आज एक कीमत बोलता है, तो कल दूसरी कीमत। इसलिए हमें लगता है कि लोगों का स्तर गिरा नहीं है। आज हजार रुपये मिले, तो मनुष्य को लगता है कि यह बस है। लेकिन कल जब उसे मालूम होता है कि उस हजार रुपये की कीमत पाँच सौ रुपये हुई, तो उसे लगता है कि इतने हजार रुपये नाकाफी हैं। लोभ-वृत्ति मनुष्य में होती है, इसलिए कितना भी पैसा आया, तो भी समाधान नहीं होता।

हमारे एक भाई थे, उन्होंने हमसे कहा था कि 'हमें दस हजार रुपये मिल जायँगे, तो हम जन-सेवा करेंगे।' हमने कहा : 'यह तुम्हारा भ्रम है, फिर भी देख लो।' फिर दो-चार साल बाद उसके पास दस-बारह हजार रुपये हो गये। तब हमने पूछा कि 'सार्वजनिक सेवा के लिए कब आते हो?' उसने कहा : 'इन दस-बारह हजार रुपयों की कीमत कम हो गयी है, इसलिए अब पचास हजार रुपये कमाने होंगे!' हमें तो यह विनोद मालूम हुआ, लेकिन हम कबूल करते हैं कि इसमें तथ्य भी है।

साराश, श्रम के बदले पैसे को महत्त्व दिया गया, यही गलत काम हुआ। पैसे की कीमत अस्थिर हो गयी है, यह दूसरी गलती है। इसीलिए लोकमानस में पैसे की तृष्णा बढ़ी। इसमें उनका उतना दोष नहीं, जितना गलत समाज-रचना का है। पत्तागोभी में अनेक स्तर होते हैं और ऊपर के छिलके पर हवा का परिणाम होने से कभी-कभी वह हिस्सा सड़ा दीखता है। इससे यह मालूम नहीं हो पाता कि गोभी अन्दर अच्छी है या नहीं। किन्तु जब हम ऊपर के पत्ते को हटाते हैं, तो मालूम होता है कि अन्दर स्वच्छ, शुद्ध, निर्मल पत्ते हैं। ठीक इसी तरह मनुष्य के चित्त की स्थिति होती है। कभी-कभी खराब हवा के कारण उसके मन का ऊपरी हिस्सा खराब हो जाता है। लेकिन उस पर से कोई अन्दाज लगाये कि यह मन सड़ा है, तो वह गलत होगा। ऊपर का हिस्सा हटा देने पर अन्दर स्वच्छ-सुन्दर मन भी मिल सकता है।

हम कहना चाहते हैं कि अब भी लोकमानस दान और त्याग के लिए तैयार है। हमने हिन्दुस्तान में कई जगह अनुभव किया कि हमारी सभा में हजारों लोग शान्ति से सुनते हैं। हम उन्हें क्या समझाते हैं? यही कि 'आज का तुम्हारा जीवन गलत है, उसमें सुधार करना होगा, अपने भाई को हिस्सा देना होगा और समाज को जीवन अर्पित करना होगा।' हम कहते हैं कि ठीक इसके विपरीत कोई भी ऐसा शख्स निकले, जो हिन्दुस्तानभर घूमकर जगह-जगह यह समझाये कि 'अगर कोई चीज अच्छी है, तो वह स्वार्थ है। भोग भोगना उन्नति की बात है!' फिर, हम और वह देखें कि कितने लोग उसकी बात सुनते हैं। हम कहते हैं, ऐसे मनुष्य को हमारे लोग इसलिए पत्थर न मारेंगे कि हिन्दुस्तान में संयम है। फिर भी यह निश्चित है कि हमारे जैसे हजारों लोग उसकी बात कभी न सुनेंगे।

सारांश, लोग सम्पत्ति देने को राजी हैं। आज की ही बात है, एक भाई कुछ पैसे दान में दे रहे थे। उन्हें समझाया गया कि सम्पत्तिदान का तरीका अलग है। यह फंड इकट्ठा करने की बात नहीं। इस पर उसने कहा कि 'तब तो सम्पत्तिदान का तरीका बहुत ही बेहतर है।' और उसने सम्पत्तिदान देना भी मान्य किया। सारांश, पिछले साल का अच्छा अनुभव है कि सम्पत्तिदान का काम बढ़ रहा है।

भूमिहीनों का हृदय-परिवर्तन

पिछले साल का एक और अनुभव है। उसमें भी एक ताकत भरी है। मध्यप्रदेश में 'आदाता-सम्मेलन' किया गया। जिन्हें जमीन मिली है, वे छोटे-छोटे लोग हैं। कार्यकर्ताओं ने आशा की थी कि सौ-सवा सौ लोग आयेंगे, लेकिन कुल जिलों में से पाँच सौ लोग आये। उन्होंने बातें समझ लीं और हमें भी कुछ देना चाहिए, यह मानकर हर साल की जो फसल आयेगी, उसमें से एक हिस्सा देने का तय किया। बहुत-से लोग पूछते हैं कि इस आन्दोलन में भूमिहीनों के हृदय-परिवर्तन की ओर उनके उत्थान की क्या योजना है? इस अनुभव से उन लोगों को अब अच्छा उत्तर मिल जायगा।

भारत में नैतिक क्रान्ति के आसार

हमने एक और नयी बात की है और वह है : व्यापारियों का आवाहन। हम समझते हैं कि इसका भी अच्छा अनुभव आवेगा। हमसे कहा गया कि उसका असर व्यापारियों पर अच्छा हो रहा है। व्यापारियों को हिन्दुस्तान में एक धार्मिक स्थान दिया गया है। सत्य, प्रेम आदि गुणों को सारी दुनिया में गौरव का स्थान प्राप्त है। इन गुणों की सब धर्मों में कीमत होती है। किन्तु व्यापार को भी एक स्वतन्त्र धर्म के रूप में हिन्दुस्तान मे ही माना गया। दुनिया के लोग व्यापार को व्यावहारिक काम मानते हैं। पर हिन्दुस्तान में चातुर्वर्ण्य की योजना मे व्यापार को वैश्य का एक स्वतन्त्र धर्म माना गया है। वैश्य को मोक्ष का उतना ही अधिकार है, जितना वेदाध्ययनशील ब्राह्मण को। यह हिन्दुस्तान की विशेषता है कि व्यापार भी करो और मोक्ष भी पाओ, जो अजीब बात है। दूसरे देशों में कहा गया कि सूई के छेद से ऊँट चला जा सकता है, पर श्रीमान् को मोक्ष न मिलेगा। लेकिन हिन्दुस्तान के दयालु शास्त्रों की योजना में व्यापारी को कुछ शर्त के साथ मोक्ष-मार्ग खुला कर दिया गया। हमने व्यापारियों से निवेदन किया कि 'यह जो भार आप पर डाला गया है, उसे आप उठाइये। हमें सुनाया गया कि उसका असर व्यापारियों पर अच्छा हुआ है। हम कोई भविष्यवादी नहीं और न भविष्यवाद पर हमारी श्रद्धा है, पर हमारे मन में इस बारे में कोई सन्देह नहीं कि भारत में एक नैतिक क्रान्ति होने जा रही है।

हानियां का लेखा

गये साल में हानियाँ भी हुई और वे काफी गम्भीर हैं। इधर इतना नैतिक उत्थान का अनुभव और उधर उतनी नैतिक हानियों का अनुभव! आखिर यह क्या तमाशा है! यह है परमेश्वर की लीला! इसका भी समाधान है। कई लोग कहते हैं कि एक ओर लोग जमीन देते हैं और दूसरी ओर वे ही बेरहमी से बेदखलियाँ करते हैं। इसीलिए वे कहते हैं कि लोग बाबा को ठग रहे हैं, वे दान देने का ढोंग करते हैं, पर जब वे बेदखलियाँ करते हैं, तब उनकी असलियत प्रकट हो जाती है। हम कहते हैं कि हम इससे उल्टा समझते हैं। हम कबूल

करते हैं कि लोग दान भी देते हैं और उधर बेदखल भी करते हैं। लेकिन हम समझते हैं कि वह बेदखली का काम असलियत नहीं, उनका ढोंग है और बाबा को दान देना उनकी असलियत है। यह इसलिए कि उनकी दान की प्रवृत्ति उनकी आत्मा का गुण है और बेदखलियाँ करना परिस्थिति का परिणाम। सरकार कानून नहीं बनाती, लेकिन 'बनेगा-बनेगा' ऐसा चार साल से कह रही है। वे लोग बेचारे भयभीत हैं, अपने को सँभालना चाहते हैं, इसलिए सँभाल लेते हैं। लोभ तो मनुष्य में है ही, पर उसके साथ भय भी है। इसलिए परिणामस्वरूप परिस्थितिजन्य दोष हो रहा है।

लोगों का यह बुरा रूप असलियत नहीं, बाहर की हवा के कारण ऊपरी अस्तर की सड़ानभर है। बाबा को यह कुशलता सधी है कि वह ऊपर का छिलका हटाकर अन्दर ही देखता है। ऊपर का हिस्सा सड़ा हो, तो भी हटाता है और सड़ा न हो, तो भी हटाता है। बाबा ने कहा है कि पत्तागोभी काटने का नियम ही यह है कि ऊपर का छिलका निकाल देना चाहिए। इसलिए हम अपने अनुभव से कह रहे हैं कि लोगों की असलियत दान में प्रकट होती है। फिर भी ऊपर का छिलका सड़ गया, यह इष्ट तो नहीं है। उसके सड़ने से अन्दर भी कुछ परिणाम होता है, इसलिए ऊपर का छिलका अच्छा रहे, ऐसी ही कोशिश करनी चाहिए। उस हिसाब से इन हानियों का जिक्र करता हूँ, पर निराश नहीं हूँ।

भाषावार प्रान्त का विचार गलत नहीं

भाषावार प्रान्त के कारण कई जगह हिंसा के प्रकार हुए। उसका बहुत दुःख हमें है और हमने माना है कि यह भूदान-यज्ञ की हार है। अब हमारा ध्यान इस ओर गया है। हमने विशेष परिश्रम शहरों पर नहीं किया, यही इसका कारण है। हम यह कह देना चाहते हैं, इसके पहले भी कहा है कि भाषावार प्रान्त बनाने में कोई गलती नहीं है। बल्कि हम यह मानते हैं कि लोगों की भाषा में राज्य न चलेगा, तो स्वराज्य के कोई मानी ही नहीं है। लोगों की भाषा हाईकोर्ट का न्यायाधीश नहीं जानता, तो वह न्यायाधीश बनने के लायक

ही नहीं। उसे किसान जो कहता है, उसे समझना और उसीकी भाषा में उसका जवाब देना चाहिए, उसका बयान तर्जुमा कर नहीं। इतना ही नहीं, उसका फैसला भी उसी भाषा में देना चाहिए। तालीम भी लोगों की भाषा में ही देनी चाहिए। यह जनता का अधिकार है और यही स्वराज्य का अर्थ है। इसलिए हम उसमें कोई गलती नहीं मानते। बल्कि हम तो यह भी कहते हैं कि भाषावार प्रान्त की रचना की माँग करनेवाले को 'तू संकुचित है, तू संकुचित है', कहकर संकुचित बनाया गया है। उपनिषद् का सिद्धान्त है कि अगर हम सामनेवाले को कहते हैं, 'तू पापी है, तू पापी है', तो वह पापी ही बनता है। समझने की जरूरत है कि भाषावार प्रान्त-रचना की माँग सज्जनों की तरफ से ही हुई है, दुर्जनों की तरफ से नहीं। इसलिए इसमें गलती नहीं। किन्तु उन पर जो संकुचितता का आरोप किया गया, उससे वे संकुचित बन गये। कुछ लोग पहले से भी संकुचित होंगे। परिणामस्वरूप काफी हिंसा हुई, जो बड़ी दुःखद घटना है।

हिंसा का कारण डाँवाडोल निष्ठा

अब यह गम्भीरता से सोचने लायक विषय है। यह क्यों हुआ? इसलिए कि हमने आज तक गलत मनुष्यों का गौरव किया। १९४२ के आन्दोलन में जनता की तरफ से रेलवे लाइन उखाड़ना आदि कई प्रकार किये गये। भाषावार प्रान्त-रचना के आन्दोलन में जो बातें हुईं, वे सारी १९४२ में हो चुकी थीं और उनका गौरव भी हुआ था, क्योंकि अच्छे काम के लिए वे हुई थीं। सन् '४२ में माना गया था कि वह अच्छा काम था, इसलिए हिंसा भी मंजूर हुई। अब अगर अच्छे काम के लिए हिंसा को उचित मान लिया गया, तो इस काम के लिए हिंसा करने पर क्या गलती हुई? आज जनता के मन में इस विषय में सफाई नहीं है। अगर यह सफाई होती और इसका स्पष्ट ज्ञान होता कि हमें स्वराज्य अहिंसा की शक्ति से हासिल हुआ है, तो आज जो दशा दिखाई देती है, वह न दीखती। हम देखते हैं कि एक ही शख्स के घर में एक फोटो महात्मा गांधी का होता है और उसीके नजदीक सुभाष बोस का भी। हम भी

सुभाष बोस के अनेक गुणों का, उनकी सेवाओं और देशभक्ति का गौरव करते हैं। लेकिन वह जो चित्र लगा रहता है, वह गुण-गौरव के लिए नहीं। वह इस विश्वास से रहता है कि हमें जो स्वराज्य मिला, उसमें कुछ गुण है महात्मा गांधी की अहिंसा का और कुछ गुण है हिंसा का। यानी जैसे हाइड्रोजन और ऑक्सीजन मिलकर पानी बनता है, वैसे ही इधर से अहिंसक लोगों ने शत्रु को सताया और उधर से दूसरों ने हिंसा से सताया, उसीका परिणाम स्वराज्य है। याने हमने अहिंसा को शत्रु पर हमला करने का एक तरीका माना और हिंसा को उसीका दूसरा तरीका।

हमें आज दुनिया में इस मामले में दो मनःस्थितियों का मुकाबला करना है। एक विचार यह है कि लोगों का, खासकर यूरोप-अमेरिका के लोगों का (यह मानस-शास्त्र का निदान है), हिंसा पर से विश्वास उठ गया है। उनका नाम इसलिए लिया, क्योंकि उनका हिंसा पर बहुत विश्वास था। कारण हिंसा ने प्रतिहिंसा का रूप लिया और वह काम नहीं करती, नुकसान ही करती है, ऐसा दीखता है। फिर भी उनका अभी अहिंसा पर विश्वास बैठा नहीं है। चित्त की यह बीच की हालत बहुत भयानक होती है और आज वे इसी हालत में हैं। उनका मन केवल डाँवाडोल है। उनसे कोई भी कदम निश्चयपूर्वक नहीं उठाया जाता, चिंतनपूर्वक कोई काम नहीं होता। नसीब से जो होगा, वह हो जायगा। अगर हिंसा पर उनका विश्वास होता, तो वे निश्चित कदम उठाते, अहिंसा पर पूर्ण विश्वास होता, तो भी वे निश्चित कदम उठा सकते। किन्तु अहिंसा पर विश्वास बैठा नहीं और हिंसा पर से विश्वास उठ गया, इसलिए बीच की हालत में निश्चित कदम उठाया नहीं जाता। यह समस्या आज दुनिया के सामने उपस्थित है।

छोटी हिंसा का भरोसा

दुनिया के सामने एक दूसरी समस्या है, जो हिन्दुस्तान में भी मौजूद है। वह यह है कि हिन्दुस्तान जैसे देश की बड़ी हिंसा पर श्रद्धा नहीं रही, क्योंकि इसके साधन आज उसके पास नहीं हैं और उन्हें वह जल्दी हासिल कर सकेगा, ऐसे लक्षण भी नहीं हैं। फिर भी छोटी हिंसा पर यहाँ के लोगों का विश्वास है,

यह एक बड़ी विचित्र बात है। छोटी हिंसा यशस्वी नहीं होती, इसलिए बड़ी हिंसा के प्रयोग हुए। लेकिन हिन्दुस्तान के लोगों में छोटी हिंसा पर ही श्रद्धा बैठ गयी। यह स्वाभाविक ही है कि जो लोगों की स्थिति है, उसका प्रतिबिंब सरकार में पड़े। फलतः आपने देखा ही कि गोलियाँ जगह-जगह चलीं। मैं सिर्फ इस भाषावार प्रान्त-रचना की बात नहीं करता, इन पाँच-सात सालों में कई मौकों पर गोलियाँ चलीं। कहीं कारणों की तलाश हुई और कहीं नहीं भी हुई। कहीं वह जायज साबित हुआ और कहीं नाजायज। इस जायज-नाजायज मे हम पड़ना नहीं चाहते। उसका फैसला कोर्टवाले अपने तरीके से दें। किन्तु हमें यह आभास हुआ। हम किसी पर अन्याय करना नहीं चाहते। गोलियाँ आसानी से चलीं। याने लोगों की तरफ से जैसे हिंसा हुई, वैसे फौरन दूसरी बाजू से हिंसा की तैयारी हुई। दोनों तरफ से छोटी हिंसा पर विश्वास है!

यह देश के लिए बड़ी दुःख की घटना है और एक समस्या है। इसका एक ही अर्थ हो सकता है कि हमें अहिंसा की शक्ति और सत्याग्रह की शक्ति खड़ी करनी होगी। 'सत्याग्रह' शब्द गम्भीर है, दस-बारह साल से हम इस पर चिंतन कर रहे हैं। कई विचार सूझते हैं। हम जानते और मानते हैं कि सत्याग्रह से बढ़कर दुनिया के लिए मुक्तिदायक कोई शस्त्र नहीं। किन्तु आज सत्याग्रह को भी एक धमकी का रूप आया है। यह कोई रचनात्मक शक्ति का रूप नहीं है, यह भी गम्भीर विषय है। हम चाहते हैं कि हमें अक्सर इसकी छानबीन करनी चाहिए। यह गम्भीर विषय थोड़े में नहीं कहा जा सकता।

लोकशाही और सत्याग्रह

हम यह भी कहना चाहते हैं कि गांधीजी के जमाने में जो सत्याग्रह हुए, उन्हें अगर हम आदर्श मानें, तो गलती करेंगे, क्योंकि स्वराज्य-प्राप्ति के बाद लोकशाही में जो सत्याग्रह होता है, वह अधिक स्पष्ट, शक्तिशाली और अधिक विधायक होना चाहिए। इसलिए बापू ने बहुत बार कहा था कि सत्याग्रह का शास्त्र हम लिख नहीं सकते, वह धीरे-धीरे विकसित हो रहा है। उस शास्त्र का हमें विकास करना होगा। खेद है कि हमने उसका विकास करने के बजाय उस

शास्त्र को गांधीजी के जमाने में जिस तरह चलाया गया, उससे भी नीचे के स्तर पर गिरा दिया। गांधीजी के समय का स्वराज्य-प्राप्ति का कुल काम 'निगेटिव' था। पर आज हमें जो काम करना है, वह वैसा नहीं है। आज हमें अपने देश-वासियों के जीवन का ही रूपांतर करना है। बापू हमेशा भाषा बोलते थे "एण्ड और मेण्ड" की। हम वह भाषा नहीं बोल सकते, वह अंग्रेजों से "क्विट इंडिया" (भारत छोड़ो) कह सकते थे। पर हम व्यापारियों को, जमीन के मालिक को, संपत्ति के मालिक को 'क्विट इंडिया' नहीं कह सकते। हम सबको यहीं रहना है, इसलिए कोई 'क्विट' नहीं करेगा। इसलिए हम सबको एक साथ रहने की युक्ति साधनी चाहिए। ऐसी स्थिति में जो सत्याग्रह होगा, उसमें सत्याग्रह का गुण-मुक्तस्वरूप प्रकट होना चाहिए, लेकिन वह प्रकट नहीं हुआ। उसकी आज प्रतिक्रिया यह हुई है कि कुछ लोग कहने लगे हैं, लोकशाही में सत्याग्रह का स्थान नहीं है। यह अजीब बात है कि लोकशाही में लश्कर का स्थान तो है, पर सत्याग्रह का नहीं। यह भी बिल्कुल गलत विचार है, यद्यपि बहुत बड़े-बड़े लोग यह विचार रखते हैं। इस हालत में हम पर बड़ी जिम्मेवारी है। हमें सत्याग्रह को और उसके शास्त्र को विकसित करना होगा।

द्रविड़ देश में मेरी श्रद्धा

अब मैं कुछ बातें अपने खुद के काम के बारे में कहना चाहूँगा। मैंने कहा कि इस समय हमें नम्रता की बहुत जरूरत है। शुद्धि की बहुत जरूरत है। अब मैं बिलकुल दक्षिणापथ में आ पहुँचा हूँ। इसके आगे अब दक्षिण देश नहीं रहा। भारत का आखिरी हिस्सा यही है। हमें हमारे काम की परिसमाप्ति यहीं महसूस हो रही है। हम चाहते हैं कि इस आन्दोलन का पूरा तेज यहाँ प्रकट हो। हम कुछ श्रद्धा रखकर यहाँ आये हैं। वैसी श्रद्धा से ही हम हर जगह जाते हैं। पर यहाँ विशेष श्रद्धा से आये हैं, यह कबूल करना चाहिए। वह इसलिए कि हमारे मन में प्राचीन ग्रंथों के बारे में कुछ प्रेम है। यह नहीं कि उनमें कुछ गलत बातें हों, तो भी उन्हें हम शिरोधार्य समझेंगे। पर हमारे मन पर उनमें जो अच्छी बातें हैं, उनका बहुत असर होता है। ऐसे ग्रंथों में भागवत एक ग्रन्थ

है। उसमें लिखा है कि जब कभी ऐसी स्थिति आयेगी कि सारी दुनिया से भक्ति हट जायगी, तब भी द्रविड़ देश में वह कायम रहेगी। हम नहीं जानते कि इस तरह का अनुमान करने को उनके पास क्या आधार था। पर कुछ था जरूर, यह मानकर हमने श्रद्धा रखी। यहाँ हम देखते हैं कि गाँव-गाँव में एक बड़ा मंदिर होता है, उसके इर्द-गिर्द गाँव होता है। यहाँ के छोटे गाँव का मंदिर उत्तर हिन्दुस्तान के बड़े गाँव के मंदिर की बराबरी करेगा। यहाँ के बड़े कवि भारतीय्यार ने उल्लेख किया है कि यहाँ के लोग सुपुत्र निर्माण हों, इसलिए यह मंदिर होते हैं और माताएँ अपने पुत्र अच्छे निकलें, इसलिए तपस्या करती हैं।

प्रार्थनात्मक उपवास का संकल्प

सारांश, हमने इसी श्रद्धा से यहाँ कदम रखा है। उत्तर हिन्दुस्तान में जो कुछ पुण्य-संग्रह हुआ, वह सब लेकर हम यहाँ आये। इसलिए यहाँ के कुल लोगों का सहयोग हमें हासिल करना है। परमेश्वर से प्रार्थना है, हम सबकी ऐसी शुद्धि हो कि हमारी आवाज सबको मधुर मालूम हो। इसीलिए यहाँ कितना रहना चाहिए, इसकी मर्यादा हमने नहीं रखी। हम चाहते जरूर हैं कि कम-से-कम समय में काम हो, पर हम यह भी चाहते हैं कि वह व्यापक हो। याने हम चाहते हैं कि भूदान के साथ रचनात्मक काम सहज जोड़ सकें, तो जोड़ें। गाँव-गाँव खादी और ग्रामोद्योग चले। ग्राम-स्वावलंबन के लिए तैयारी करने का, ग्रामोदय का कार्य भी यहाँ हो और जातिभेद का भी निरसन हो। तीसरी बात हम चाहते हैं कि सर्वत्र लोग नयी तालीम का विचार समझें। कम-से कम ये तीन चीजें हम भूदान के साथ अवश्य जोड़ना चाहते हैं। इसलिए सिर्फ भूदान-कार्यकर्ताओं की नहीं, बल्कि सभी रचनात्मक कार्यकर्ताओं की मदद चाहते और उन्हें मदद देना चाहते हैं। इसके लिए हम अधिक शुद्धि की जरूरत महसूस करते हैं। इस वास्ते हमने सोचा है कि १ जून से तीन दिनों तक उपवास करें-याने पूरे तीन दिन, बहत्तर घंटे। १ तारीख को आठ बजे हम खायेंगे और ४ तारीख को फिर आठ बजे खायेंगे। यह केवल प्रयोग करने के वास्ते, चित्त-शुद्धि के वास्ते और शुद्ध चिंतन हो सके, इस आशा से और प्रार्थना के लिए हम करना चाहते हैं।

मुद्दत किसलिए ?

१९५७ में यह काम किस तरह समाप्त होगा, यह जानने की एक बहुत तीव्र इच्छा लोगों के मन में रहती है। उस वासना को हमने खुद बढ़ावा दिया है। इसलिए उसकी पूरी जिम्मेवारी हम खुद उठाते हैं। बहुतों ने इस बारे में हमें सावधान किया था। एम० एन० रॉय ने लिखा था कि 'एक मुद्दत रखना और साथ-साथ यह भी कहना कि हृदय-परिवर्तन से काम करना है, परस्पर-विरोधी है।' कुछ लोगों ने हमसे यह भी कहा कि 'इसमें गलत तरीके अख्तियार किये जा सकते हैं, जल्दबाजी की भावना में हिंसा भी हो सकती है।' एक आक्षेप यह भी है कि 'इससे सकाम-वृत्ति होती है। गीता ने निष्काम-वृत्ति की सिखावन दी है, उससे इसका विरोध होता है।'

हम तीनों आक्षेप समझ न सके हैं; यद्यपि उनका हम गौरव करते हैं। निष्कामता को हम सेवा-वृत्ति का प्राण समझते हैं। हम कबूल करते हैं कि अहिंसा से भी बढ़कर हमारे चित्त में निष्कामता के लिए अधिक आदर है। लेकिन साथ-साथ यह भी कहते हैं कि हम 'निष्कामता' और 'अहिंसा', दोनों को पर्याय या समान अर्थ के मानते हैं। इसलिए ऐसी मर्यादा रखने में निष्कामता पर प्रहार होता है, यह आक्षेप हमें अधिक तीव्र लगा। हम चाहते हैं कि शीघ्र-से-शीघ्र दुनिया दुःख से निवृत्त हो। ऐसा मानना निष्कामता के विरुद्ध नहीं। इसलिए शीघ्र काम करने से निष्कामता खोने की बात हम नहीं मानते।

एक निश्चित मुद्दत हम मन में रखना चाहते हैं और हृदय-परिवर्तन की प्रक्रिया का आधार लेते हैं, इन दो बातों में भी हमें विरोध नहीं मालूम पड़ता। निश्चित मुद्दत इसलिए होती है कि एक ही कार्य अनंतकाल तक नहीं किया जाता। एक तरीका लोगों के सामने हम रखते हैं और कहते हैं कि इस तरीके से पाँच सौ साल बाद काम होगा, तो वह तरीका किसी काम का नहीं रहता। अतः निश्चित मुद्दत में काम करना जरूरी है।

किन्तु अगर काम नहीं होता, तो क्या गलत तरीके आजमायेंगे ? गलत तरीके से कभी काम न होगा। गलत तरीके आजमाये जायँगे, ऐसा डर ही

सकता है। पर किसी-न-किसी प्रकार का खतरा उठाये बिना कोई बड़ा काम नहीं हो सकता। हिम्मत के बिना कोई काम नहीं होता। हाँ, इतनी सामति रखना हमारा कर्तव्य है कि गलत तरीके आजमाये न जायँ और उतावली न रखें।

उपाय-संशोधन का मौका

हमने बहुत बार कहा है कि इस काम के पीछे ईश्वर का हाथ है। इससे लोग यह समझते हैं कि यह ईश्वर का कार्य है, इसलिए ईश्वर सन् १९५७ में चमत्कार करेगा और काम हो जायगा। किन्तु हम मनुष्य और ईश्वर में बहुत थोड़ा फर्क करते हैं। मनुष्य के दो हाथ होते हैं, तो ईश्वर सहस्र हाथोंवाला है। पर जहाँ हजारों मनुष्य इकट्ठे होते हैं, वहाँ ईश्वर की शक्ति प्रकट होती है, अर्थात् सज्जन धर्मकार्य के लिए जब इकट्ठा होते हैं, तब ईश्वर ही प्रकट होता है। जैसे ईश्वर के अनेक हाथ हैं, वैसे राक्षसों के भी अनेक हाथ होते हैं, किन्तु अनेक हाथ और धर्म-कार्य का जहाँ संयोग होता है, वहीं ईश्वर का अधिष्ठान होता है। यह हमारा विश्वास है कि ईश्वर की मदद इसके पीछे है। इसीलिए लोगों के दिल में अनुकूल भावना होती है। मुद्दत रखने का तात्पर्य यही है कि हमें उपाय-संशोधन का मौका मिले। एक उपाय हमारे हाथ मे आने पर उसे हम पूरा नहीं आजमाते, तो काम नहीं बनता और फिर नया उपाय भी नहीं सूझता। एक उपाय को हम पूरी तरह से आजमाते हैं, निश्चित मुद्दत रखकर काम करते हैं, तभी समाधान होता है। अगर पूरी शक्ति लगाने पर भी एक निश्चित मुद्दत मे काम न हुआ, तो संशोधन का मौका मिलता और दूसरा उपाय सूझता है। हम सबको आगाह करना चाहते हैं कि पूरी ताकत न लगाकर समय ही नष्ट करेंगे, तो वह गलत काम होगा। उपाय-संशोधन के लिए यह बहुत जरूरी है कि निश्चित मुद्दत में पूरी शक्ति से हम एक साथ काम मे लगें। गम्भीरता के साथ परिणामों को भगवान् पर सौंपकर निष्काम-वृत्ति से काम में लगें।

सम्मेलन में सबसे बड़ी खुशी होती है, सज्जन-सम्पर्क की और सज्जन-संगति

की। एक बात का भान हमें सतत और निरन्तर रहता है, वह यह कि जहाँ हम यात्रा करते हैं, वहाँ लोग हमारे लिए सब प्रकार की सहूलियत करते ही हैं; पर जहाँ हमारे भाई गाँव-गाँव जाते हैं, उन्हें किसी प्रकार की सहूलियत नहीं मिलती, बहुत तकलीफ उठाकर वे काम करते हैं। हमें इस बात का दुःख नहीं कि उन्हें तकलीफ उठानी पड़ती है, बल्कि खुशी होती है कि उन्हें तपस्या करने का मौका मिलता है। ऐसे हमारे निष्काम तपस्या करनेवाले सेवकों पर प्रभु की कृपा बनी रहे, यही हमारी ईश्वर से प्रार्थना है।

सर्वोदय-सम्मेलन (कांचीपुरम्)
द्वितीय दिन २८-५-'५६

हमारा कर्तव्य : सार्वभौम प्रेम और निरुपाधि वृत्तिनिर्माण : ४७ :

अब हममें से बहुत-से लोग एक वर्ष तक एक-दूसरे से न मिलेंगे। साल-भर में एक बार हमें मिलने का अवसर मिलता है। हम लोग अक्सर काम में लगे रहते हैं, इसलिए काम छोड़कर यहाँ आने की इच्छा भी कुछ कम रहती है। लेकिन अभी अप्पासाहब ने जो कहा, वह आप लोगों ने सुना ही है। उन्होंने कहा कि यहाँ आने और यहाँ की बातें सुनने से कुछ लाभ हुआ। हमें बहुत खुशी है कि इस प्रकार का अनुभव हमें यहाँ होता है। मैंने भी इस सम्मेलन का कुछ निरीक्षण किया। दो-चार सम्मेलन लगातार हम देखते रहे हैं। मुझे ऐसा भास हुआ कि इस साल सम्मेलन में जो चर्चाएँ हुईं, उनमें कुछ सात्त्विकता का अंश था। इस वर्ष यहाँ सत्त्वगुण का अंश अधिक देखा। हो सकता है कि यह मेरा भास ही हो। लेकिन अगर यह भास सही है, तो लक्षण अच्छा है। जितना सत्त्वगुण बढ़ेगा, उतना ही हमारा बल बढ़ेगा।

सत्त्व और शक्ति

बहुत लोगों का खयाल है कि बल कुछ दूसरी वस्तु है। सत्त्वगुण से शान्ति प्राप्त होती है, ऐसा लोग अक्सर मानते हैं; परन्तु उससे ताकत भी प्राप्त होती है, इस पर अभी विश्वास बैठा नहीं है। इसीलिए शक्ति की स्वतन्त्र देवता

मानी गयी और उसके हाथ में सब प्रकार के शस्त्रास्त्र दिये गये। लोग अन्तिम श्रद्धा रखकर उसकी उपासना करते हैं। शान्ति की उपासना लोग करना चाहते हैं, पर उसमें अन्तिम श्रद्धा नहीं होती। वह शक्ति में ही होती है, इसलिए सतत यह भास होता है कि अगर हममें शक्ति न हो, तो हमारा बचाव कैसे होगा? सारांश, आत्म-समाधान, सामाजिक समता और मानसिक शान्ति के लिए सत्त्व-गुण की देवता मान्य है। यह भी मान्य है कि अगर रचनात्मक काम करना है, देश का विकास करना है, तो भी सत्त्वगुण और शान्ति की जरूरत है। किन्तु अभी तक यह मान्य नहीं है कि रक्षण के लिए सत्त्वगुण समर्थ है। रक्षण के लिए दूसरी देवता की आराधना, दूसरी देवता की उपासना करनी होगी, ऐसा लोगों को लगता है।

शक्ति मूढ़ देवता है

आज उसी शक्तिरूपी हमारी परम देवता ने, जिस पर हमने अपने बचाव का आधार रखा, तीव्र रूप धारण किया है। इसलिए एक प्रकार का डर पैदा हुआ है। आज भी माता-पिता बच्चे को प्रेम से समझाते हैं। लेकिन अगर वह नहीं समझता, तो एक तमाचा मारते हैं। जो माता-पिता प्रेम के समुद्र होते हैं और बच्चों के हित के सिवा कुछ भी नहीं चाहते, वे भी समझाने से बच्चों के न मानने पर उनकी ताड़ना ही अन्तिम 'सैंक्शन' समझते हैं। हमें अभी तक निश्चय नहीं हो पाया है कि यह शक्ति-देवता हम लोगों के लिए तारक नहीं, क्योंकि उसमें बुद्धि नहीं है। ऐसा अनुभव नहीं कि जहाँ शक्ति होती है, वहाँ बुद्धि भी होती हो। शक्ति मूढ़ देवता है। जिस किसीके हाथ में शस्त्रास्त्र आते हैं, वह शक्तिमान् होता है, यह जरूरी नहीं कि उसका सत्पक्ष हो। फिर जो मूढ़ है, उसे देवता मानना ही गलत है, उस पर विश्वास रखना भी गलत है, उस पर अन्तिम विश्वास रखना तो और भी गलत है।

साम की अपेक्षा दण्ड में अधिक विश्वास

यह सर्वमान्य बात है कि परस्पर का झगड़ा या मतभेद जहाँ तक हो सके, बातचीत से ही दूर करना चाहिए। सामपूर्वक ही कार्य करना चाहिए। किन्तु

यदि कार्य साम से न हुआ, तो हम यह नहीं सोचते कि अपनी सामबुद्धि का अधिक संशोधन करेंगे और अधिक उज्ज्वल साम उपस्थित करेंगे। बल्कि जब साम से काम नहीं होता, तो दण्ड का प्रयोग करते हैं। लेकिन जब दण्ड से भी काम न हो, तो उससे भी अधिक दण्ड की योजना करते हैं। फिर उससे भी काम न हुआ, तो उससे भी अधिक दण्ड की योजना खड़ी करते हैं। यों करते-करते हम अणु-अस्त्रों तक पहुँच गये। किन्तु यह ध्यान में न आया कि यह दण्ड-शक्ति विश्वसनीय शक्ति नहीं, बल्कि दगा देनेवाली शक्ति है। यह किसी पद का समाधान करनेवाली शक्ति नहीं है। कोई मसला हल करनेवाली शक्ति नहीं है, इसका भान अभी तक हमें नहीं हुआ। दण्ड-शक्ति ने अति उग्र रूप धारण किया, इसलिए कुछ डर है और उसी कारण मन कुछ डाँवाडोल है। फिर भी चित्त से दण्ड का पूरा विश्वास उठा नहीं। वह कुछ थोड़ा-सा डिगा है, पर अभी तक दण्ड त्याज्य नहीं हुआ।

स्त्री में शक्ति का अभाव

मैं भी बहुत दफा कहता हूँ कि पुरुषों ने समाज का काम बहुत बिगाड़ा। अगर उसमें स्त्रियाँ दाखिल हों, तो शायद मामला कुछ सुधर जाय। सम्मेलन में काफी स्त्रियाँ आयी हैं। मुझे लगता है कि यह अच्छा लक्षण है। स्त्री-शक्ति अगर सामने आयेगी, तो तारण होगा। लेकिन आज स्त्रियों की हालत और उनका विश्वास यह है कि वे अपने को रक्ष्य समझती हैं और पुरुषों पर अपने रक्षण की जिम्मेवारी मानती हैं, क्योंकि स्त्रियों को पुरुषों ने भयभीत अवस्था में रखा है। स्त्री का स्वाभाविक गुण भीरुता माना गया। इस हालत में स्त्रियाँ पुरुषों की मदद में आकर भी क्या करेंगी? दूसरे देशों में स्त्रियों की पल्टनें भी बनती हैं और वे युद्ध में सब प्रकार की मदद करने के लिए तैयार रहती हैं। इसमें स्त्री-पुरुष भेद भी तो मदद नहीं दे रहा है?

करुणा परम निर्भय है

यह भी माना गया कि स्त्री मातृ-देवता होने के कारण अधिक दयालु, अधिक शान्तिमय, अधिक करुणामय, अधिक वात्सल्यमय होनी चाहिए।

परन्तु जिस मनुष्य में देह और आत्मा के पृथक्करण का भान नहीं, उसमें करुणा हो ही नहीं सकती। करुणा तो बड़ा बहादुर गुण है। उसमें महान् सामर्थ्य है, वह परम निर्भय है। दया का भाव दुर्बलता के साथ आता है। गौतम बुद्ध को करुणा का जो दर्शन हुआ, वह तीव्र तपस्या के अन्त में निर्भयता प्राप्त होने पर हुआ। दुनिया को वृत्रासुर के भय से मुक्त करने के लिए अपना देह-विसर्जन करने को दधीचि ऋषि इसीलिए तैयार हुए कि उनका हृदय करुणा से भरा था। सारांश, जब तक देह और देह-सम्बन्ध में हम पड़े रहेंगे, तब तक करुणा की शक्ति प्रकट नहीं होगी, चाहे जीवन में दया थोड़ी-बहुत प्रकट हो जाय।

पाकिस्तान की दयनीय दशा

इन दिनों पाकिस्तान और हिन्दुस्तान के मसले की चर्चा चलती है। वह बेचारा इतना डाँवाडोल दीखता है कि हमें तो उस पर दया ही आती है। वहाँ न कोई व्यवस्था-शक्ति है, न कोई योजना, न परस्पर एकता और न प्रजा के लिए समृद्धि की कोई तजवीज ही है। बस, एक कश्मीर का झगड़ा है। उसे बार-बार खड़ा कर वहाँ के शासक भारत के द्वेष के नाम पर प्रजा को काबू में रखते हैं। इस प्रकार उस देश में जो तरह-तरह के दुःख हैं, उनकी तरफ से लोगों का ध्यान ही खींच लिया जाता है। बाकी जो कुछ दीखता है, शक्ति का आभास, वह केवल अमेरिका की गुलामी है। इसके सिवा और कुछ नहीं है।

हिम्मत ही नहीं, हिकमत की भी बात

ऐसे देश से क्या डरना है ! हम ऐसा समझते हैं कि वह शस्त्रास्त्र बढ़ा रहा है, इस वास्ते उसकी कमजोरी ही बढ़ रही है। वह भारत पर तभी आक्रमण कर सकेगा, जब अमेरिका उसे इसके लिए प्रेरित करे और अमेरिका भी उसे आक्रमण के लिए तभी प्रेरित करेगा, जब वह एशिया के सभी राष्ट्रों से लड़ने की ठानेगा—विश्वयुद्ध शुरू करने का इरादा करेगा। इसलिए उस देश की कोई भीति रखने का कारण नहीं।

हम तो समझते हैं कि उस राष्ट्र के साथ अगर हमें बलपूर्वक पेश आना है,

हमें उसे भयभीतता से मुक्त करने के लिए उसमें कुछ विश्वास पैदा करना होगा। वहाँ के प्राइम मिनिस्टर कहते हैं कि "अमेरिका की मदद हम इसलिए लेते हैं कि बातचीत में कुछ ताकत आये। हमें आक्रमण नहीं करना है। बातचीत से ही मसला हल हो सकता है। लेकिन बातचीत में ताकत चाहिए, इसलिए यह शस्त्रास्त्र हम हासिल करते हैं।" हम भी मानते हैं कि आमने-सामने बातचीत कर मसला हल करना है, तो उसके पीछे कुछ ताकत चाहिए। इसीलिए हमें भास होता है कि हम शस्त्र बिलकुल कम कर दें, तो हमारी ताकत बढ़ जायगी। यह तब ध्यान में आयेगा, जब छाती में धड़कन न होगी और सामनेवाले के लिए हमारे दिल में प्रेम होगा। पर उसके अभाव में हमें डर मालूम होता और फिर अपने देश के बचाव की जिम्मेवारी महसूस होती है। देश के बचाव की जिम्मेवारी है, इसीलिए हम कहते हैं कि शस्त्र-त्याग हो। बाबा अपने बचाव के लिए नहीं कह रहा है कि शस्त्र कम किये जायँ, परन्तु देश के बचाव के लिए कह रहा है। यह हिम्मत ही नहीं, हिकमत की भी बात है।

शान्ति के सन्तुलन की नीति

आजकल भिन्न-भिन्न राष्ट्रों के बीच बैलेन्स (संतुलन) रखने की जो कोशिश की जाती है, वह आज की विद्या नहीं है। यह "बैलेन्स ऑफ पावर" (शक्ति के संतुलन) का विचार राजनीति और उसके दर्शन में सौ-दो सौ साल से मान्य रहा है। इसीके लिए उस देश ने शस्त्रास्त्र बढ़ाये, तो हम भी बढ़ाते हैं, जिससे बैलेन्स रहे (तराजू की डंडी बराबर रहे)। तराजू के इस पलड़े में पाँच सेर डालने पर बैलेन्स न रहा, तो उस पलड़े में पाँच सेर डाल दिया। अब इस पलड़ेवाले ने और दो सेर ज्यादा डाला, तो डंडी इधर झुक गयी। फिर उसने भी उधर और दो सेर डाला। ऐसा होते-होते दोनों पलड़ों में इतना वजन चढ़ा कि तराजू टूटने की नौबत आयी है। लेकिन दोनों तरफ वजन बढ़ाकर बैलेन्स कायम रखने के बजाय दोनों ओर वजन कम कर बैलेन्स कायम रखेंगे, तो अच्छा होगा। इसलिए अब यह बात चल पड़ी है कि दोनों तरफ से परस्पर-सम्मति से शस्त्र कम हो जायँ, तो ठीक होगा।

शस्त्रास्त्र कम करने का मौका

इस वक्त हमारा देश निश्चय के साथ हिम्मत रखकर, परिस्थिति को समझकर अपने शस्त्रास्त्र विश्वासपूर्वक कम कर दे, तो हम समझते हैं कि इससे हमारी नैतिक ताकत बढ़ेगी। लोग पूछते हैं कि क्या इस बात के लिए आम लोग तैयार होंगे ? यह बहुत सोचने का विषय है। हम कबूल करते हैं कि इस मामले में जनता की शक्ति का विचार करना पड़ता है। जनता में हिम्मत होती है, तो राज्य-कर्ताओं में भी हिम्मत आती है। लेकिन इसकी दूसरी बाजू यह है कि सरकार और नेताओं में ताकत हो, तो जनता में भी ताकत आ जाती है। याने दोनों बाजू से एक-दूसरे पर असर होता है। हम कहते हैं कि जनता को हम सब मिलकर अगर उसका हित समझा सकें और शस्त्रास्त्र कम करने की हिम्मत, ताकत बढ़ाने के लिए कर सकें, तो उसके लिए आज मौका है।

राजाजी का कथन

आज की सरकार जिस ढग से सोचती है, उसका हम विरोध नहीं कर रहे हैं। लेकिन यहाँ तो हम अपने उन भाइयों के साथ प्रकट चिन्तन कर रहे हैं, जो सर्वोदय-विचार को मानते हैं। यह प्रकट-चिन्तन हम इसलिए कर रहे हैं कि सर्वोदय-विचार को माननेवालों में भी शस्त्रास्त्र बढ़ाने की आवश्यकता माननेवाले कुछ लोग आज हैं। उस दिन राजाजी ने बिलकुल कठोरता से कह दिया कि अगर यहाँ कोई शख्स पाकिस्तान से डरता है, तो उसका सर्वोदय समाज में स्थान नहीं। हमने अपने मन में सोचा कि यह तो सतहत्तर साल का बूढ़ा शख्स है। कहाँ से इसकी वाणी में यह शक्ति आयी ? यह शक्ति शरीर की नहीं है, आत्मा की है। इसी आत्मा के बल से हम निर्भय हो सकते हैं।

हमारी परोपदेश-कुशलता

हम बार-बार कहते हैं कि रूस और अमेरिका, दोनों एक-दूसरे का खयाल न कर एकपक्षीय निःशस्त्रता स्वीकार करें, तब हमारी जिम्मेवारी स्पष्ट है। हम जानते हैं कि एकपक्षीय निःशस्त्रता का विचार हमारी सरकार ने पेश नहीं किया। लेकिन यह विचार हम लोगों में चलता है। "पर उपदेश

कुशल बहुतेरे" बहुत से लोग परोपदेश में कुशल होते हैं। अगर इस विचार का अमल हम स्वयं करते हैं, तो उसका एक नैतिक असर दुनिया पर होगा। आज भी भारत की आवाज दुनिया में बुलन्द है। परन्तु यह नजदीक का मसला जब तक हल नहीं होता और उसके लिए हम निर्भय नहीं बनते, तब तक उस आवाज में वह ताकत नहीं आयेगी, जिससे कि दुनिया और हमारा अपना देश हमेशा के लिए बच सके। किन्तु यह सारी चर्चा इसलिए व्यर्थ हो जाती है कि सामनेवाला कहता है, आपकी सारी बातें हमें मान्य हैं। जिसे हमारी बातें मान्य नहीं, उसके साथ चर्चा हो सकती है। लेकिन यह तो कहता है कि 'सारी' बातें मंजूर हैं। पर आज की परिस्थिति में देश की रक्षा के वास्ते कुछ तो करना पड़ेगा। चित्त की यह दशा जब तक नहीं मिटती, तब तक दुनिया का निस्तार नहीं।

'राज्य' नहीं, 'प्राज्य' चाहिए

सर्वोदय-समाज को इस बात का निश्चय करना पड़ेगा। हम बार-बार कहते हैं कि अहिंसा में विश्वास रखनेवाले लोक-नीति की स्थापना में ताकत लगायें। याने राजनीति की समाप्ति करने की कोशिश में हम लग जायँ। 'राज' और 'नीति', ये दो शब्द एक दूसरे को काटते हैं। नीति आती है, तो राज्य-व्यवस्था आप ही खण्डित हो जाती है और राज्य-व्यवस्था आती है, तो नीति खतम होती है। हमें इसके आगे राज्य नहीं, प्राज्य चाहिए। हम नहीं जानते, कितने दिनों में यह हो सकेगा, पर अगर हमारे लिए करने लायक कोई काम है, तो यही है। सर्वोदय समाज को निश्चय करना चाहिए कि "मेरे तो सुख राम नाम, दूसरा न कोई।" लेकिन गांधीजी के बहुत-से साथी मोहग्रस्त हैं। वे समझे हुए हैं कि हर हालत में राज्य चलाने की जिम्मेदारी हमारी है ही। हम भी कबूल करते हैं कि अगर हम स्वराज्य हासिल कर राज्य चलाने की जिम्मेदारी नहीं उठाते, तो वह हासिल ही क्यों किया? हमने वह जरूर हासिल किया, लेकिन इसीलिए कि सत्ता हम अपने हाथ में लेने के दूसरे क्षण से ही उसका (सत्ता का) विलयन करने का आरम्भ कर दें। वह चीज हमें चाहे सधे पचास साल में; लेकिन आरम्भ आज से ही करनी चाहिए।

कम्युनिज्म में राज्य नकद और विलयन उधार

कम्युनिस्ट भी मानते हैं कि राज्य क्षीण होना चाहिए, आज की स्थिति में वह अधिक-से-अधिक मजबूत होना भी आवश्यक बताते हैं। कहते हैं कि राज्य के ही आधार पर उसके प्रतिकूल शक्तियों के क्षीण होने पर उसके क्षय का आरम्भ होगा। इसलिए कम्युनिज्म में राज्य-शक्ति मजबूत करना 'नकद' है और उसका विलयन है 'उधार'। वह उधार कब हासिल होगा, इसका कोई हिसाब नहीं। आज की हालत में मजबूत से-मजबूत ताकत चाहिए, यही इसका निष्कर्ष है।

गांधीजी के नाम से विवाद न करें

कौन जाने कल क्या होगा ? गांधीवाले कहते हैं कि राज्यसत्ता हर हालत में किसी-न-किसी अंश में जरूर रहेगी। हमें लगता है कि यह गांधी-विचार नहीं है। किन्तु हम इस तरह बार-बार नहीं कहते, याने गांधीजी के नाम से नहीं बोलते; क्योंकि गांधीजी के नाम से बोलना शुरू करें, तो हमें उनकी सारी पोथियाँ और वचन देखने पड़ेंगे और वाद-विवाद शुरू होगा। हमारा भगवान् बुद्ध के शिष्यों से बदतर हाल होगा। एक शिष्य ने कहा कि बुद्ध भगवान् ने यह बताया, दूसरे ने कहा, वह बताया। चार ही दिशाएँ थीं, इसलिए उनके चार ही पक्ष हुए और उनकी भी आपस-आपस में लड़ाई चली ! हम समझते हैं कि हम अगर गांधीजी के नाम पर यह वाद-विवाद करें, तो हमारे चार नहीं, चालीस पक्ष बन जायँगे।

शस्त्रों के लिए गांधीजी का आधार क्यों ?

यह भी कहा जाता है कि कश्मीर में सेना गांधीजी के आशीर्वाद से भेजी गयी। हम कहते हैं कि गांधीजी का ही नाम क्यों लेते हो ? गांधीजी ने जिसे सिर रखा, उस गीता का ही नाम लीजिये न ! गीता आज भी उपस्थित है। उसीका आधार दीजिये। इस पर जब वे यह कहते हैं कि गीता 'आउट ऑफ डेट' (बीते हुए जमाने की) है, तो हम कहते हैं कि गांधीजी की सम्मति भी 'आउट ऑफ डेट' है। उसे अब आठ साल हो गये। गांधीजी ने १६१८ में 'रिक्रूट

भरती' के लिए कितनी कोशिश की, यह हमने अपनी आँखों से देखा। घूम-घूमकर आखिर बीमार पड़ गये, पर गुजरात में रिक्रूट न मिले। तब उन्होंने जैन-धर्म और वल्लभ-सम्प्रदाय को दोष देना शुरू किया। कहने लगे कि इन लोगों ने बिलकुल निर्वीर्य अहिंसा सिखायी है।

गांधीजी नित्य जागरूक और विकासशील

१६३६ की दूसरी लड़ाई में गांधीजी ने यह रुख अख्तियार किया कि "हम सरकार के साथ सहयोग नहीं कर सकते, हमें युद्ध में सहयोग न देना चाहिए।" पर उनके अनुयायियों ने इसे नहीं माना, तो अनुयायी और गुरु महाराज अलग हो गये। अनुयायी सरकार के साथ कुछ शर्तों पर सहयोग करने के लिए तैयार हो गये थे। जब सामनेवाली सरकार ने उन शर्तों को नहीं माना, तो गुरु महाराज और शिष्य फिर एक हो गये। यह तो हमने अपनी आँखों के सामने देखा है। फिर गांधीजी का नाम लेकर क्या करेंगे ? (विनोद की भाषा में तो यही कहना होगा कि) वह शख्स बिलकुल दगाबाज था। एक शब्द पर कभी वह कायम न रहता था। किसीको कोई भरोसा नहीं था कि आज गांधीजी ने ऐसा रुख अपनाया है, तो कल कैसा अपनायेंगे। क्योंकि वे विकासशील मनुष्य थे। उन्हें *खयाल हमेशा सत्य की खोज का होता था, न कि अपनी बात पर अड़े रहने का।* उन्हें सत्य का नित्य नया दर्शन होता था, इसलिए वे पुरानी बात का आग्रह न रखते थे। उन्होंने लिख रखा है कि 'हमारे पुराने और नये, सब वचन एक ही अनुभूति में से निकले हैं और उनमें वस्तुतः सुसंगति है। किन्तु अगर किसीको विसंगति दीख पड़े, तो पहले के वाक्य गलत समझो और बाद के सही समझो।' *इस तरह जो मनुष्य प्रतिक्षण जागरूक था और जिसमें परिस्थिति से लाभ उठा-*कर ऊँचे-ऊँचे चढ़ने की शक्ति थी, उस नित्य विकासशील साधक के शब्दों का आधार हम खोजते हैं !

हमारी असली कमजोरी

शस्त्र-त्याग के रास्ते में हमारी जो वास्तविक कठिनाई है, उसकी तरफ आपका ध्यान दिलाना है। मुश्किल यह है कि हमारे देश के आन्तरिक व्यवहार में, हमारे

आन्दोलनों में, प्रजा में जो काम करते हैं, उनमें हम सौमनस्य और अहिंसा स्थापित न कर सके। यह हमारी बहुत बड़ी और असली कमजोरी है। हमने बार-बार कहा कि हमें पाकिस्तान का जरा भी डर नहीं। लेकिन हम कबूल करते हैं कि हमारे दाहिने हाथ को बायें हाथ का डर मालूम हो रहा है और बायें को दाहिने का।

समस्या-मोचनी क्षोभरहित शक्ति

एक भाई ने कहा कि 'बाबा सबसे शस्त्र-त्याग की बात तो कहता है, लेकिन सरकारी पक्ष के लिए थोड़ी-बहुत गुंजाइश रखता है।' किन्तु वह इसलिए कि बाबा को अन्तर्गत बात मालूम है। हिन्दुस्तान की प्रजा में से अभी हिंसा का विश्वास मिटा नहीं, जिससे हम कमजोर हैं। इसीलिए पूरी तरह शस्त्र-त्याग करना हमारे लिए संभव नहीं। अगर बाबा को विश्वास होता और यह स्पष्ट दिखाई देता कि हिन्दुस्तान में सौमनस्य है और कोई आन्दोलन भी क्यों न हो, उसमें किसी प्रकार का क्षोभ नहीं निर्माण होता, तब वह निःसंदेह कहता कि शस्त्र-त्याग करो। इसलिए हमें बार-बार इसका मंथन करना चाहिए कि हम देश में नयी शक्ति कैसे उपस्थित करें, जो कल्याणकारी और समस्याएँ हल करने में समर्थ होकर किसी तरह का क्षोभ न होने दे। समस्याओं को हल करनेवाली समस्या-मोचनी क्षोभ-रहित शक्ति की आवश्यकता है और भूदान यज्ञ में हम इसीकी खोज कर रहे हैं।

बुद्धि उपाधिरहित बने

आप सब लोगों को इस खोज में लगना है। इसलिए हम यह बार-बार कहते हैं कि अपनी बुद्धि को किसी भी प्रकार की उपाधि से मत बाँधो। मैं ब्राह्मण हूँ, मैं फलानी भाषावाला और फलाने धर्म का हूँ, मेरा फलाना संप्रदाय और फलाना राजनैतिक पक्ष है, ये सारी उपाधियाँ तोड़े बिना अहिंसा की शक्ति के विकास के लिए हमारी बुद्धि काम न देगी। सूर्यवत् उदासीन हुए बिना हम अहिंसा की खोज नहीं कर सकते। हमें सबसे समान भाव से निर्लिप्त रहना चाहिए। हम सबके अभिमुख हों। सबसे प्यार करें, लेकिन सब उपाधियों से

अलग रहें। लोग कहते हैं कि स्नेह-संबंध करना चाहिए। पर मैं कहता हूँ कि स्नेह बढ़ना चाहिए, संबंध की जरूरत नहीं।

सबके लिए अनासक्त मैत्री

मुझे बड़ी खुशी हुई कि यही विचार आज हमने बिल्कुल ऐसी ही भाषा में 'कुरल' में देखा। उसमें कहा है कि अगर मैत्री-भाव का विकास करना चाहते हो, तो करो। मैत्री का विकास करना चाहते हैं, तो 'पुनर्चि' की जरूरत नहीं है, 'उनर्चि' की जरूरत है। प्रेम-भावना होनी चाहिए। एक भाई ने हमसे पूछा कि प्रेम-भावना बढ़ाने के लिए क्या करना चाहिए? तो मैंने कहा कि अनासक्त होना चाहिए। चंद लोगों के साथ, चंद संस्थाओं के साथ, चंद संप्रदायों के साथ, अगर हमारी आसक्ति जुड़ी होगी, तो हम सबके साथ समान भाव से बरत नहीं सकेंगे।

मेरी स्थिति

कुछ लोग कहते हैं कि तुम ये सारी बातें कहते तो हो, लेकिन अगर तुम्हें उठाकर राज्य चलाने के लिए कुर्सी पर बिठा दिया जाय, तो तुम भी वैसा ही बोलोगे, जैसा वे बोलते हैं। मैं कहता हूँ कि मैं अपनी अक्ल के साथ उस कुर्सी पर बैठूँगा ही क्यों? जब तक मेरी बुद्धि आज की तरह काम करेगी, उस कुर्सी पर बैठने का मेरे लिए सवाल ही नहीं। जब वह बदल जायगी, तो जैसा वे बोलते हैं, वैसा ही मैं भी बोलूँगा।

हमें डर जनता की हिंसा से

असली सवाल यह कि जनता को किस दिशा में हम ले जायँ। लोगों की तरफ से कुछ दंगा होता है, तो हमारा दिल व्याकुल हो उठता है। हमें तीव्र वेदना होती है। दूसरे लोग तो जागतिक युद्ध से डरते हैं। पर हम तो उसे बुलाते और 'डिवाइन' (दैवी) मानते हैं। उसकी हमें जरा भी चिन्ता नहीं है। लेकिन बंबई के दंगे, उत्कल की घटनाएँ हृदय को बहुत ही दुःखी बनाती हैं। ये सारी चीजें आज हिन्दुस्तान में न होतीं, तो बाबा बिल्कुल छप्पर पर खड़ा होकर जाहिर कर देता कि हिन्दुस्तान का प्रथम कर्तव्य है कि वह आज ही शस्त्रों का परित्याग

करें। हमारे शस्त्र-त्याग के मार्ग में पाकिस्तान बाधक नहीं है। यह जो '४२ के आन्दोलन में हमने एक मूर्खता सीख ली और जिसका अभ्यास अब भी कर रहे हैं, वही हमारा मुख्य डर है।

उद्धार न तो पुरुष करेगा, न स्त्री

सर्वोदय-समाज का कर्तव्य है कि हिन्दुस्तान में सार्वभौम प्रेम और लोगों में सब प्रकार से निरुपाधिक वृत्ति निर्माण करें। आज महादेवी ने मुझसे कहा कि यहाँ बहुत-से व्याख्यान हुए, लेकिन स्त्रियों के लिए कुछ नहीं कहा गया। यहाँ इतनी स्त्रियाँ आयी हैं, इसलिए उनके लिए भी कुछ कहिये। बार-बार बतलाया जाता है कि पुरुषों से ज्यादा अहिंसा स्त्रियों के दिल में होती है। लेकिन हमारा विश्वास है कि अहिंसा का विकास न तो पुरुष करेंगे और न स्त्रियाँ ही; वरन् वे करेंगे, जो पुरुष और स्त्री, दोनों से भिन्न आत्मस्वरूप हैं।

देह और आत्मा की भिन्नता का ज्ञान जरूरी

जब तक हम शरीर का यह आवरण लिये और इसमें फँसे हुए हैं, तब तक अहिंसा का विकास नहीं हो सकता। यह कोई कठिन बात नहीं। हमारा विश्वास है कि एक बच्चे को भी देह-भिन्न आत्मा का भान कराया जा सकता है। कुछ लोग हमसे नयी तालीम की व्याख्या पूछते हैं। उसकी कई प्रकार की व्याख्याएँ की जाती हैं, पर जिस तालीम द्वारा बच्चों में शरीर और आत्मा के पृथक्करण की भावना और 'मैं देह नहीं, देह से भिन्न आत्मा हूँ', इस तरह का प्रत्यय पैदा हो, वह सर्वोत्तम, श्रेष्ठ तालीम है। उसे चाहे नयी तालीम कहिये, चाहे पुरानी।

सूतांजलि को बढ़ावा दें

इस साल सूतांजलि कुछ ठीक हासिल हुई है। कोई छह लाख से ज्यादा गुण्डियाँ इकट्ठी हुई हैं। पाँच साल से इसके लिए काम हो रहा है, पर इस साल नाम लेने लायक काम हुआ। लेकिन यह भी बहुत कम है। कम-से-कम सौ मनुष्यों के पीछे एक मनुष्य की एक गुण्डी के हिसाब से काम होता, तो छत्तीस लाख गुण्डियाँ होतीं। यह बिलकुल ही छोटी चीज है, लेकिन जितनी छोटी है,

उतनी ही शक्तिशाली। हरएक मनुष्य को इसमें शरीर-परिश्रम, अहिंसा, प्रेम और त्याग की दीक्षा मिलती है। इतनी सारी विविध दीक्षाएँ एक छोटी-सी गुण्डी से सिद्ध होती हैं। सर्वोदय के लिए कितने वोट हैं, इसका अन्दाजा हमें उससे लगता है। इसलिए हम कहते हैं कि इस चीज को खूब बढ़ावा दिया जाय।

सर्वोदय-सम्मेलन (कांचीपुरम्)
तृतीय दिन २६-५-'५६

बेकारी-निवारण कैसे हो ? : ४८ :

[अ० भा० सर्व-सेवा-संघ की कार्यकारिणी सभा में]

जब हम बेकारी-निवारण का विचार करते हैं, तो बहुत ही कृत्रिम विचार करते हैं। बेकारी-निवारण सरकार चाहती है, हम भी चाहते हैं और हरएक चाहता है। किन्तु उसके कुछ बुनियादी सवाल हैं। यदि तात्कालिक बेकारी-निवारण करना हो, तो एक बात है। जब हम देखते हैं कि दिन-ब-दिन जनसंख्या बढ़ रही है और उस हिसाब से जमीन का रकबा हरएक मनुष्य के लिए कम होगा, तो ऐसी कोई बेकारी निवारण-योजना हमें करनी होगी, जो हिन्दुस्तान के सामाजिक जीवन का अंशयोग हो। ऐसा नहीं होगा कि पाँच साल के लिए कर दिया, फिर आगे कोई दूसरा तरीका निकलेगा, तो इसे छोड़ देंगे। हिन्दुस्तान में इस तरह बेकारी-निवारण का सोचना ही बेकार है, दिन-ब-दिन उसका प्रेशर बढ़ने ही वाला है।

यह शाश्वत समस्या है

कुछ यन्त्रों के आधार से हम कुछ करें आदि बातें हम करते हैं; लेकिन कल यदि कोई युद्ध शुरू हो जाय या पाकिस्तान की सेना और मजबूत बन जाय, तो क्या करेंगे, यह सवाल आता है। आपने इस साल सेना का खर्च न बढ़ाने का तय किया, क्योंकि अभी बैलेन्स आपके पक्ष में है। लेकिन मान लीजिये, पाकिस्तान की ताकत और बढ़ जाय, तो माँग होगी कि हमें फौजी ताकत बढ़ानी

चाहिए। हम ऐसी हिम्मत नहीं कर पाते कि चूँकि वह सेना बढ़ाना चाहता है, इसलिए हम उसे और घटायेंगे, ताकि दुनिया में निर्भयता बढ़े। क्योंकि हमें भय है, वह एक बड़ी समस्या सामने खड़ी है। फिर वैसा सवाल आ जाय, तो सालों की योजना तितर-बितर हो जायगी और बेकारी का सवाल ज्यों-का-त्यों रह जायगा। इसलिए सैनिक स्वावलम्बन आदि विचार न करें, बेकारी का ही विचार करें। लेकिन इतना ही समझें कि यह एक तात्कालिक समस्या नहीं, शाश्वत समस्या है। यह समझकर इसे जीवन का अंग मानना चाहिए।

इसका अन्तर्भाव कम्युनिटी प्रोजेक्ट में

मुझे दीखता है कि इस प्रकार की चर्चा 'आल इण्डिया कांग्रेस कमेटी' ने की है। मैं कहना यह चाहता था कि ऐसा विचार समझकर यह न सोचें कि एक पक्ष बोल रहा है, स्वावलंबन के हित में और दूसरा बेकारी-निवारण के हित में। फिलहाल हम यह सोचें कि बेकारी-निवारण ही करना है।

जब भी बड़े लोगों से मिलने का मौका आता है, मैं सदा यह बात समझाने की कोशिश करता हूँ कि इसका अन्तर्भाव 'कम्युनिटी प्रोजेक्ट' में होना है। क्योंकि आज नहीं, तो कल कम्युनिटी प्रोजेक्ट उनकी योजना के हिसाब से हिन्दुस्तान के सब देहातों में लागू होगा। उस हालत में उसे छोड़कर कुछ क्षेत्र बचता नहीं है और बचना भी नहीं चाहिए, ऐसी सरकार की योजना है। ८ घंटे किसीको काम दिया, तो बेकारी-निवारण हुआ और ४ घण्टे कोई दूसरा काम करते हुए उसे काम मिला, तो बेकारी-निवारण न हुआ, ऐसा नहीं।

सोचने की बात यह है कि हमने कई साल पहले एक प्रस्ताव किया था, जिसके निर्णय में बहुत चर्चाएँ हुई थीं। उन दिनों बापू थे। हिन्दुस्तान में जितना कच्चा माल देहातों में पैदा किया जाता है, उसका पक्का माल वहीं देहातों में बनाना चाहिए, जहाँ पक्के माल की खपत है। कपड़ा ऐसा माल है, जिसकी हर घर में जरूरत है। कच्चा माल पैदा होगा देहातों में ही, इसलिए पक्का माल भी वहीं बनना चाहिए। तो, प्रस्ताव यह था कि 'हिन्दुस्तान के देहातों के लिए खादी का ही क्षेत्र रहे।' मिलें वगैरह शहरवालों के लिए चलती रहें,

पर जहाँ तक देहातों का ताल्लुक है, खादी ही चले। सारांश, जहाँ कच्चा माल पैदा होता है, वहीं पक्का माल बने और वहीं उसकी खपत हो—यह बेकारी-निवारण का एक शाश्वत सूत्र है।

बेकारी-निवारण का यह जो दूसरा तरीका बतलाया जाता है कि हम सूत पैदा करें और दूसरी जगह बेचें और दूसरा सामान लें, वह इसका शाश्वत नहीं, तात्कालिक तरीका है। अभी तक जो आप लोगों ने तय किया है, उसमें कोई गलती है, ऐसा नहीं। बेकारी-निवारण का जो सोचा है, वह ठीक ही है। लेकिन यह मानना चाहिए कि यह काम सरकार का है। पर सरकार के हाथ से ही यह सब होना चाहिए। सरकार अपनी ताकत लगाकर काम करे और हम लोग जितनी अधिक-से-अधिक मदद हो सके, दें। कुल मिलाकर वहाँ कम्युनिटी प्रोजेक्ट पर यह जिम्मेदारी डाली जाय कि हर देहात के घरवालों को खादी उपयोग में लानी चाहिए और ग्राम का संकल्प होना चाहिए कि यह काम उन्हें करना है।

सरकार सूत कातना सिखाये

दूसरी बात यह है कि सबको सूत कातना सिखाने का जिम्मा सरकार ले। यह बात मैंने प० नेहरू के सामने दो बार रखी कि जैसे आप सबको पढ़ना सिखाते हैं—यह सरकार का कर्तव्य है—वैसे ही सरकार यह भी माने कि हिन्दुस्तान के सब देहातों को सूत कातना सिखा देना उसकी योजना का एक अंग और कर्तव्य है। वह यह काम करे, साथ ही बुनकरों को पूरा संरक्षण भी दे। मैं समझता हूँ कि वस्त्र-स्वावलम्बन के लिए ही नहीं, बेकारी-निवारण के लिए भी इससे अच्छी मदद मिलेगी। बेकारी-निवारण इसलिए कहते हैं कि अम्बर चरखे जितने भी चलेंगे, घंटेभर के लिए नहीं, कम-से-कम ६ घंटे तो चलेंगे। तब स्पष्ट है कि बेकारी का कितना निवारण होगा। जब अम्बर चरखा आता है और लोग निश्चय करते हैं कि हमारे गाँव में कपड़ा नहीं है और सरकार की यह पॉलिसी है कि आपके गाँव में खादी तैयार करनी है, तो कुछ लोग चरखा कातेंगे और कुछ लोग तकली कातेंगे, तो दूसरा सूत भी तैयार हो

जायगा। जैसे मँगरौट में २०-२५ अम्बर चरखे आये, तो उसके साथ ८०-८५ बाँस-चरखे भी लोगों ने ले लिये। याने लोगों में एक भावना पैदा हो गयी।

ग्राम में जो कुछ पैदा होता है, उसकी पहली खपत वहीं होनी चाहिए। इस योजना पर अमल करेंगे, तो बेकारी का शाश्वत निवारण होगा। नहीं तो वह तात्कालिक और खतरे में है। खतरे में इसलिए है कि सरकार की जो शक्ति उसमें मदद देने की है, वह हमेशा कम-बेशी रहेगी। वह कहेगी कि इससे ज्यादा हम न कर सकेंगे। ३६ करोड़ में ६ करोड़ छोड़ दें, तो भी ३० करोड़ देहातों के लोग कुल-का-कुल कपड़ा खुद बना लें। इस दृष्टि से अगर हमारे देहात बच जायँ, तो कहना होगा कि हमने एक भारी कदम उठाया और बेकारी का बड़ा भारी हल किया।

सर्वोदयपुरम् (कांचीपुरम्)
२४-५-'५६

अहिंसा का चिन्तन

: ४९ :

यहाँ सब लोगों को बहुत दिन एकत्र रहने का मौका मिला और अहिंसा के विषय में काफी चर्चा हुई। हम नयी तालीम के विचार को 'अहिंसा की पद्धति' समझते हैं। तालीम में किसी पर कोई चीज लादी नहीं जाती, सिर्फ समझायी जाती है। अहिंसा का भी अर्थ यही है कि जो भी मसले पैदा हों, वे सलाह-मशविरा से हल किये जायँ। मैं तो यह मानता हूँ कि जब तक मनुष्य में यह वृत्ति रहेगी कि मेरी आज्ञा चले, तब तक सच्ची आजादी न रहेगी और न अहिंसा ही पनपेगी। इसमें कोई सन्देह नहीं कि बच्चों पर माता-पिता का अधिकार है। लेकिन वह प्रेम का और सेवा का अधिकार है। इसलिए माता-पिता का ऐसा आग्रह या ऐसी वासना न होनी चाहिए कि उनके लड़के उनकी आज्ञा पसन्द आने या न आने पर भी शिरोधार्य करें। नेताओं को भी अपने विचार जनता पर लादने की इच्छा न होनी चाहिए। गुरुजनों को भी शिष्यों पर अपने

विचारों की सख्ती करने की इच्छा न हो। यही अहिंसा का सार है। लोग हमारी बात समझते हैं और इसलिए उस पर अमल करते हैं, तो हमें अच्छा लगना चाहिए। हमारा विचार लोग पसन्द नहीं करते, इसलिए उस पर अमल नहीं करते, तो भी हमें आनन्द होना चाहिए। लोग अपने विचार से चलें, इसीमें हमें संतोष हो। हमारी बात लोगों को न जँची, फिर भी वे मान लें, तो हमें दुःख होना चाहिए।

सात्त्विक, राजस और तामस अत्याचार

यह अहिंसा की वृत्ति है, इसलिए इसमें किसी प्रकार दूसरों पर कोई चीज लादने की इच्छा नहीं हो सकती। मैं दण्ड-शक्ति के आधार पर कोई चीज लादूँगा, तो वह भी गलती होगी। अपनी ज्ञान-शक्ति के आधार पर कोई चीज लादूँगा, तो वह भी गलती होगी और उपवास आदि तपस्या करने की अपनी शक्ति से कोई चीज लादूँगा, तो वह भी गलती होगी। उपवास आदि होने चाहिए, तो केवल चित्त-शुद्धि के लिए, आत्म-परीक्षण के लिए, आत्म-चिन्तन के लिए या संकल्प का बल बढ़ाने के लिए हों। अगर हम तपस्या के बल पर शक्ति हासिल कर लोगों पर अपनी आज्ञा चलायेंगे, तो रावण की कोटि में दाखिल होंगे। मैं तो कहूँगा कि दण्ड-शक्ति से लोगों पर कोई चीज लादना तामसिक अत्याचार है। तपस्या की शक्ति से दूसरों पर कोई चीज लादना राजसिक अत्याचार और अगर हम अपनी ज्ञान-शक्ति से दूसरों पर कोई चीज लादते हैं, तो वह सात्त्विक अत्याचार है। तीनों अत्याचार ही हैं। सदाचार यही है कि प्रेम से हम दूसरों को अपनी बात समझायें। वे बात समझकर उसे मानें, तो हमें अच्छा लगना चाहिए और न समझकर नहीं मानते, तो भी अच्छा लगे। इस तरह सबको विचार की पूरी आजादी होनी चाहिए।

अहिंसा से ही शाश्वत सुधार होगा

मैं बहुत दफा कहता हूँ कि दुनिया में आज कोई भी देश आजाद नहीं दीखता, इसका कारण यही है कि लोगों ने विचार की आजादी का महत्त्व नहीं समझा है। समाज सहज-स्वभाव गुण से आगे बढ़ता है और ऐसा ही बढ़ना

चाहिए। हमारी सारी कोशिश यह होनी चाहिए कि उत्तरोत्तर गुण-विकास होता जाय। इस दृष्टि से जब हम काम करते हैं, तो काम बहुत बढ़ता है। किन्तु कुछ लोगों को जरा धीरज नहीं रहता और वे कहते हैं कि इस पद्धति से क्या काम होगा? परन्तु हमें लगता है कि इसी पद्धति से जल्द-से-जल्द काम होगा। वास्तव में इसी पद्धति से काम होता है, दूसरी किसी पद्धति से समाज की प्रगति का कार्य होता ही नहीं। कुछ काम हुआ—ऐसा आभास होता हो, तो भी वहाँ वास्तविक प्रगति है ही नहीं, फिर शीघ्र प्रगति कहाँ से होगी? फिर भी कुछ लोगों को भास होता है कि हम जल्दी में कोई चीज दूसरों पर लादेंगे, लोगों से कोई काम करायेंगे, तो क्रान्ति होगी। किन्तु बिना विचार पसन्द किये कोई चीज बनती है, तो वह गिरती भी है। इसलिए शाश्वत सुधार तब हो सकता है, जब समझ-बूझकर उसे स्वीकार किया जाय।

उपवास चित्त-शुद्धि के लिए

मैंने अपने उपवास के सिलसिले में सहज ही यह बात सूचित की। इस तपस्या का ऐसा कोई उद्देश्य नहीं कि समाज पर कोई चीज लादी जाय। जहाँ तक मेरा सम्बन्ध है, मैं कहना चाहता हूँ कि यद्यपि भूदान आदि की मुझे तीव्र भावना है, फिर भी अगर समाज उसे कबूल न करेगा, तो भी मेरी मानसिक शान्ति बनी रहेगी। हाँ, मुझे यह लगेगा कि इतना सुन्दर विचार ग्रहण करने की प्रेरणा भगवान् लोगों को क्यों नहीं देता? शायद भगवान् के खिलाफ इस प्रकार की शिकायत हो, पर लोगों के विषय में मुझे कोई असमाधान न होगा। बल्कि मैं तो यह समझूँगा कि लोगों को यह अधिकार है कि जैसा वह समझते हैं, उस पर अमल करें। उन्होंने उस अधिकार का उपयोग किया और हमारी बात मानी, तो ठीक और न मानी, तो भी ठीक। उन्हें हर हालत में अपना अधिकार इस्तेमाल करना चाहिए और उतने में ही हमें समाधान मानना चाहिए। हमें सबको समझाने का अधिकार है और हम समझाते रहते हैं। हमारी वाणी में कुछ न्यूनता है, खामी है, इसलिए अपनी चित्त-शुद्धि के लिए कोई तपस्या हम करना चाहें, तो कर सकते हैं। इसलिए हर हालत में उपवास का सम्बन्ध अपनी

निज की चित्त शुद्धि से ही होना चाहिए, चाहे उसका कोई बाहरी निमित्त क्यों न हो जाय।

सर्वोदयपुरम् (कांचीपुरम्)
१-६-'५६

नयी तपस्या से नये अध्याय का आरम्भ : ५० :

तमिलनाड प्रवेश के साथ हमारी भूदान-यज्ञ की जो मूलभूत कल्पना थी, उसे पूर्ण रूप देने का विचार मन में आया। हमने यह कभी नहीं माना कि भूदान-यज्ञ एक अलग-सा कार्यक्रम है। फिर भी लाखों एकड़ की तादाद में लाखों लोगों के जरिये भूदान मिल सकता है, इस सिद्धि की जरूरत थी। उसके बाद पूरे-के-पूरे गाँव का ग्रामदान मिल सकता है, इस सिद्धि की जरूरत थी। उसके बाद जनता मे ऐसा विश्वास पैदा हो सकता है कि उसके आज के काम में अहिंसा का प्रवेश संभव है। हमने सोचा कि अब इसके साथ दूसरा रचनात्मक कार्य जोड़ा जाय। अहिंसा या सर्वोदय का विचार जब कभी हम हिन्दुस्तान के लोगों के सामने रखते हैं, तो पश्चिम के विचार से प्रभावित हुए चन्द लोगों को छोड़-कर कुल लोगों को वह विचार पसन्द आता है। पर वह व्यवहार्य नहीं मालूम होता। वे कहते हैं कि यह सर्वोत्तम कार्यक्रम है, पर व्यवहार्य नहीं है। 'यह कार्यक्रम अमल मे लाया जा सकता है, आज ही लाया जा सकता है और इससे जनता का भला होगा' यह विश्वास जनता में नहीं था। उसके लिए कुछ सिद्धि की जरूरत थी। लाखों एकड़ जमीन और कुछ ग्रामदान हासिल होने के बाद अब हमने सोचा कि कहीं अनुकूल क्षेत्र मिल जाय, तो वहाँ समग्र दृष्टि से, भूदान को बुनियाद समझकर काम शुरू हो। यह काम तमिलनाड में हो सकता है, इसका कुछ अन्दाजा हमें हुआ।

तपस्या और स्थापन

मेरे मन मे विचार आया कि इसका सामूहिक संकल्प हो। और उसके लिए कुछ थोड़ा आध्यात्मिक भी बल चाहिए। इसके लिए मैंने तीन दिनों का जो व्रत लिया, वह बिलकुल ही छोटा है। उसमें खास नाम लेने लायक कुछ है ही

नहीं। उसकी प्रसिद्धि भी न होनी चाहिए थी। किन्तु हमें इसी जीवन में एक बार जो सद्भाग्य हासिल हो चुका है, वह इस वक्त भी हासिल होता, तो वैसा हो सकता था। हम कई प्रकार की तपस्याएँ करते थे, लेकिन दुनिया को वह मालूम नहीं था। शास्त्र का वचन है कि "ख्यापन शक्ति क्षयकारी वस्तु है।" इसे अनुभव का भी बल है। अगर हम अपना पुण्य जाहिर करते हैं, तो पुण्य का क्षय होता है और पाप जाहिर करते हैं, तो पाप का भी क्षय होता है। इस तरह ख्यापन क्षय का साधन है। इसीलिए शास्त्रों ने कहा है कि अपने पापों को खूब जाहिर करो, ताकि उसका क्षय हो। और पुण्य को जाहिर मत करो, ताकि शक्ति बचे। अब हमारे साथ इतना ख्यापन हो जाता है, यह हम जानते हैं, पर लाचार हैं। यह सामूहिक तपस्या है, व्यक्तिगत नहीं। जैसे व्यक्तिगत तपस्या का ख्यापन अपने से बाहर न होना चाहिए, वैसे ही सामूहिक संकल्प का ख्यापन भी समूह के बाहर न होना चाहिए। इस दृष्टि से शक्तिक्षय भी नहीं हो रहा है। चित्त-शुद्धि की और चिन्तन की हम सबको जरूरत है, ये दोनों उद्देश्य इस उपवास में हैं। यह हम नहीं कह सकते कि बिना उपवास के शुद्धि नहीं होती या चिन्तन नहीं होता। बिना उपवास के शुद्धि और चिन्तन, दोनों होता है और हमारी वह प्रक्रिया भी जारी थी और आज भी है। लेकिन जब एक अध्याय पूरा कर नया शुरू किया जाता है, तो लकीर खींचकर लिखना ही पड़ता है। हम वही कर रहे हैं। शुद्धि और चिन्तन सतत जारी रहना चाहिए। उसके साथ विशेष गहराई में जाकर कुछ बल प्राप्त करने की बात इस उपवास में है। इस तरह सामूहिक संकल्प के लिए बल मिले, यही इसका प्रयोजन है।

जीवन का आधार परिश्रम हो

हमने समग्र कल्पना का जो आयोजन तमिलनाड के सामने रखा है, उसमें कई बातें हैं। लेकिन बुनियादी बात यह है कि हमारा कुल काम परिश्रम के आधार पर चले। पुराने काम फंड आदि के जरिये चलते थे, आज भी चलते हैं। परन्तु हमारा सर्वोदय का मुख्य काम परिश्रम के आधार पर चलना चाहिए। हम स्वयं परिश्रम करें या परिश्रम का दान लें। इस तरह परिश्रम-शक्ति और

परिश्रम दानशक्ति, ये दोनों चलें चलें, तो हिन्दुस्तान में अक्षरशः क्रान्ति होगी। उसमें इतना निधि इकट्ठा होगा कि उसका हिसाब रखना और उसे एक जगह रखना भी असम्भव हो जायगा। इसलिए वह सारा संग्रह घर-घर में बँटा होगा, जो समाज के उपयोगी काम में आयेगा। इतनी विशाल कल्पना इस विचार में पड़ी है। इसीलिए इस साल हमारे भाइयों ने सूत्रांजलि में पन्द्रह लाख गुण्डी दाखिल करने का निश्चय किया है। हम तो उससे बहुत आगे बढ़ना चाहते हैं। करोड़ों तक पहुँचना चाहते हैं। पाँच साल के परिश्रम के बाद हम साढ़े छह लाख गुण्डी तक पहुँचे हैं। हर मनुष्य से हम एक ही गुण्डी हासिल करते हैं, इसलिए इसका महत्त्व ज्यादा है। इसका मतलब है कि गुंडी देनेवाले साढ़े छह लाख व्यक्ति हैं। उसमें कुछ बच्चे और कातनेवाली औरतें भी हैं।

सर्वोदयपुरम् (कांचीपुरम्)
१-६-'५६

शुद्धि के लिए उपवास

: ५१ :

अभी हमने 'कुरल' के मंत्र सुने, जिसमें एक यह था कि पढ़ने से क्या लाभ, अगर परमेश्वर के चरणों में भक्ति उत्पन्न न हो। इसी तरह का विचार भागवत में भी आया है : "अच्युतभाववर्जितं न शोभते ज्ञानम्"। बुद्धि का उत्तम परिणाम भावना में होना चाहिए। ज्ञान याने वस्तु का जानना। जब हम वस्तु को जानते हैं, तब वह प्रिय होती है। शक्कर मीठी है—यह ज्ञान हो जाय, तो उसके लिए प्रेम पैदा होता है। इस तरह ज्ञान का पर्यवसान प्रेम में है। इसी तरह बुद्धि और प्रेम का संबंध जीवन में आता है। जब तक कोई भी विचार बुद्धि में रहता है, तब तक वह जीवन में स्थिर नहीं होता। जब वह बुद्धि से भावना में और हृदय में उतरता है, तभी जीवन में स्थिर होता है। ज्ञान तो केवल प्राथमिक है। उसमें जब मनुष्य स्थिर हो जाता है, तो उसमें भक्ति-भाव प्रकट हो जाता है। ज्ञान में स्थिर होने के लिए ही कुछ तपस्या करनी पड़ती है। बिना तपस्या के ज्ञान स्थिर नहीं होता और बिना ज्ञान के भक्ति उत्पन्न नहीं होती।

उपवास से शुद्धि

हमने यह जो उपवास आरंभ किया है, वह इसीलिए कि जो विचार हमारे मन में आया, वह पक्का हो जाय। अभी तक हमने उत्तर हिन्दुस्तान में पाँच साल बिताये और एक मार्ग की खोज की। अब जो मार्ग हासिल हुआ है, उससे पूरा लाभ उठाना है, तो हमने सोचा था कि तमिलनाड में हम मुकाम पर पहुँच जायँ। उसके लिए संकल्प-बल बढ़ाने के वास्ते यह उपवास किया। उपवास का हमें इसके पहले भी कई बार अनुभव है। जेल में हमने बीस उपवास किये थे। उसके पहले चार-बार तीन-तीन उपवास और एक बार सात उपवास करने का मौका आया। हमने देखा कि उपवास में हमारा चित्त सहज ही शान्त हो जाता है। किसी उपवास में किसी भी तरह की तकलीफ का हमने अनुभव नहीं किया। उपवास का ज्यादा कष्ट पहले तीन दिनों में ही होता है। अक्सर उल्टी वगैरह होने का संभव होता है। लेकिन इस समय ऐसा कुछ भी नहीं हुआ। हमारे पेट में अलसर है, इसलिए डर था कि उपवास में शायद पेट बहुत दुखेगा। लेकिन वह भी नहीं हुआ। कल कुछ थकान थी, पर आज वह कम है। उसका सिर्फ एक यही कारण है कि हमने वासना ईश्वर में अर्पित कर दी है। वासना का क्षय तो नहीं हो गया, उसका कुछ अस्तित्व अवश्य है, पर वह व्यक्तिगत नहीं। समाज-सेवा की वासना है, पर उसे हमने ईश्वर को अर्पित कर दिया। अतः यद्यपि भाइयों को डर था कि पेट में दुखाव आदि होगा, तो भी हमें विश्वास ही था कि वह न होगा। हम आशा करते हैं कि इस उपवास के परिणामस्वरूप हमारी वाणी और मन के दोष शुद्ध हो जायेंगे और तमिलनाड की सेवा के अधिक लायक बनेंगे।

सर्वोदयपुरम् (कांचीपुरम्)
२-६-'५६

अभी हमने हिन्दुस्तान की बहुत-सी भाषाओं के भजन सुने। सुनते समय मेरी आँखों से आँसू बह रहे थे। मुझे याद नहीं कि कभी अच्छा भोजन होने पर इस तरह आँसू आये हों। मुझे ऐसा भी याद नहीं कि भोजन न मिलने पर आँसू आये हों। शरीर का भोजन कुछ कीमत नहीं रखता, आत्मा का भोजन ही कीमत रखता है। हम हिन्दुस्तान की कुल भाषाओं के भजन सुनना चाहते थे। जितना बना, उतना यहाँ गाया गया। हम चाहते हैं कि भूदान-यज्ञ में कुल हिन्दुस्तान का सहयोग मिले। इन दिनों जो भाषावार प्रान्त-रचना हुई, उसमें कुछ गलती हुई, ऐसा हम नहीं समझते। ये भाषाएँ अत्यंत मधुर हैं। इन भाषाओं के लिए यही आक्षेप है कि इनमें व्यावहारिक साहित्य कम है। फिर भी इन पर ऐसा आक्षेप नहीं है कि इनमें आध्यात्मिक साहित्य कम है। ये सब भाषाएँ आध्यात्मिक ज्ञान से भरी हैं। हम जानते हैं कि व्यावहारिक ज्ञान का भी कुछ महत्त्व दुनिया में है, पर आखिर आध्यात्मिक साहित्य ही टिकनेवाला है। इस तरह आध्यात्मिक ज्ञान से भरी ये भाषाएँ एक-दूसरे के साथ कभी झगड़ा नहीं कर सकतीं, एक-दूसरे पर प्यार ही कर सकती हैं।

गांधी-विचारवालों का कर्तव्य

यहाँ बहुत-से सर्वोदय प्रेमी और गांधी-विचार को माननेवाले इकट्ठा हुए हैं। गांधीजी ने हमारे सामने जो सर्वोदय का कार्यक्रम रखा था, हमारा विश्वास है कि भूदान-यज्ञ से उसे एक बुनियाद हासिल होती है। भूदान की बुनियाद पर ही कुल इमारत खड़ी की जा सकेगी। इसलिए खासकर गांधी-विचार को माननेवालों के सामने हमारी प्रार्थना है कि वे सब इस काम में अपनी पूरी ताकत लगायें। इतिहास में यह नहीं कहा जाना चाहिए कि कुल लोगों की ताकत नहीं मिली, इसलिए असफलता मिली। बल्कि यही कहा जाना चाहिए कि सबने पूरा साथ दिया।

गांधी-विचार का यह प्राण-कार्य चल रहा है, इसीलिए सबके सहयोग से यह सफल हुआ। आज इस प्रसंग में हमें आप सबका और खासकर गांधी-विचार को माननेवालों का पूरा सहयोग अपेक्षित है। हमें तो "एकला चलो, एकला चलो" बहुत प्रिय है। किन्तु हम अकेले चलें, इसमें सबके लिए शोभा नहीं, अकेले चलनेवाले की तो शोभा होगी। पर हम नहीं चाहते कि हमारी शोभा हो, बल्कि यही चाहते हैं कि सबकी शोभा हो।

निर्भयता और अहिंसा

हम चाहते हैं कि कम-से-कम भारत-भूमि में तो अहिंसा के आधार पर समाज-रचना की जाय। इस काम के लिए तमिलनाड अत्यन्त योग्य है। यहाँ हमने बहुत-से भजन सुने, उनमें पहला भजन तमिल भाषा का था। वह ठीक ही योजना थी। क्योंकि अभी हम तमिलनाड में घूमनेवाले हैं। वह भजन एक भगवत्-भक्त महापुरुष 'अप्पर' का है। उसमें उन्होंने कहा कि हम किसीके गुलाम नहीं हैं और हम यमराज से भी नहीं डरते। यह है हिन्दुस्तान की निर्भयता, जो प्रेम के आधार पर खड़ी है। जो देश यमराज से न डरेगा, वह और किससे डरेगा? इस तरह इस देश में बहुत प्राचीनकाल से निर्भयता की शिक्षा दी गयी है। उसीके आधार पर हम अपना समाज बना सकते हैं। निर्भयता सभी गुणों में श्रेष्ठ गुण माना गया है। भगवान् ने दैवी सम्पत्ति का वर्णन करते हुए **'अभय'** को प्रथम स्थान दिया है। किन्तु यह समझना जरूरी है कि बिना अहिंसा के निर्भयता हो ही नहीं सकती। जो मन में हिंसा-वृत्ति रखेगा या हिंसा के काम करेगा, उसे बाहर से भी डरने का मौका आयेगा।

डरपोक सिंह !

संस्कृत में 'सिंहावलोकन' शब्द है। उसका मतलब है, पीछे देखना। सिंह के लिए यह कहा जाता है कि वह थोड़ा आगे बढ़ता है और फिर पीछे देखता है। उसे इसलिए पीछे देखना पड़ता है कि वह दुनिया का शत्रु है। प्रतिक्षण उसके मन में डर रहा करता है कि पीछे से कोई हमला तो नहीं करता। इतना बहादुर माना हुआ सिंह डरपोक ही है। वह बहादुर इसलिए दीखता है कि उसके पास नाखून और

दाँत हैं। जो नाखून और दाँत के आधार पर बहादुर बनेगा, वह अंदर से कायर ही होगा। आज दुनिया में इसका दर्शन हो रहा है। दुनिया के देशों के पास आज ऐसे हथियार हैं, जिनके बारे में अपने पूर्वजों ने कभी स्वप्न में भी न सोचा होगा। इतने सब शस्त्रास्त्र प्राप्त होते हुए भी आज जितना डर छाया हुआ है, उतना दुनिया में शायद ही कभी हो। निर्भयता हिंसक शस्त्रों से नहीं प्राप्त हो सकती, वह प्रेम और अहिंसा से प्राप्त हो सकती है। भूदान-यज्ञ के काम में हम और कुछ नहीं कर रहे हैं, सिवा इसके कि प्रेम बढ़ा रहे हैं। परमेश्वर सबको इस काम में योग देने की प्रेरणा दे, यही हमारी प्रार्थना है।

सर्वोदयपुरम् (कांचीपुरम्)
४-१-'५६

०

उप-शीर्षकों का अनुक्रम